विज्ञान यात्रा

पंजाब के अग्रणी विज्ञान संचारक रुचि राम साहनी के संस्मरण



विज्ञान यात्रा

पंजाब के अग्रणी विज्ञान संचारक

रुचि राम साहनी

के

संस्मरण

परिचय, टिप्पणीयाँ एवम् इंडेक्स के साथ

संपादन

नरेन्द्र सहगल

सुबोध महंती

हिंदी रूपांतर

जगदीप सक्सेना



विज्ञान प्रसार

प्रकाशक

विज्ञान प्रसार

C-24, कुतुब इंस्टिट्युशनल एरिया, नई दिल्ली-110016

फोन : 6864022, 6864157, 6967532

फैक्स : 6965986

ई-मेल : vigyan@hub.nic.in
vigyanp@vsnl.net.in

इंटरनेट: http://www.vigyanprasar.com

प्रथम संस्करण : 1994

द्वितीय संस्करण : 1997

प्रथम हिंदी संस्करण : 1998

विज्ञान यात्रा

पंजाब के अग्रणी विज्ञान संचारक रुचि राम साहनी के संस्मरण

सम्पादक :

नरेन्द्र सहगल

सुबोध महंती

हिंदी रूपांतर :

जगदीप सक्सेना

मुख-पृष्ठ सज्जा : पवित्र सरकार

निर्माण नियंत्रण : सुमिता सेन

टाइप सेटिंग एवं पृष्ठ योजना : सोनू

आई एस बि एन : 81-7480-039-5

भारत में दुर्गा प्रिंटर्स, B-111, ओखला इन्डस्ट्रीयल एरिया, नई दिल्ली -110020

विषय सूची

भूमिका...viii

संपादकीय टिप्पणी xii

आभार...xiv

परिचय..xvi

1. एक हिंदुस्तानी का संघर्ष.......................1
डेंजिल इब्बेतसन का दौरा
मैं मौसम विभाग में
कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज में
महेन्द्र लाल सरकार की संस्था
एच. एफ. ब्लैनफोर्ड और मौसम विभाग
हिंदुस्तानियों से नफरत करने वाले जनाब जॉन इलियट

2. मैं शिक्षक बन गया.................................34
व्याख्यानों की तैयारी
स्कूल ऑफ आर्ट में
भारत-इंग्लैंड के सामाजिक संबंधों का कठिन दौर

3. मेरी पहली युरोप यात्रा 58

कौन है बेहतर रसायनशास्त्री ?

मुझे अंधेरे में रखा गया

रेडियो धर्मिता में मेरी दिलचस्पी

हीडेलबर्ग में

4. पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट 91

लालटेन स्लाइड

लोकप्रिय व्याख्यान

पंजाबी में विज्ञान का प्रचार-प्रसार

संस्थान के अंतिम दिन

5. पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट की कार्यशाला......107

हेड मिस्त्री अल्ला बख्श

ताला और तिजोरी विभाग

खराद

नाजुक उपकरणों की मरम्मत

केंद्रीय प्रांत के हीरा लाल से संपर्क

कार्यशाला को किस्मत का तोहफ़ा

इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल : मास्टर प्यारे लाल

पूना में औद्योगिक सम्मेलन

कलकत्ता के सल्फ्यूरिक अम्ल के कारखानों का दौरा

6. मेरे सामाजिक कार्य 135

स्थानीय स्वराज्य

मूर्ति का मामला

द हिंदू फैमिली म्यूचुअल रिलीफ फंड

द हिमालयन यूनियन क्लब
द इंडियन नैशनल कांग्रेस
द पंजाब इनक्वायरी कमेटी
खिलाफत आंदोलन
ब्रह्म समाज से मेरा नाता

7. आत्म - सम्मान की कुंजी 191
तू...तू...तू... किधर जाता
तमाचे के बदले तमाचा
धक्का-मुक्की, दार्शनिक अंदाज़ में
मेल टांगे में
याद रखना, मैं पंजाबी हूँ
अंतिम घटना

8. मेरी सेहत का राज़ 206
और आदतें बार-बार दोहराने से बनती हैं
इलाज से बेहतर है रोकथाम
लोभ पापों का मूल है

9. टिप्पणियाँ....................220

10. इंडेक्स....................242

भूमिका

"यह लीजिए, इसे पढ़ने में आपको अवश्य आनंद आएगा।" यह कहते हुए नंदन कुद्यादी ने फोटोकॉपी किये हुए फुलस्केप आकार के 32 पृष्ठ मेरे हाथ में पकड़ा दिए। उन्होंने बताया कि यह टाइप की हुई पांडुलिपि बीरबल साहनी के पिता की आत्मकथा है। उस समय (सितंबर 1990) नंदन, जो पेशे से फिल्म निर्माता हैं, प्रोफेसर बीरबल साहनी के जीवन और कार्य पर रा. वि. प्रौ. सं. प. (राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद), भारत सरकार के लिए वीडियो कार्यक्रम तैयार करने हेतु शोध कर रहे थे। प्रोफेसर साहनी भारत में पुरावनस्पति विज्ञान के जनक माने जाते हैं और अगले वर्ष उनकी जन्म शताब्दी मनायी जानी थी। हम इस विषय पर अधिक चर्चा नहीं कर पाये, क्योंकि नंदन जल्दी में थे और मुंबई वापस जा रहे थे।

मैंने पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट शीर्षक पढ़कर कुछ पृष्ठ पलटे और पांडुलिपि को ब्रीफकेस में रख लिया ताकि किसी दिन कार्यालय जाते समय रास्ते में पढ़ सकूं। किसे पता था कि ये पृष्ठ रुचि राम साहनी जैसे महान व्यक्तित्व की "खोज" का सूत्रधार बनेंगे। आश्चर्य होता है कि उस समय तक उनके बारे में किसी ने कुछ नहीं लिखा था।

कई दिनों बाद जब मैंने कार्यालय जाते समय उन पृष्ठों को पढ़ना शुरू किया तो उनमें इस कदर खो गया कि पूरी पांडुलिपि पढ़ने के बाद ही रख पाया। फिर मैंने नंदन से मुंबई में बात की और उसे बताया कि मैं रुचि राम साहनी द्वारा किए गये विज्ञान के प्रचार-प्रसार

के कार्य (उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम 15 वर्षों के दौरान) के बारे में क्या महसूस कर रहा हूं। साथ ही मैने नंदन से अनुरोध किया कि किसी तरह रुचि राम साहनी की पूरी आत्मकथा मुझे प ढ़ने के लिए उपलब्ध कराओ।

इसी बीच मैंने रा. वि. प्रौ. सं. प. के न्यूज़लैटर "एनसीएसटीसी कम्युनिकेशन्स" में एक लेख लिखा। इसमें उनके द्वारा पंजाबी भाषा में विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए किये गये कार्य के साथ ही "पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट" की कार्यशाला की गतिविधियों पर भी प्रकाश डाला गया था। उन्होंने इस कार्यशाला की शुरूआत सरल वैज्ञानिक उपकरणों और प्रयोगशाला उपकरणों की मरम्मत तथा निर्माण के लिए की थी। पंजाब में कुछ सजग पाठकों ने इस लेख का पंजाबी में अनुवाद किया और इसका व्यापक प्रसार भी किया। चंडीगढ़ से प्रकाशित हिंदी दैनिक "जनसत्ता" ने अपनी रविवारी परिशिष्ट में इसे दो खंडों में प्रकाशित किया।

हम शायद यह कभी नहीं जान पाएंगे कि कुछ महान व्यक्ति हमेशा के लिए गुमनामी के अंधेरे में क्यों खो जाते हैं। बाद में जब उनकी "खोज" होती है, तब भी उनका नाम और यश बहुत अधिक दूर तक नहीं फैल पाता।

रुचि राम साहनी के जीवन और कार्य के बारे में पढ़ने से पता लगता है कि वह एक महान व्यक्ति थे। ब्रिटिश राज के कठिन और निराशाजनक दौर में उनके द्वारा किये गये अनथक और समर्पित प्रयास विज्ञान अध्यापकों, विज्ञान प्रसारकों और आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ाने वालों की कई पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत हो सकते हैं। फिर भी वह एक लंबे समय

तक गुमनामी के अंधेरे में खोये रहे। कुछ साल पहले संयोग से उनकी "खोज" हुई। इसके बाद कुछ समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में उनके बारे में लेख लिखे गये। पंजाब में उनके नाम से एक ट्रस्ट ने दो वार्षिक विज्ञान लोकप्रियकरण पुरस्कारों की स्थापना भी की है।

रुचि राम साहनी के जीवन और वैज्ञानिक कार्यों के बारे में जनसाधारण तक अधिक से अधिक सूचनाएं और जानकारी पहुंचाने के लिए उनकी आत्मकथा को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इससे उनके मूल चरित्र, व्यक्तित्व, विचारों और जीवन दर्शन की अच्छी तस्वीर उभरती है। यह भी पता लगता है कि उनकी कथनी और करनी में कोई भेद नहीं था। इसके अलावा पुस्तक में ऐसे अनेक संकेत बिखरे पड़े हैं, जिनके आधार पर शोधकर्ता और अधिक विस्तार में जाकर अन्वेषण कर सकते हैं। साथ ही रुचि राम साहनी के अन्य महानुभावों के साथ के संबंधों की पड़ताल भी की जा सकती है। इनमें से कुछ देश की जानी-मानी हस्तियां थीं।

रुचि राम साहनी के बारे में अधिक से अधिक लोगों को अवगत कराने के अलावा इस पुस्तक के इतने ही महत्त्वपूर्ण दो अन्य उद्देश्य भी हैं। पहला, अनुसंधानकर्ताओं को प्रेरित और उत्साहित करके रुचि राम साहनी के बारे में उन जगहों (देश या विदेश) से अधिक से अधिक सामग्री और सूचनाएं एकत्र करवाना, जहां वे कभी रहे थे या कार्य किया था। दूसरा, अनुसंधानकर्ताओं को देश के अन्य हिस्सों से स्वतंत्रता पूर्व काल के ऐसे ही महान व्यक्तियों की खोज करने के लिए प्रेरित करना, जिनका वैज्ञानिक कार्य रुचि राम साहनी के काम की तरह कहीं छिपा, दबा या उपेक्षित पड़ा है।

हम पाठकों के आभारी रहेंगे यदि वे रुचि राम साहनी के वैज्ञानिक

कार्य से संबंधित किसी भी पक्ष पर सामग्री, जानकारी, सूचना या संकेत प्रदान कर सकें। ऐसी सूचनाओं का विशेष रूप से स्वागत है, जिनका पुस्तक में उल्लेख नहीं किया गया है।

नरेन्द्र सहगल

नई दिल्ली

1 नवंबर 1994

संपादकीय टिप्पणी

काफी प्रयासों के बाद हममें से एक (न.कु.स.) को रुचि राम साहनी की आत्मकथा, जिसमें उन्होंने स्वयं अपनी कलम से संशोधन किये थे, की टाइप की हुई पूरी पांडुलिपि की एक फोटोकॉपी सन् 1991 के प्रारंभ में प्राप्त हो सकी। इसे ध्यान से पढ़ने पर पता लगा कि पांडुलिपि के अनेक पृष्ठ और कुछ महत्त्वपूर्ण हिस्से गायब थे। इससे मूल पाठ में अनेक स्थानों पर विसंगतियां उत्पन्न हो रही थीं। इसके अलावा शायद गुम हुए हिस्सों के कारण कुछ ज्ञात तथ्यों जैसे, उनका अर्नेस्ट रदरफोर्ड के साथ कार्य करने का उल्लेख भी पाठ में मौजूद नहीं था। हमने गायब हिस्सों का पता लगाने और उन्हें प्राप्त करने का काफी प्रयास किया, परंतु असफल रहे। इसमें हमारा काफी समय लग गया। फिर हमारे पास यही विकल्प बचा कि जो है उसी से काम चलाया जाए। हमने यही किया।

उपलब्ध सामग्री का समुचित उपयोग करते हुए मूल पाठ को स्वाभाविक प्रवाह प्रदान करने हेतु हमें अनेक संशोधन करने पड़े। जैसे कई स्थानों पर सामग्री को पूरी तरह हटाया गया या संक्षिप्त किया गया (ऐसे प्रसंग जिनका उनके वैज्ञानिक कार्यों से दूर का संबंध भी नहीं था), विभिन्न अध्यायों में शीर्षक और उप-शीर्षक बनाये गये, नये अध्यायों का गठन किया गया और पूरी सामग्री को पुनर्व्यवस्थित किया गया। यह सब करते हुए इस बात का पूरा ध्यान रखा गया कि मूल पाठ में कम से कम छेड़-छाड़ की जाए, ताकि उनकी मौलिक शैली और भाषा में कोई अंतर न आये। साथ ही पुस्तक पढ़ते समय उनका पूरा व्यक्तित्व उभरकर पाठक के सामने आ जाए।

पुस्तक में प्रकाशित छायाचित्र और अन्य रेखांकन आदि मूल पांडुलिपि का हिस्सा नहीं हैं। छायाचित्र रुचि राम साहनी के वंशजों और संबंधियों से प्राप्त किये गये हैं, जबकि रेखांकन श्री अभिताभ पांडे द्वारा किया गया है। श्री पांडे ने ये रेखांकन मूल पाठ में रुचि राम साहनी के जीवन के रोचक प्रसगों के वर्णन के आधार पर अपनी कल्पना तथा सोच से किए हैं। इसके पीछे विचार यह है कि पाठक बीच-बीच में रुककर उन कठिन दशाओं की कल्पना कर सकें, जिनमें रुचि राम साहनी ने कार्य किया था। श्री अभिताभ पांडे ने मूल पाठ में उल्लिखित प्रमुख हस्तियों के चित्र बनाये और उन्हें भी पुस्तक में शामिल किया गया। इनका चयन उपलब्धता और मूल पाठ में उनके महत्त्व के आधार पर किया गया।

आभार

रुचि राम साहनी की आत्मकथा पर कार्य करना आनंददायक अनुभव रहा। इस पुस्तक के उत्साहपूर्ण और शानदार स्वागत की संभावना ने इस आनंद को और भी बढ़ा दिया। इसके लिए हम सबसे पहले मुंबई के युवा फिल्म निर्माता नंदन कुद्यादी को धन्यवाद देना चाहते हैं, जिन्होंने रुचि राम साहनी की आत्मकथा के एक महत्त्वपूर्ण अंश की टाइप की हुई प्रति हमें सौंपी। इससे हमें कोई अंतर नहीं पड़ा कि उसके कुछ पृष्ठ गायब थे। पंजाब राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद की सहायता से हमें पूरी आत्मकथा की फोटोकॉपी मिल सकी। इसके लिए हम परिषद के आभारी हैं।

पुस्तक का परिचयात्मक अध्याय लिखने में हमें रुचि राम साहनी के सभी वंशजों और संबंधियों से भरपूर सहयोग और सहायता मिली। इसमें चंडीगढ़ के प्रोफेसर अशोक साहनी और देहरादून के प्रोफेसर के. सी साहनी के नाम उल्लेखनीय हैं। हममें से एक (न. कु. स.) ने देश के अनेक प्रमुख समाचार पत्रों में 'संपादक के नाम पत्र' स्तंभ के अंतर्गत एक पत्र प्रकाशित करवाया, जिसमें पाठकों से रुचि राम साहनी के वैज्ञानिक कार्यों से संबंधित संकेत या सूचनाएं भेजने की अपील की गयी थी। साथ ही यह अनुरोध भी किया गया था कि स्वतंत्रता पूर्व की उन्नीसवीं या बीसवीं सदी में देश के अन्य हिस्सों में रुचि राम साहनी जैसा कार्य करने वाले महान व्यक्तियों के बारे में भी जानकारी भेजी जाए। पत्र का उत्तर देने वाले सभी सज्जनों को हमारी ओर से धन्यवाद।

हम चंडीगढ़ के श्री मनमोहन शर्मा के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने पंजाब में रुचि राम साहनी से संबंधित जानकारी के प्रसार की पहल स्वेच्छा से की। उन्होंने नरेन्द्र कुमार सहगल द्वारा रुचि राम साहनी पर लिखे मौलिक लेख का पंजाबी में अनुवाद किया और संबंधित एजेंसियों तथा व्यक्तियों के बीच व्यापक रूप से वितरित किया। यह लेख दो कड़ियों में "एन सी एस टी सी कम्युनिकेशंस" नई दिल्ली में प्रकाशित हुआ था। बाद में श्री शर्मा ने रुचि राम साहनी के कार्य, स्मृति और आदर्शों को देश भर में विशेष रूप से पंजाब में प्रसारित करने के लिए "रुचि राम साहनी मेमोरियल ट्रस्ट" का गठन किया।

परिचय *

प्रोफेसर रुचि राम साहनी बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी थे। वैज्ञानिक होने के साथ ही वह एक उत्साही शिक्षाविद्, अनन्य देशप्रेमी और समर्पित सामाजिक कार्यकर्ता भी थे। वह सदैव कुछ नया करने के लिए तत्पर रहते थे। उनकी सोच स्वतंत्र थी और विचार प्रगतिशील। उन्होंने अपना व्यावसायिक जीवन सन् 1885 में भारत सरकार के मौसम विभाग में द्वितीय सहायक प्रतिवेदक (रिपोर्टर) के रूप में प्रारंभ किया। उन्होंने सीधे सर एच. एफ. ब्लैनफोर्ड, एफ. आर. एस., की देख-रेख में कार्य किया, जो भारतीय मौसम विभाग के संस्थापकों में से एक थे। सन् 1887 में रुचि राम साहनी लाहौर के गवर्नमेन्ट कॉलेज

---

* रुचि राम साहनी भारत में आधुनिक विज्ञान की परंपराओं की जड़ें जमाने वालों में अग्रणी थे। फिर भी एक लंबे समय तक उनकी अनुसंधानात्मक गतिविधियां और विशेष रूप से विज्ञान के प्रचार-प्रसार के प्रयास गुमनामी के अंधेरे में डूबे रहे। उन्हें अधिकतर अपने महान पुरावनस्पति विज्ञानी पुत्र बीरबल साहनी के संदर्भ में याद किया जाता रहा। इस कारण रुचि राम साहनी के इस सर्वथा नवीन रूप की खोज का पूर्ण श्रेय राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (रा.वि.प्रौ.सं.प.) को जाता है। इस खोज का सूत्रधार बनी उनकी अधूरी आत्मकथा की टाइप की हुई एक प्रति, जो संयोग से रा. वि. प्रौ. सं. प. को प्राप्त हुई। रुचि राम साहनी द्वारा विज्ञान के प्रचार-प्रसार हेतु किये गये कार्य पर हाल में नरेन्द्र सहगल ने सर्वप्रथम एक विस्तृत लेख लिखा, जो दो भागों में *एन सी एस टी सी कम्युनिकेशन्स* के क्रमश: नवंबर 1991 और जनवरी 1992 अंक में प्रकाशित हुआ।

में रसायन विज्ञान और भौतिक विज्ञान के सहायक प्रोफेसर बन गये। यहीं से वह 5 अप्रैल 1918 को रसायन विज्ञान के वरिष्ठ प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त हुए।

प्रो. साहनी ने अपना वैज्ञानिक जीवन आधुनिक भारत के इतिहास के एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण दौर में प्रारंभ किया। उस समय यानी उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में एक व्यापक बौद्धिक पुनर्जागरण पनप रहा था। देश में राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीयता की भावनाएं जड़ें जमा रहीं थी। साथ ही यह काल ब्रिटिश साम्राज्यवाद का स्वर्णयुग भी था।

आज हम भारत में विज्ञान का जो रूप देखते हैं, वह उन दिनों प्रारंभिक अवस्था में था। बौद्धिक स्तर पर आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान और वैज्ञानिक चेतना भारतीय संस्कृति में घुल-मिल रही थी, परंतु आधुनिक विज्ञान के विकास में भारतीयों की सक्रिय भागीदारी लगभग नगण्य थी। प्रो. साहनी उन भारतीय वैज्ञानिकों की पहली पीढ़ी में थे, जिनके कार्यों ने देश में आधुनिक विज्ञान की परंपरा की स्थापना की। सन् 1885 में जगदीश चंद्र बोस (1858-1937) ने कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज में कार्यभार संभाला। सन् 1888 में प्रफुल्ल चंद्र राय (1861-1944) एडिनबर्ग से भारत वापस आये और अगले वर्ष प्रेसिडेंसी कॉलेज में अस्थायी सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। सन् 1887 में महेन्द्र लाल सरकार ने *द इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस* की स्थापना की। वैज्ञानिक अनुसंधान को संस्थानात्मक आधार देने का यह संभवतया पहला भारतीय प्रयास था। परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक इसकी गतिविधियां मुख्य रूप से भौतिकी और रसायन विज्ञान के क्षेत्र में लोकप्रिय व्याख्यानों का आयोजन करने तक सीमित रहीं। सन् 1907 में चन्द्रशेखर वेंकट रामन इस

संस्था से जुड़े। आशुतोष मुकर्जी, जिन्होंने बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में भारत में आधुनिक विज्ञान की जड़ें जमाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी,* उस समय प्रेसिडेंसी कॉलेज में अध्ययन कर रहे थे जब रुचि राम साहनी ने वहां अंशकालिक छात्र के रूप में एम.ए. में प्रवेश लिया। सन् 1914 में *इंडियन साइंस कांग्रेस* का पहला सत्र आशुतोष मुकर्जी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस प्रकार जब रुचि राम साहनी ने अपना वैज्ञानिक जीवन प्रारंभ किया तो देश में वैज्ञानिक अनुसंधान का कार्य करने के लिए बहुत कम जगहें थी। इन जगहों पर भी अनुसंधान की मूल सुविधाओं का सर्वथा अभाव था। इसके अलावा ऐसी जगहों में भारतीयों (जिन्हें अंग्रेज़ अधिकारी नेटिव कहकर बुलाते थे) का प्रवेश कर पाना अत्यंत कठिन था। उस समय शिक्षा सेवा में दो वर्ग थे। पहला उच्च वर्ग *इंपीरियल एजुकेशनल सर्विस* (आई.ई.एस.) के नाम से जाना जाता था, जिस पर व्यावहारिक रूप से अंग्रेज़ों का आधिपत्य था। जिस समय रुचि राम साहनी ने पंजाब शिक्षा विभाग में सेवा प्रारंभ की, उस समय पूरे देश में कुल तीन भारतीय ही आई.ई.एस. थे। इन कठिनाइयों के बावजूद रुचि राम साहनी ने भारत में आधुनिक विज्ञान की परंपराओं के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। नि:संदेह वह इस क्षेत्र में पथ-प्रदर्शक थे। रुचि राम साहनी पहले भारतीय थे, जिन्होंने नाभिक पर शोध कार्य किया। उन्होंने अर्नेस्ट रदरफोर्ड (1871-1937) के निर्देशन में शोध किया। उन्हें नील्स बोहर (1885-1962) के निर्देशन में भी शोध करने का सुअवसर मिला, जो उस समय रदरफोर्ड के साथ शोध कर रहे थे। रदरफोर्ड की प्रयोगशाला में आने से पहले वह कासिमिर फैजन्स (1887-1975) के साथ रेडियोधर्मिता पर शोध कार्य

---

* ओरिजिन्स ऑफ मॉडर्न इंडियन साइंस, देबी.पी. बर्मा और सुबोध महंती, *साइंस रिपोर्टर* (नई दिल्ली), अप्रैल 1990,

करने के लिए जर्मनी गये। लेकिन वहां व्यवस्थित होने से पहले ही प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया और उन्हें जर्मनी छोड़ना पड़ा।

रुचि राम साहनी की प्रमुख उपलब्धियों में से एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी – पंजाब के जनसाधारण में वैज्ञानिक चेतना जागृत करना। उस समय के पंजाब में आज के पंजाब , हिमाचल प्रदेश और हरियाणा समेत पाकिस्तान के पंजाब के कुछ हिस्से भी शामिल थे। उन्होंने पंजाब में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने का प्रयास सबसे पहले किया , पर दूसरी ओर बंगाल में भी ऐसे प्रयास किये जा रहे थे। उन्होंने विज्ञान के प्रचार-प्रसार की अपनी सारी गतिविधियां *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* के तत्त्वावधान में आयोजित की। उन्होंने प्रोफेसर जे . कैम्पबेल ओमन के साथ मिलकर इस संस्था की स्थापना की थी। *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* द्वारा विज्ञान के विविध पक्षों पर आयोजित लोकप्रिय व्याख्यानों ने लोगों के मन में अभूतपूर्व उत्साह उत्पन्न कर दिया। इसी कारण जब व्याख्याताओं को मुफस्सिल जगहों पर भेजने के लिए अल्प शुल्क लेना तय किया गया , तो इसे सभी ने खुशी से स्वीकार कर लिया। संभवतया यह भारत में पहला अवसर था , जब जनसाधारण ने विज्ञान के लोकप्रिय व्याख्यानों को सुनने के लिए शुल्क अदा किया।

रुचि राम साहनी ने विद्यालयों और महाविद्यालयों की शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए कड़ा परिश्रम किया। उन्होंने बहुत जल्दी ही यह अनुभव कर लिया कि विद्यालयों और महाविद्यालयों में साधारण वैज्ञानिक उपकरणों की मरम्मत की सुविधा जुटाये बिना विज्ञान शिक्षण संभव नहीं होगा। उन्होंने यह चुनौती खुद स्वीकार की और अपनी जेब से धन खर्च करके *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* में एक कार्यशाला की स्थापना की। इस कार्यशाला में विद्यालयों और महाविद्यालयों में उपयोग किये जाने वाले

वैज्ञानिक उपकरणों के निर्माण व मरम्मत की सुविधा थी। इसके अलावा कार्यशाला में युवाओं को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था भी थी, ताकि वे अपनी जीविका अर्जित कर सकें। वह देश के औद्योगिक विकास के प्रति भी सचेत थे। उन्होंने लाहौर के पास गंधक का अम्ल बनाने का कारखाना स्थापित किया, जो कई वर्षों तक सफलतापूर्वक चला। इस कार्य में प्रफुल्ल चंद्र राय ने उनकी सहायता की थी।

रुचि राम साहनी ने स्वतंत्रता आंदोलन में भी सक्रिय भागीदारी की। जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद जब *इंडियन नेशनल कांग्रेस* ने पंजाब जांच शुरू की तो उन्हें अनेक बड़े नेताओं जैसे मोती लाल नेहरू (1861-1931), चितरंजन दास (1870-1925), पंडित मदन मोहन मालवीय (1861-1946) आदि के साथ कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। महादेव गोविंद रानाडे (1842-1901) के साथ भी उनका निकट संपर्क था। रुचि राम साहनी के अनेक व्याख्यानों में रानाडे ने अध्यक्षता की थी। खिलाफत आंदोलन के दौरान अपने मुसलमान मित्रों को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदान की गयी उपाधि का त्याग कर दिया। वह जीवन भर अंग्रेज़ों के आधिपत्य के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। वह सामाजिक सुधार आंदोलन में भी अग्रणी थे। उन्होंने महिलाओं से सम्बद्ध सामाजिक सुधारों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया।

परिवार और प्रारंभिक शिक्षा *

---

* यह खंड आंशिक रूप से प्रोफेसर रुचि राम साहनी के पुत्र मुल्क राज साहनी द्वारा लिखित *लैंडमार्कस् एंड स्ट्रेंडलीनेस : ऐन आटोबायोग्राफी* (अप्रकाशित) में दिये गये विवरणों पर आधारित है। प्रोफेसर मुल्क राज साहनी ने अपना वैज्ञानिक जीवन भारतीय भूसर्वेक्षण विभाग में प्रारंभ किया और बाद में पंजाब विश्वविद्यालय में भूविज्ञान विभाग की स्थापना की।

रुचि राम साहनी का जन्म 5 अप्रैल 1863 को डेरा इस्माइल खान (अब पाकिस्तान में) में हुआ, जो सिंधु नदी के किनारे बसा एक पत्तन था। उनके पिता करम चन्द साहनी व्यापारी थे। उनकी मां गुलाब देवी पिंड दादान खान (अब पाकिस्तान में) के ऐसे परिवार से थीं, जहां रुपयों के लेन-देन का व्यवसाय होता था। साहनी परिवार या कहें साहनी वंश मूलरूप से सैनिकों का वंश था और उन्हें सेनानी कहा जाता था।

रुचि राम की प्रारंभिक शिक्षा 5 या 6 वर्ष की अवस्था में प्रारंभ हुई। उन्हें विद्यालय का एक अध्यापक पढ़ाने आता था, जिसे पंडा कहा जाता था। रोचक बात यह है कि अध्यापक को एक पहाड़ा याद कराने पर चार आने मिलते थे। नौ वर्ष की अवस्था में उन्होंने कुछ महीनों के लिए सेठ कल्याण दास की कंपनी में कार्य किया। इसके बाद वह अपने पिता के व्यवसाय में हाथ बंटाने लगे। उनके पिता मुख्य रूप से थोक कारोबार और रुपयों के लेन-देन का व्यवसाय करते थे। रुचि राम ने 11 वर्ष की अवस्था तक अपने पिता के साथ व्यवसाय किया। उनकी स्कूली शिक्षा डेरा इस्माइल खान के चर्च मिशन ब्रांच स्कूल में प्रारंभ हुई। लेकिन जब स्कूल के प्रधानाचार्य टीकम राम ने स्कूल छोड़ा तो रुचि राम ने अपना स्थानांतरण मेन चर्च स्कूल में करवा लिया। टीकम राम बहुत योग्य अध्यापक थे और उर्दू पढ़ाते थे। उन्होंने दुबारा फिर स्कूल कुछ ऐसे ही कारणवश बदला। रुचि राम ने सन् 1878 में धर्म प्रकाश स्कूल (बाद में इसका नाम सिटी स्कूल रखा गया) से मिडिल स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की। इस परीक्षा में वह पूरे प्रांत में पहले नंबर पर आये। इस बीच उनके परिवार के भाग्य ने पलटा खाया। उनके पिता की दु:खी अवस्था में मृत्यु हो गयी। इसके बाद साहनी परिवार का डेरा इस्माइल खान में बसे रहना असंभव हो गया। कारण कि यहां कभी

साहनी परिवार की गिनती समाज के कुलीन घरानों में होती थी। इसलिए उनके परिवार ने भेड़ा में बसने की सोची। * लेकिन परिवार का अचानक प्रकट हुआ दुर्भाग्य रुचि राम के अदम्य उत्साह का दमन नहीं कर पाया। वह डेरा इस्माइल खान से आदिवल (पश्चिम पंजाब में झंग के पास एक कस्बा, अब पाकिस्तान में) चले गये। उन्होंने लगभग 150 मील की यह लंबी दूरी पीठ पर किताबों के बस्ते का बोझ लादकर पैदल तय की। पर वह यहां ज्यादा समय तक नहीं टिके। जब वहां के स्कूल के योग्य प्रधानाचार्य काशी नाथ चटर्जी की जगह कोई अन्य अयोग्य व्यक्ति प्रधानाचार्य बना दिया गया तो उन्होंने स्कूल ही छोड़ दिया। वह लाहौर चले गये और वहां से कलकत्ता बोर्ड की परीक्षा पास की। इस बार योग्यता सूची में उनका नाम छठे या सातवें स्थान पर था। बोर्ड परीक्षा के बाद उन्होंने लाहौर के गवर्नमेन्ट कॉलेज (पंजाब विश्वविद्यालय का संघटक महाविद्यालय) में बी. ए. में प्रवेश लिया। उस समय जी. एस. लाइट्नर कॉलेज के प्रधानाचार्य थे। उन्होंने सन् 1881 में इंटरमीडिएट परीक्षा पास की और योग्यता सूची में दूसरा स्थान प्राप्त किया। परंतु सन् 1884 में बी. ए. परीक्षा में वह पहला स्थान प्राप्त करने में सफल रहे। बी. ए. परीक्षा की तैयारी करते समय रुचि राम ने विभिन्न वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में सक्रिय रूप से भाग लिया। इन प्रतियोगिताओं में उनके मुख्य प्रतिद्वंद्वी उनके मित्र पंडित गुरु दत्त हुआ करते थे। अपने छोटे से जीवन काल में ही गुरु दत्त आर्यसमाज आंदोलन के प्रमुख सदस्य बन गये थे। वास्तव में पंजाब में आर्य समाज आंदोलन के तेजी से सफल

---

* बीरबल साहनी, लेखिका शक्ति एम. गुप्ता, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत, नई दिल्ली (1989)। शक्ति एम. गुप्ता प्रोफेसर रुचि राम साहनी की भतीजी हैं। प्रोफेसर रुचि राम साहनी के पुत्रों में बीरबल साहनी सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। बीरबल साहनी ने लखनऊ में बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान की स्थापना की।

होने के पीछे गुरु दत्त और लाला लाजपत राय का हाथ था। एक समय में गुरू दत्त *द आर्या इंटैलीजेन्स* नामक साप्ताहिक या संभवतया पाक्षिक पत्र के संपादक भी थे। इस पत्र के मालिक लाला सालिग राम थे । उपर्युक्त वाद-विवाद प्रतियोगिताओं के विषयों में बहुत विविधता थी, जैसे: 'अकबर बनाम औरंगजेब', 'मनु कौन थे ?', 'विद्युत तरंगें या हर्ट्जियन तरंगें', आदि। उन्होंने दर्शन शास्त्र का गंभीरता से अध्ययन किया। रुचि राम ने विशेष रूप से विलियम हैमिल्टन (1788-1856), जॉन स्टुअर्ट मिल (1806-1873) और जेरेमी बेन्थम (1748-1832) के दर्शन का मनन किया। इसी बीच उन्होंने आर्ट स्कूल में भी शिक्षा ली। यहीं उनकी मुलाकात रुडयार्ड किपलिंग के पिता लॉकवुड किपलिंग से हुई।

प्रारंभ में रुचि राम को गणित में गहरी रुचि थी, पर उन्होंने एम. ए. में अध्ययन के लिए भौतिकी और रसायन विज्ञान विषय चुने। उन दिनों ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों की परंपरा के अनुसार विज्ञान विषयों का अध्ययन करने पर भी बी. एस-सी. और एम. एस-सी. की जगह बी. ए. और एम. ए. की उपाधि ही प्रदान की जाती थी।

लाहौर के गवर्नमेंट कालेज में अध्ययन के दौरान रुचि राम साहनी के छात्र-मन पर अनेक अध्यापकों का गहरा प्रभाव पडा । शाम-उल-उलेमा मौलवी मोहम्मद हुसैन आजाद ऐसे ही प्रभावशाली अध्यापकों में से एक थे। उन्होंने रुचि राम के दिलो-दिमाग पर गहरा असर डाला । रुचि राम इसे अपना सौभाग्य मानते थे कि उन्हें आजाद जैसे महान शिक्षक का शिष्य बनने का अवसर मिला । यह उनके लिए गर्व की बात थी । उन्होंने लिखा : मैं यहां बताना चाहूंगा कि मैं उर्दू भाषा के बहुत अच्छे ज्ञान का कोई दावा तो नहीं करता, लेकिन मैंने आजाद के शिष्य होने का पूरा लाभ उठाया। मैं उनके मुख से निकलने वाले हर अक्षर, हर शब्द को पूरे ध्यान से सुनता । वह

अकबर के दरबार की घटनाओं को एक-एक करके हर दिन बड़े भावनात्मक लगाव और उत्साह के साथ सुनाते। ऐसे अद्‌भुत शब्द चित्र भाषा का कोई प्रकांड विद्वान ही खींच सकता है। इस दौरान हम छात्र जिस रोमांच का अनुभव करते उसका धुंधला-सा आभास देना भी मेरे लिए मुमकिन नहीं है। कक्षा में हम सब रोमांचित और सम्मोहित होकर शांत बैठ जाते और अपने सामने अकबर के दरबार की घटनाओं को एक एक करके चल चित्र की तरह घटते देखते। हमें ऐसा लगता जैसे अकबर के दरबार के नवरत्न हमारे सामने सजीव हो गये हैं। हमें उनके एक-एक हाव भाव, बोलने के अंदाज और भाव-भंगिमाओं का पूरा आभास होता जाता। रुचि राम के अनुसार उर्दू साहित्य को आजाद की सबसे बड़ी देन यह रही कि उन्होंने इसे मध्ययुगीन जंजीरों से मुक्त कराके आधुनिक मुक्त वातावरण में सांस लेना सिखाया। उर्दू भाषा ने अपना पुराना रूप त्यागकर नई व आधुनिक भावनाओं और विचारों को गले लगा लिया।

रुचि राम साहनी अपने इतिहास के अध्यापक जनाब हर्स्ट से भी बहुत प्रभावित थे। हर्स्ट महोदय प्राचीन रोम और यूनान के इतिहास के अच्छे ज्ञाता थे। रुचि राम साहनी ने हर्स्ट महोदय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि मेरी जानकारी में वह इतिहास के एकमात्र अध्यापक (स्कूल या कॉलेज में) थे, जो हर महत्त्वपूर्ण बिंदु को समझाने के लिए ब्लैकबोर्ड पर नक्शा या रेखाचित्र बनाते थे।

गवर्नमेंट कॉलेज में भौतिकी और रसायन के विभागों की स्थापना करने वाले प्रोफेसर जे. कैम्पबेल ओमन का भी रुचि राम साहनी पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने रुचि राम के व्यावसायिक जीवन को सही दिशा भी। वह एक अच्छे प्रयोगकर्ता और प्रभावशाली वक्ता थे। रुचि राम साहनी ने निम्न शब्दों में उनकी प्रशंसा की है: उन्हें मन्द से मन्द बुद्धि के छात्र में भी विज्ञान

के प्रति रुचि जगाने की कला आती थी। उस समय विज्ञान का अर्थ था भौतिकी और रसायन विज्ञान। सन् 1876 में उनके जाने के काफी बाद कॉलेज में जीव विज्ञान (वनस्पति विज्ञान और प्राणि विज्ञान) का अध्यापन प्रारंभ हुआ। उस समय के अन्य युरोपीय अध्यापकों के विपरीत प्रोफेसर ओमन की जन-आंदोलनों में भी गहरी रुचि थी ।

विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान में योगदान

अभी रुचि राम साहनी का एम . ए . पूरा भी नहीं हुआ था कि उनकी नियुक्ति भारत सरकार के मौसम विभाग में द्वितीय सहायक प्रतिवेदक (रिपोर्टर) के रूप में हो गई । उन्हें इस पद पर सबसे पहले कलकत्ता भेजा गया। प्रारंभ में रुचि राम साहनी इस कार्यभार को संभालने में हिचक रहे थे क्योंकि उनकी रुचि अध्यापन के कार्य में थी , जहां वह साथ में शोध कार्य भी कर सकते थे। लेकिन उन दिनों कुशल से कुशल भारतीय के लिए भी विश्वविद्यालयों या उनके संघटक महाविद्यालयों में अध्यापक का पद प्राप्त करना अत्यंत कठिन था। वैसे उन जगहों पर भी शोध की बहुत मामूली सुविधाएं ही उपलब्ध थीं। प्रोफेसर ओमन उपयुक्त अध्यापन कार्य की उपलब्धता की कठिनाइयों से परिचित थे। इसलिए उन्होंने रुचि राम साहनी को मौसम विभाग में सेवा प्रारंभ करने की सलाह दी। प्रोफेसर ओमन ने रुचि राम साहनी को यह भी समझाया कि उपयुक्त अध्यापन कार्य मिलने पर वह नौकरी छोड़ कर वापस आ सकते हैं। साथ ही वह कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज में आवश्यक कक्षाओं में उपस्थित रहकर अपनी एम . ए . की पढ़ाई भी पूरी कर सकते हैं। इस तरह समझाने-बुझाने पर रुचि राम साहनी ने 10 जनवरी 1885 के दिन मौसम विभाग में कार्यभार संभाल लिया। बाद में वह कलकत्ता से शिमला चले गये , जो तत्कालीन भारतीय मौसम विभाग का मुख्यालय

था। यहां उन्होंने सर एच. एफ. ब्लैनफोर्ड (भारतीय भूसर्वेक्षण विभाग के सर डब्ल्यू. टी. ब्लैनफोर्ड के भाई) की देख-रेख में कार्य किया। मौसम विभाग में उनका मुख्य कार्य मौसम की दैनिक और मासिक रपटें तैयार करना था। उन दिनों एक भारतीय (या कहें 'नेटिव') के लिए यह एक अत्यंत गौरवशाली उत्तरदायित्त्व था। उनकी नियुक्ति और उन्हें यह जिम्मेदारी भरा कार्य सौंपने के लिए समाचार पत्रों में खूब आलोचना हुई। इलाहाबाद के *पायोनियर* जैसे *प्रतिष्ठित* समाचार पत्र में उनके विरुद्ध लेख लिखा गया। कहा गया कि एक नेटिव इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए उपयुक्त नहीं है। उन्होंने अपना कार्य पूरे भरोसे के साथ संपन्न किया और सर एच. एफ. ब्लैनफोर्ड उनके कार्य से पूरी तरह संतुष्ट रहे। एक बार उन्होंने स्वयं निर्णय लेकर बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होने वाले चक्रवात की सफल पूर्व-चेतावनी भी जारी कर दी थी।

सन् 1887 में रुचि राम साहनी लाहौर के गवर्नमेन्ट कॉलेज में वापस आ गये। यहां वह प्राध्यापक वर्ग के कनिष्ठ सदस्य थे, फिर भी उन्होंने गवर्नमेन्ट कॉलेज में शिक्षा का स्तर सुधारने में सक्रिय रुचि ली। वह छात्रों को अधिक से अधिक प्रयोग प्रदर्शित करके दिखाते थे। उस समय विशेष रूप से विज्ञान विषयों के लिए कोई अच्छा पुस्तकालय नहीं था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए उन्होंने स्वयं एक व्यक्तिगत पुस्तकालय बनाया। वह हर महीने पुस्तकें खरीदने के लिए एक निश्चित राशि खर्च किया करते थे। उन्हें कक्षा में व्याख्यान देने के लिए विस्तृत नोट्स तैयार करने की आदत थी। बाद में ऐसे कुछ नोट्स पुस्तक के रूप में प्रकाशित भी हुए। वह लंबे समय तक विश्वविद्यालय सिंडीकेट के सदस्य रहे। उनके कार्यकलाप महाविद्यालय में अध्यापन तक ही सीमित नहीं थे। जैसा पहले बताया गया है, रुचि राम साहनी ने विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए

पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट की स्थापना की। इससे इस ओर किये गये उनके प्रयासों को संस्थानात्मक आधार मिला। उन्होंने खुद 500 से अधिक व्याख्यान दिये। उन्होंने बड़ी संख्या में महाविद्यालय के अध्यापकों को संस्थान के कार्यकलापों में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रेरित किया। उनके व्याख्यानों के विषयों में बड़ी विविधता थी : 'साबुन बनाना', 'लाहौर में 1888 से पहले पिया जाने वाला पानी', 'शुद्ध और अशुद्ध वायु,' 'खिलौने और इनसे शिक्षा', 'इलेक्ट्रोप्लेटिंग,' 'मानव की सेवा में बिजली,' 'कांच बनाना,' 'पंजाब और इसकी नदियां', 'टेलीग्राफ का तार कैसे बोलता है' आदि। अधिकतर व्याख्यानों के साथ प्रयोग करके दिखाये जाते थे। वह लालटेन स्लाइडों का व्यापक इस्तेमाल करते थे। उन्होंने सुधरी लालटेन स्लाइड बनाने की प्रक्रिया विकसित की और उसका मानकीकरण किया।* उन्होंने पंजाबी और अंग्रेज़ी (संभवतया उर्दू में भी) दोनों भाषाओं में व्याख्यान दिये। *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए संस्था के साथ एक कार्यशाला भी स्थापित की गई, जिसमें साधारण वैज्ञानिक उपकरणों की मरम्मत और निर्माण कार्य होता था। कार्यशाला में एक ताला और तिजोरी विभाग भी खोला गया ताकि कार्यशाला में सेवारत और इसके द्वारा प्रशिक्षित मिस्त्रियों को काम की कोई कमी न हो। रुचि राम साहनी की लगन व कड़े परिश्रम तथा प्रमुख मिस्त्री अल्लाह बख्श की कुशलता के कारण शीघ्र ही कार्यशाला एक भरे-पूरे व्यावसायिक उद्यम के रूप में बदल गई। कार्यशाला द्वारा तैयार किये गये वैज्ञानिक उपकरणों का स्तर इंग्लैंड की समकालीन निर्माता कंपनियों द्वारा बनाये गये उपकरणों के

---

* रुचि राम साहनी : टॉकिंग साइंस टु द पीपुल, नरेन्द्र सहगल, *साइंस रिपोर्टर* (नई दिल्ली), जनवरी 1993

स्तर के समान था। कार्यशाला में परिष्कृत उपकरणों की मरम्मत का कार्य भी होता था । एक बार रुचि राम साहनी पूना के नामजोशी (देश में स्वदेशी औद्योगिक विकास के लिए कार्य करने वाले प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता) के आमंत्रण पर वहां आयोजित औद्योगिक सम्मेलन में भाग लेने गये। उन्होंने वहां अपनी कार्यशाला में तैयार वैज्ञानिक उपकरणों की प्रदर्शनी भी लगाई । इन उपकरणों की परख के लिए सम्मेलन द्वारा नियुक्त समिति को यह विश्वास नहीं हुआ कि ये उपकरण भारत में और वह भी लाहौर में बनाये गये हैं। समिति का मानना था कि ये उपकरण विदेश से मंगाये गये हैं और कार्यशाला में मात्र इतना किया गया है कि इनकी बढ़िया वार्निश हटाकर घटिया वार्निश लगा दी है, ताकि उपकरण भारत में बने लगें । रुचि राम साहनी ने यह सिद्ध करने के लिए कि उपकरण वास्तव में उनकी कार्यशाला में ही तैयार किये गये हैं, सम्मेलन के समक्ष तीन विकल्प रखे: (i) उपकरणों को वास्तव में बनते हुए देखने के लिए सम्मेलन चाहे जितने लोगों को उनके खर्च पर लाहौर स्थित *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* की कार्यशाला भेज दे; (ii) सम्मेलन किसी भी उपकरण की खरीद के लिए कार्यशाला को बड़ी संख्या में आर्डर दे सकता है। कार्यशाला द्वारा उपकरणों की बिक्री ब्रिटिश कंपनियों द्वारा तय की गई कीमतों से लगभग आधी कीमत पर होती है, इसलिए सम्मेलन को भारी लाभ हो सकता है; (iii) कार्यशाला के प्रमुख मिस्त्री को देश के किसी भी कोने में उपकरण-निर्माण की आवश्यक सुविधाएं देकर छोड़ दिया जाय, वह यहां प्रदर्शित किसी भी उपकरण को लोगों की आंखों के सामने बनाकर दिखा देगा। अब सम्मेलन के सामने कार्यशाला में बने उपकरणों की प्रामाणिकता स्वीकार करने के सिवाय और चारा नहीं था । *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* की कार्यशाला ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्त्वावधान में आयोजित अनेक औद्योगिक प्रदर्शनियों में

भाग लिया और कई पदक जीते। एक बार कलकत्ता में जब कार्यशाला को स्वर्ण पदक से पुरस्कृत किया गया तो निर्णायक मंडल में जगदीश चंद्र बोस भी शामिल थे। कार्यशाला की गतिविधियों के प्रसार में दो व्यक्तियों ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया – होशंगाबाद के *साइंस इन्स्ट्रक्टर* हीरा लाल और जालंधर सर्कल के *इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल* मास्टर प्यारे लाल।

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के संस्थापक-निदेशक और भारत की विज्ञान व प्रौद्योगिकी संबंधी नीतियों के निर्धारण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले डा. शांति स्वरूप भटनागर (1894-1955) रुचि राम साहनी से बहुत प्रभावित थे। उल्लेखनीय है कि पांचवें दशक में भारत में विज्ञान के संगठन में भी डा. भटनागर ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि रुचि राम साहनी ने भटनागर के वैज्ञानिक जीवन को आकार देने में गहरी रुचि ली थी। भटनागर ने अपने जीवन पर अपने अध्यापकों के प्रभाव का स्मरण करते हुए लिखा है :* प्रोफेसर रुचि राम साहनी मुझमें विशेष रुचि लेते थे और अध्ययन के लिए विदेश जाने हेतु दयाल सिंह कॉलेज न्यास से प्राप्त छात्रवृत्ति के लिए मुख्य रूप से वही जिम्मेदार थे ।

जर्मनी जाने से पहले रुचि राम साहनी विभिन्न यौगिकों की घुलनशीलता और इनके संघटकों के बीच संबंधों पर अध्ययन करके इस पक्ष पर कुछ नियमों का निर्धारण कर रहे थे। उन्होंने इस हेतु परमाणु भार पर भी अध्ययन किया था। सीसे पर किये गये अध्ययन के परिणामस्वरूप उन्होंने बताया कि योग्य रसायन विज्ञानियों द्वारा निर्धारित किये गये

---

* डॉ. एस. एस. भटनागर के निजी पत्र, निसटाड्स, नई दिल्ली

परमाणु भार में भिन्नता का कारण मात्र प्रायोगिक गलतियां नहीं हैं। संभवतया इसका कारण सीसे के लवण में सूक्ष्म लेकिन विविध मात्राओं में कुछ अन्य यौगिकों की उपस्थिति है। उन्होंने पाया कि बिस्मथ के साथ भी ऐसा ही है। वह जर्मनी में भी इसी दिशा में कार्य करना चाहते थे। लेकिन वहां पहुंचने पर रुचि राम साहनी को पता लगा कि डॉ. फैजन्स पहले ही एक ऐसी समस्या सुलझा चुके हैं। वह सीसे के परमाणु भार के निर्धारण में देखी गयी विभिन्नताओं का कारण खोज चुके थे। फैजन्स ने पाया कि एक रेडियोधर्मी समस्थानिक (आइसोटोप), रेडियम-डी, इन विभिन्नताओं के लिए जिम्मेदार था। जिस समय रुचि राम साहनी वहां पहुंचे, फैजन्स बिस्मथ की समस्या पर कार्य कर रहे थे। यह जानने के बाद कि वह जिन समस्याओं पर कार्य करना चाहते थे, उनमें से एक को फैजन्स सुलझा चुके हैं और दूसरी को सुलझाने की दिशा में काफी आगे बढ़ चुके हैं, रुचि राम साहनी इन्हीं समस्याओं पर कार्य करने में थोड़ा हिचक रहे थे। उनकी मुख्य चिंता यह थी कि वह रेडियोधर्मिता संबंधी तकनीकों से अधिक परिचित नहीं थे और इस कारण फैजन्स के कार्य में बाधा उत्पन्न हो सकती थी। लेकिन रुचि राम साहनी द्वारा प्राप्त परिणामों से फैजन्स प्रभावित थे, इसलिए उन्होंने रुचि राम साहनी को अपने साथ इन्हीं समस्याओं पर कार्य करने के लिए राजी कर लिया। लेकिन जैसा पहले बताया गया है, प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने के कारण वह जर्मनी में ज्यादा समय के लिए नहीं रुक सके। वह जर्मनी से इंग्लैंड गये, जहां उन्होंने अर्नेस्ट रदरफोर्ड के साथ भौतिकी प्रयोगशाला, विक्टोरिया विश्वविद्यालय, मानचेस्टर में कार्य किया। मानचेस्टर में आल्फा, बीटा और गामा किरणों की फोटोग्राफी क्रिया पर अन्वेषण करने के साथ ही उन्होंने रेडियोधर्मी/ ब्रह्मांडीय किरणों (कॉस्मिक रेज़) के उत्सर्जन में आल्फा विकीर्णन पर भी अध्ययन किया। इन अन्वेषणों

के परिणाम रदरफोर्ड ने स्वयं प्रकाशन के लिए भेजे, जो *फिलोसॉफिकल मैगज़ीन* में प्रकाशित हुए ।* दुर्भाग्य से रुचि राम साहनी आगे अध्ययन के लिए जो फोटोग्राफिक प्लेटें अपने साथ भारत ला रहे थे, वे समुद्री यात्रा के दौरान खराब हो गईं । इस तरह इस दिशा में उनके तेजी से बढ़ते अनुसंधान के कदम एकाएक रुक गये।

रुचि राम की वैज्ञानिक व्यावहाारिक कृषि में गहरी दिलचस्पी थी, क्योंकि वे इसे समय की आवश्यकता मानते थे । उन्होंने वैज्ञानिक कृषि पर कई ग्रंथों के अध्ययन के साथ ही रासायनिक खादों के उत्पादन और उपयोग पर भी अध्ययन किए । उन्होंने स्वयं कई मन हड्डी की खाद (फास्फेट और बोन मील) और अन्य खादें तैयार की । उन्होंने खुद बनाई हुई खादों पर प्रयोग किए और कुछ जमींदारो को नियंत्रित दशाओं में इन्हें परखने के लिए तैयार भी किया । आम जनता को इन प्रयोगों के नतीजें बताने के लिए उन्होंने *पैम्फलेट* और *लीफलेट* प्रकाशित किए । व्यावहारिक कृषि में रुचि राम की दिलचस्पी देखते हुए तत्कालीन सार्वजनिक शिक्षा निदेशक डॉ. जे. सेम ने उन्हें इस विषय पर स्कूल के लिए तीन रीडर तैयार करने की सरकारी जिम्मेदारी सौंप दी । रुचि राम ने तीन किताबें तैयार की, जिनके शीर्षक थे - 'खेती की पहली किताब', 'खेती की दूसरी किताब' और 'खेती की तीसरी किताब' । रुचि राम के अनुसार इनकी पांडुलिपियों में दिल्ली के प्रसिद्ध उर्दू विद्वान और लिपिशास्त्री सैयद अहमद ने संशोधन किए थे और कुछ अंशों को दुबारा लिखा भी था । सैयद अहमद उर्दू के

---

* रुचि राम साहनी, *फिलोसॉफिकल मैगज़ीन*, 28,836 (1915); रुचि राम साहनी, उपर्युक्त, 33,290 (1917)

प्रसिद्ध शब्दकोश 'फरबंग ए असाफिया' के लेखक भी थे। ये पुस्तकें अनेक वर्षों तक स्कूल में पढ़ायी जाती रहीं ।

सामाजिक आंदोलन में उनकी भूमिका

रुचि राम साहनी उदार विचारों के व्यक्ति थे। उन्होंने युवावस्था में ही ब्रह्म समाज को अंगीकार कर लिया था और बाद में इस आंदोलन के नेता बने। ब्रह्म समाज बंगाल में अंकुरित एक प्रगतिशील धार्मिक व सामाजिक सुधार आंदोलन था। सन् 1886 में वह थोड़े समय के लिए क़लकत्ता में रहे। इसी अल्प-प्रवास ने उनके दुनियावी विचारों को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनके पुत्र मुल्क राज साहनी ने इस संबंध में लिखा है: "नि:संदेह पिताजी ने कलकत्ता प्रवास के दौरान प्रगतिशील विचारों को ग्रहण किया . .।*" कलकत्ता में उन्होंने अनेक ख्याति प्राप्त बंगाली सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक महानुभावों से मुलाकात की। इनमें रवीन्द्र नाथ टैगोर भी शामिल थे। सत्यजीत राय के दादा उपेन्द्र किशोर राय चौधरी से उनकी मित्रता हो गई। वह केशव चन्द्र सेन के व्याख्यानों को भी सुनने जाते थे। कलकत्ता में वह आशुतोष मुकर्जी, प्रफुल्ल चंद्र राय और जगदीश चंद्र बोस जैसे व्यक्तियों के संपर्क में आये, जो उनकी ही तरह भारत में आधुनिक विज्ञान की परंपराओं की नींव रखने में जुटे थे।

उन्होंने अपने धर्म को दीवारों में कैद नहीं किया था। वह अपनी जाति से बिलकुल विमुख से हो गये थे। उन्हें कई बार तत्कालीन रुढ़िवादी समाज के नेताओं द्वारा डराया-धमकाया गया, लेकिन रुचि राम साहनी ने इन

---

* लैंडमार्कस एंड स्टैंडलीनेस : ऐन आटोबायोग्राफी (अप्रकाशित), लेखक : मुलक राज साहनी ।

धमकियों की कभी परवाह नहीं की और निरंतर रुढ़िबादिता के विरुद्ध संघर्ष में जुटे रहे। वह सिख नहीं थे, लेकिन उन्होंने स्वर्ण मंदिर के सरोवर में घुटनों तक मिट्टी में खड़े होकर गाद को निकाला और टोकरियों में भर उसे सिर पर लादकर बाहर निकाला। यह सब उन्होंने सरोवर के तल पर जमी मिट्टी निकाल कर उसकी सफ़ाई के लिए किया (अब ऐसे कार्यों को कार-सेवा कहा जाता है)। उन्होंने सिख तीर्थ स्थानों पर एक पुस्तक भी लिखी। *

उन्होंने देशवासियों के अधिकारों के लिए दिलेरी के साथ संघर्ष किया। उन्होंने अपने आपको तन-मन-धन से स्वतंत्रता आंदोलन के लिए समर्पित कर दिया था। रुचि राम साहनी सन् 1923 में स्वराज पार्टी के टिकट पर पंजाब विधान परिषद् के सदस्य बन गये। राष्ट्रीय विचारधारा के प्रमुख पंजाबी नेता सरदार दयाल सिंह मजीठिया के साथ उनका काफी घनिष्ठ संबंध था। रुचि राम साहनी के आग्रह पर ही उन्होंने लाहौर में *द ट्रिब्यून*, दयाल सिंह पुस्तकालय और यूनियन एकेडेमी (बाद में इसे दयाल सिंह कॉलेज का नाम दिया गया) की स्थापना की। ** रुचि राम साहनी की महाद्वीप के समाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों में गहरी रुचि थी। उन्होंने अपनी पुस्तक *द अवेकनिंग ऑफ एशिया* के परिचय में लिखा है: "इस वर्णन की मुख्य रोचकता वर्तमान शताब्दी के प्रारंभिक दशक में संपूर्ण प्राचीन

---

* *स्ट्रगल्स फॉर रिफार्मस् इन सिख श्राइन्स*, रुचि राम साहनी, अमृतसर (एन. डी.)

* *डिक्शनरी ऑफ नेशनल बायोग्राफी*, खंड-4, में रुचि राम साहनी। लेखक - वी. एस. सूरी और टी. आर. सरीन, संपादक - एस. पी. सेन, इंस्टीट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल स्टडीज़, कलकत्ता, 1974.

महाद्वीप में घटित आश्चर्यजनक सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों में निहित है। इसके बाद मेरी इच्छा है कि मैं एक अन्य छोटी पुस्तक लिखूं जो पूर्णरूप से भारत के समकालीन जागरण को समर्पित हो । *

वह भारत की स्वतंत्रता देखने तक जीवित रहे। मुंबई में 3 जून 1948 को उनका देहावसान हो गया।

---

* *अवेकनिंग ऑफ एशिया*, रुचि राम साहनी, लाहौर, 1929

अध्याय - 1

एक हिंदुस्तानी का संघर्ष

ऐसी कोई वजह नहीं कि मैं अपनी सरकारी ज़िंदगी के तजुर्बों को अनोखा समझूं। शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि मेरे स्तर के अन्य हिंदुस्तानियों की तुलना में मेरा ज्यादा लिहाज किया गया और मुझे ज्यादा मान-सम्मान मिला। मैंने लगभग 33 सालों तक सरकारी नौकरी की। मेरी सरकारी जिंदगी की शुरुआत हिंदुस्तानी मौसम विभाग में जनाब एच.एफ. ब्लैनफोर्ड [1] ; एफ.आर. एस., की मातहती में 10 जनवरी 1885 को हुई । जनाब ब्लैनफोर्ड फरिश्तों जैसे अफसर थे। मार्च 1887 के आखिर में मेरा तबादला पंजाब शिक्षा विभाग में विज्ञान (भौतिकी और रसायन विज्ञान) के सहायक प्रोफेसर के रूप में लाहौर के गवर्नमेन्ट कॉलेज में हो गया। यहीं से मैंने 15 अप्रैल 1918 को 55 वर्ष की अवस्था में रसायन विज्ञान के वरिष्ठ प्रोफेसर के पद से अवकाश ग्रहण किया। इस बीच सन् 1908 में मैंने 10 महीनों के लिए मुल्तान सर्कल के स्कूल-निदेशक की जिम्मेदारी भी निभायी। इसी तरह सन् 1905 में मैं तीन महीनों के लिए अमृतसर सर्कल का स्कूल- निदेशक भी रहा। मैंने कुल आठ प्रधानाचार्यों और पांच सार्वजनिक शिक्षा निदेशकों की मातहती में सेवा की। मेरा 31 वर्षों से ज्यादा समय के लिए कॉलेज के साथ संबंध रहा और इस बीच 30 से ज्यादा युरोपीय प्रोफेसरों के साथ मेरे अच्छे घनिष्ठ संबंध बने। मेरे समय में हर संभव कोशिश की जाती थी कि शिक्षा विभाग के उच्च पदों पर हिंदुस्तानियों की नियुक्ति न हो। यह नीति खासतौर से अध्यापकों को प्रभावित करती थी। कुछ लोगों को यह जानकर ताज्जुब होगा कि उस समय

पूरे हिंदुस्तान में सिर्फ तीन हिंदुस्तानी ही 'इंडियन एजुकेशनल सर्विस' में थे। इनके नाम थे – सर जगदीश चंद्र बोस [2], डी. एस-सी., एफ. आर. एस.; डा. डी. एन. मलिक, डी. एस-सी; और एक ईसाई महोदय जो मद्रास में अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। यहां तक कि सर प्रफुल्ल चंद्र राय [3], डी. एस-सी., ने भी अपनी सारी जिंदगी शिक्षा विभाग में निचले स्तर पर काम करते हुए ही बितायी।

मेरे लंबे सेवाकाल में सम्पर्क में आये लगभग 50 कामरेडों - मैं तो इन्हें कामरेड ही कहना चाहूंगा - में से सिर्फ दो के साथ मेरे गंभीर मतभेद रहे, जबकि बाकी सभी मुझसे खुश रहे। इनमें से कुछ के साथ तो मेरे संबंध खासतौर से दोस्ताना और मीठे थे। मैंने अपनी पूरी सरकारी जिंदगी जिस निर्भीकता और स्वतंत्रता के साथ बितायी, उसको देखते हुए यह शिकायत नहीं की जा सकती कि मेरे साथियों या अधिकारियों ने मेरे साथ कोई गलत बर्ताव किया। उन अधिकारियों का मैं तहेदिल से शुक्रगुज़ार हूं, जिन्होंने नियमों की परवाह न करते हुए मेरा साथ दिया और अपने उन युरोपीय साथियों की तुलना में मुझ पर ज्यादा भरोसा किया, जो मुझसे वरिष्ठ थे। अपने बारे में मैं पूरी सच्चाई से कह सकता हूं कि मैंने अपनी पूरी बुद्धि और क्षमताओं के साथ ईमानदारी व निष्पक्षता को निभाते हुए विभाग की सेवा करने की कोशिश की। साथ ही मैं हमेशा अपने ऐसे व्यवहार की कीमत अदा करने के लिए भी तैयार रहता था और जरूरत पड़ने पर मैंने कीमत चुकाई भी, पर मैंने कभी अपने आत्मसम्मान और सच्चाई पर आंच नहीं आने दी।

डेंजिल इब्बेतसन का दौरा

अभी मैं गवर्नमेन्ट कॉलेज में एम. ए. की पढ़ाई कर ही रहा था कि मेरे साथ ऐसी दो घटनाएं घटीं, जिनका मेरी आने वाली जिंदगी में खासा दखल

रहा। इनमें से एक उस समय के कार्यकारी सार्वजनिक शिक्षा निदेशक जनाब डेंजिल इब्बेतसन [4], आई. सी. एस., का कॉलेज का अचानक दौरा था (बाद में सर डेंजिल इब्बेतसन पंजाब के लेफ्टीनेंट गर्वनर भी बने)।

उस समय कॉलेज के स्थायी कर्मचारियों में सिर्फ एक हिंदुस्तानी था — बाबू शशि भूषण मुकर्जी, जो गणित के सहायक प्रोफेसर थे। मेरे विचार से सन् 1882* के शिक्षा आयोग की सिफारिशों के कारण उन दिनों हिंदुस्तान के शिक्षा विभाग के उच्च राजपत्रित पदों पर हिंदुस्तानियों की तादाद बढ़ाने की मुहिम चल रही थी। इसके कुछ ही महीनों बाद डा. जगदीश चंद्र बोस, डी. एस-सी. (लंदन), को प्रेसिडेंसी कॉलेज में नियुक्त किया गया और अगले साल जनाब जी. एन. चटर्जी, बी. ए. (कैन्टेब), को गवर्नमेन्ट कॉलेज में नियुक्ति दी गई।

जनाब इब्बेतसन मेरी प्रयोग करने की मेज तक आये और उन प्रयोगों को देखा, जो मैं उस समय कर रहा था। जहां तक मुझे याद पड़ता है, मैं उस समय ऐल्केलॉयड्स के निष्कर्षण और परीक्षण में व्यस्त था। उन्होंने मेरी नोट-बुक देखी और प्रयोगों की बाबत कुछ सवाल पूछे और कुछ परीक्षणों को करवा के भी देखा। इस तरह मेरे साथ लगभग एक घंटा बिताने के बाद उन्होंने मुझसे पूछा कि इम्तहान में पास होने के बाद मैं क्या करूंगा। मैंने

---

* सर डब्लू. डब्लू. हंटर, लार्ड रिपन द्वारा नियुक्त इस आयोग के अध्यक्ष थे और आनंद मोहन बोस [5] तथा सर सैयद अहमद [6] इसके भारतीय सदस्य थे। आयोग की अध्यक्षता पहले श्री बोस को सौंपी जा रही थी, लेकिन उन्होंने कहा कि अगर कोई उपयुक्त युरोपीय व्यक्ति इसका अध्यक्ष बने तो उसकी सिफारिशों पर ज्यादा ध्यान दिया जाएगा। श्री बोस बहुत संकोची प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। वह कलकत्ता विश्वविद्यालय के अत्यंत प्रतिभाशाली छात्र थे और उन्हें राय चंद प्रेम चंद छात्रवृत्ति भी मिली थी। वह कैंब्रिज विश्वविद्यायल के रैंगलर और बार-एट-लॉ भी थे।

कहा कि अभी तो ठीक से नहीं जानता, पर मैं वैज्ञानिक कार्य करना पसंद करूंगा। उनके जाने के बाद प्रोफेसर जे. सी. ओमन ने मुझे बताया कि जनाब इब्बेतसन मुझसे बहुत प्रभावित थे। प्रोफेसर ओमन का विचार था कि शायद मुझे कॉलेज में अध्यापक बनाने के लिए जल्दी ही कोई सरकारी प्रस्ताव आये। प्रोफेसर ओमन को उस प्रस्ताव के बारे में निश्चित रूप से कुछ मालूम नहीं था। जहां तक मुझे लगता है, वह मुझे शिक्षा विभाग में बन रही योजनाओं या कहें जनाब इब्बेतसन के दिमाग में पक रही खिचड़ी के बारे में खुले रूप से सब कुछ बताने के लिए तैयार नहीं थे।

मैं मौसम विभाग में

दूसरा प्रस्ताव आने में ज्यादा समय नहीं लगा। जनवरी 1885 के पहले हफ्ते में प्रोफेसर ओमन ने मुझे एक अर्ध-सरकारी पत्र दिखाया। मौसम विभाग के अध्यक्ष की ओर से आये इस पत्र में उनसे किसी ऐसे उपयुक्त विज्ञान स्नातक का नाम सुझाने की गुजारिश की गई थी, जो भारत सरकार में सहायक मौसम रिपोर्टर के राजपत्रित पद की जिम्मेदारी संभाल सके। प्रोफसर ओमन ने मुझे जोर देकर यह कार्य करने की सलाह दी। उनका कहना था कि देश में वैज्ञानिक पद ज्यादा नहीं हैं और मुझे ऐसा मौका दोबारा जल्दी नहीं मिलेगा। साथ ही उन्होंने यह भी समझाया कि जनाब इब्बेतसन के प्रस्ताव को असलियत में बदलने में अभी समय लगेगा और फिर अगर बाद में शिक्षण संबंधी ऐसा कोई उपयुक्त प्रस्ताव आये तो तुम उसे मंजूर कर सकते हो। तब तुम्हारा तबादला पंजाब हो जाएगा। मैं राजी हो गया। कुछ दिनों बाद ही मुझे तार द्वारा सूचित किया गया कि मैं सेंट्रल म्यूर कॉलेज (इलाहाबाद) में भौतिकी के प्रोफेसर जनाब ए. एस. हिल से मिलूं। जनाब एच. एफ. ब्लैनफोर्ड उन दिनों छुट्टी पर चल रहे थे और उनका काम-काज अस्थायी तौर पर जनाब हिल देख रहे थे। दस जनवरी 1885 को मेरे साक्षात्कार से पहले जनाब

हिल अनेक प्रांतों से आये कई उम्मीदवारों का साक्षात्कार ले चुके थे। मैं यह नहीं कह सकता कि मैं अन्य उम्मीदवारों से ज्यादा योग्य था, लेकिन एक या दो सवालों के मेरे जवाब से जनाब हिल बहुत खुश हुए थे। जनाब हिल को मेरे पक्ष में फैसला देने के लिए उकसाने वाले ये सवाल संभवतया चक्रवातों से संबंधित थे।

उन्हें शायद कोई मुझसे ज्यादा संतुष्ट कर भी नहीं सकता था, क्योंकि कुछ ही साल पहले मैं नाव से चेनाब पार करते समय धारा में बने भंवर के बीच फंस गया था। वह कभी न भूलने वाला भयंकर व्यक्तिगत अनुभव उनके सवालों के जवाब देने में मेरे बड़े काम आया। उन्होंने मुझसे सीधे कलकत्ता जाकर दफ्तर में रिपोर्ट करने को कहा। भारत सरकार के कृषि विभाग के अवर सचिव जनाब टी. डब्ल्यू. होल्डरनेस को मेरी तनख्वाह तय करनी थी, क्योंकि हमारा दफ्तर इसी विभाग से जुड़ा था। मैंने उनसे कहा कि मैं अपनी एम. ए. की पढ़ाई अधूरी छोड़ना नहीं चाहता। लेकिन वह तो मुझे तुरंत इस जिम्मेदारी के साथ बांधने पर तुले थे, इसलिए उन्होंने आश्वासन दिया कि वहां प्रेसिडेंसी कॉलेज में अंशकालीन रूप से रसायन की कक्षाओं में अध्ययन करने में दफ्तर को कोई आपत्ति नहीं होगी। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि वह प्रेसिडेंसी कॉलेज के रसायन के प्रोफेसर जनाब (बाद में सर) ऐलेक्जेंडर पेडलर[7], एफ.आर.एस., को भी सारी सुविधाएं मुहैया कराने और अपने निर्देशन में अध्ययन की सुविधा देने के लिए लिख देंगे। प्रोफेसर पेडलर बंगाल के मौसम रिपोर्टर भी थे और इसके लिए उन्हें हर महीने 250 रुपये का अतिरिक्त भत्ता मिलता था। कलकत्ता में हर किसी ने मेरे साथ बड़ा कृपालु व्यवहार किया। गवर्नमेन्ट कॉलेज, लाहौर में मुझे फुलर एक्सिबिश्नर के तौर पर 35 रुपये महीने का वजीफा भी मिलता था। मुझसे कहा गया कि पंजाब विश्वविद्यालय को यह सिफारिश की जाएगी कि मौसम

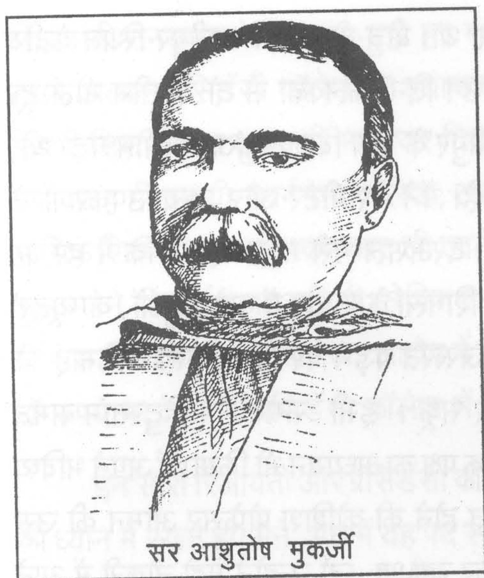
विभाग की तनख्वाह के अलावा मुझे हर महीने वजीफा भी मिलता रहे। इसके अलावा प्रेसिडेंसी कॉलेज के प्रधानाचार्य जनाब सी. एच. टौनी ने मेरा मासिक शिक्षण शुल्क भी माफ कर दिया। उन्होंने ऐसा करने की मुझे एक वजह भी बतायी—गवर्नमेन्ट कॉलेज, लाहौर से मिलने वाले वजीफे से मासिक शिक्षण शुल्क की रकम काट ली जाती थी। इसलिए दुबारा शिक्षण शुल्क लेने की कोई वजह नहीं थी। लेकिन शायद उन्हें यह नहीं ध्यान आया कि उस समय गवर्नमेन्ट कॉलेज, लाहौर में एम. ए. का शिक्षण शुल्क सिर्फ दो रुपये था, जबकि प्रेसिडेंसी कॉलेज में 12 रुपये देने पड़ते थे।

इन सारी रिआयतों और प्रेसिडेंसी कॉलेज में बेहतर शिक्षा की सुविधा को ध्यान में रखते हुए मैंने अंत में यह पद स्वीकार कर लिया। मेरा सरकारी पदनाम था–भारत सरकार का द्वितीय सहायक मौसम रिपोर्टर। प्रथम सहायक मौसम रिपोर्टर एक युरोपीय सज्जन थे, जिनका नाम जनाब डलास था। वह 500 रुपये तनख्वाह पाते थे, जो बढ़कर 1000 रुपये तक हो सकती थी। मुझे 100-150 रुपये के वेतनमान में रखा गया, पर जनाब होल्डरनेस ने कुछ तजुर्बे के बाद मेरे वेतनमान में संशोधन का आश्वासन दिया। जनाब डब्ल्यू. एल. डलास हिंद महासागर से गुजरने वाले समुद्री जहाजों के रोजनामचों से संबंधित विशेष कार्य के अधिकारी थे, जबकि मुझे दैनिक और मासिक मौसम रपटें तैयार करने व जारी करने का जिम्मेदारी भरा काम सौंपा गया। मेरी स्थायी नियुक्ति शिमला में होनी थी, क्योंकि भविष्य में दैनिक मौसम रपटें वहीं से जारी होनी थीं। जब तक मैं कलकत्ता में रहा, दफ्तर जाने-आने का मेरा कोई नियत समय नहीं रहा और न ही मेरी जिम्मेदारी भली प्रकार निर्धारित हो पायी। उन दिनों मैं प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्रतिदिन तीन-चार घंटे गुजारता था। देखा जाय तो मैं उन दिनों प्रशिक्षण में था, इसलिए मैंने अपने काम के अलावा उन सभी कम्प्यूटरों का काम भी सीख

लिया, जिनसे मुझे काम लेना था। बीच-बीच में मैं अलीपुर स्थित केंद्रीय वेधशाला भी जाता था, जो उन दिनों कलकत्ता से दो या तीन मील दूर पड़ती थी। कलकत्ता और अलीपुर के बीच विशाल बंजर जमीन पड़ी थी, जो अब शहर में समा गयी है। मैंने बैरोमीटर और अन्य उपकरणों के अंशमापन का काम भी सीखा। दरअसल मेरी मंशा यह थी कि मैं हर वह काम भली प्रकार सीख लूं, जो शिमला के दफ्तर में मुझे बाबुओं, कम्प्यूटरों वगैरह से लेना था, ताकि मैं जरूरत पड़ने पर बिना किसी कठिनाई के उनकी जगह पर भी काम कर सकूं। इसी समय मैंने हिंदुस्तान समेत अन्य देशों के मौसम के वैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन भी किया। मैं अपने भविष्य के कार्य में पूरी तरह से पारंगत होने की कोशिश प्रोफेसर ओमन की उस मूल्यवान सलाह के अनुसार कर रहा था, जो उन्होंने मुझे नौकरी में आने से पहले दी थी।

कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज में

उस समय प्रेसिडेंसी कॉलेज में अनेक ऐसे युवक अध्ययन कर रहे थे, जिन्होंने बाद में देश के सार्वजनिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया। ऐसे युवकों में से मेरी मित्रता सर आशुतोष मुकर्जी[8] से भी थी। एम. ए. में गणित की पढ़ाई करने के कारण वह मेरे समकालीन थे। जैसा मैं पहले बता चुका हूं, मैं उस समय (सर) ऐलेक्जेंडर पेडलर के निर्देशन में रसायन में एम. ए. की अंतिम परीक्षा की तैयारी भी कर रहा था। मैं सीता राम घोष स्ट्रीट (नई हैरिसन रोड पर) स्थित ब्रह्मसमाज के छात्रावास में रहता था। उन दिनों बंगाली लोग अपनी सैनिक प्रशिक्षण की कमी को बहुत ज्यादा महसूस करते थे (यहां मैं बहुत ज्यादा शब्द का उपयोग जानबूझ कर कर रहा हूं)। मुझे अक्सर आशुतोष और अन्य दोस्त शाम को बाहर घुमाने ले जाते और जोर देकर कहते कि हमें गुरु गोविंद सिंह[9], रंजीत सिंह[10]


सर आशुतोष मुकर्जी

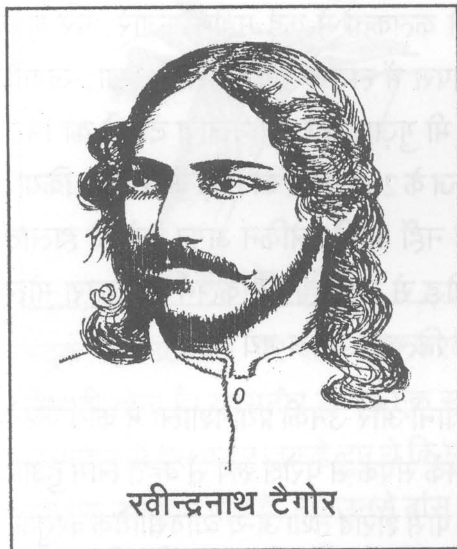
हरि सिंह नलवा[11] आदि के बहादुरी के कारनामे सुनाओ। छात्रावास के बहुत से साथी सैनिक प्रशिक्षण के लिए बहुत उत्सुक थे और मेरे बहुत मना करने के बावजूद भी मुझे ड्रिल-सार्जेंट का काम करना पड़ता था। मैं उनसे बताता कि शारीरिक रूप से मैं एक कमजोर पंजाबी हूं और मैंने कभी बंदूक नहीं उठायी । पर वह ना, ना करके कहते, हर पंजाबी जन्म से ही सिपाही होता है। खासतौर से मेरे एक साथी जनाब दास ड्रिल सीखने के सम्मोहन से इस कदर जकड़े हुए थे कि मुझे लगता कि हंसी-मज़ाक के लिए वह एक उपयुक्त पात्र हैं। मैंने उनसे बांस की दो लंबी छड़ियां लाने को कहा। एक छड़ी मेरी बंदूक बन गयी और एक उनकी। शस्त्र अधिनियम लागू होने के कारण वह इस इंतजाम से संतुष्ट थे, क्योंकि हम असली बंदूकें तो इस्तेमाल कर नहीं सकते थे। इसी लाठी को कंधे पर रखवाकर मैं जनाब दास से छात्रावास के छोटे - से मैदान में ही आगे-पीछे ड्रिल (कवायद) करवाता। यह कसरत एक हफ्ते तक हर रोज सुबह कोई एक घंटे चली। इसके बाद मैंने अपने छात्र को ड्रिल का मास्टर घोषित कर पास कर दिया। जहां तक मैं समझ पाया जनाब दास का यह पक्का विश्वास था कि उन्होंने निशाना लगाने के अलावा बाकी सारे सैनिक कार्य भली प्रकार से सीख लिये हैं। कुछ सालों बाद जब मेरी उनसे मुलाकात हुई तो वह कलकत्ता के बेथ्यून

कॉलेज में प्रोफेसर थे। लड़कों के कॉलेज में आमतौर पर अध्यापकों को होने वाली दिक्कतों की तुलना में उन्हें कम मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था। मेरा दृढ़ विचार है कि पिछले चालीस सालों में बंगाली युवाओं में एक आश्चर्यजनक बदलाव आया है। प्रेसिडेंसी कॉलेज में अक्सर मैकाले द्वारा पूरे बंगाली समुदाय पर लगाये गये कायरता के आरोप को लेकर दोस्तों के साथ लंबी चर्चाएं होती थीं। मैंने कलकत्ता में कई महीने गुज़ारे, पर कभी भी गलियों में दो लड़कों को आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं देखा, जबकि लाहौर के बाज़ारों में एक घंटा भी गुज़ारो तो यह नज़ारा देखने को मिल जाएगा। मैंने एक बार खुद कॉलेज के 200 छात्रों की भीड़ का सामना किया, पर जरा भी हाथापाई की नौबत नहीं आयी। लेकिन अगर ऐसे ही हालात मेरे प्रांत में होते तो मैं कभी भी भीड़ से लहूलुहान निकलने का खतरा मोल नहीं लेता। लेकिन आज हालात बिल्कुल बदल गये हैं।

प्रोफेसर पेडलर के व्याख्यानों और उनकी प्रयोगशाला में कार्य करने की सुविधा के अलावा भी मुझे उनके संपर्क से परोक्ष रूप से बहुत लाभ हुआ। कई बड़ी स्थानीय कंपनियां उनके पास शराब तथा अन्य व्यावसायिक वस्तुओं के नमूने विश्लेषण के लिए भेजती थीं। प्रोफेसर साहब शायद ही कभी यह विश्लेषण खुद करते। ज्यादातर वह इन वस्तुओं को प्रयोगशाला सहायक के पास भेज देते। यह जनाब बी. रसायन में एम. ए. थे और व्याख्यान के साथ दिखाये जाने वाले प्रयोग करने में बहुत माहिर थे। मैं जब तक प्रेसिडेंसी कॉलेज में रहा, जनाब बी. अक्सर मुझसे नमूनों के विश्लेषण करने के लिए कहते और मैं खुशी-खुशी कर देता। यह बंदोबस्त सबके लिए लाभप्रद एवं अनुकूल था। मुझे बहुमूल्य अनुभव मिलता। जनाब बी शराब की बोतलें रख लेते, क्योंकि वास्तविक परीक्षणों के लिए शराब की बहुत थोड़ी-सी मात्रा की जरूरत होती थी और हर विश्लेषण से मिलने वाले 32 रुपये

प्रोफेसर पेडलर की जेब में जाते ।

प्रोफेसर पेडलर नगरपालिका के लिए भी विश्लेषक का काम करते थे। इस रूप में उनकी जिम्मेदारी थी कि वह नगरपालिका द्वारा आपूर्ति किये जा रहे पानी और गैस के विश्लेषण की दैनिक रपटें भेजें। शराब की तरह, मैंने कई बार पानी का विश्लेषण किया और कम से कम एक महीने तक नियमित रूप से गैस का विश्लेषण भी किया। रसायन विज्ञान के छात्र के लिए यह प्रयोगात्मक अनुभव बहुत काम का है। कारण कि इस तरह उपयुक्त उपकरणों को भली प्रकार जुगाड़ कर उन्हें उपयोग में लाना सीखा जा सकता था और किसी बड़े कस्बे की गैस आपूर्ति पर कुछ मिनटों में ही एक विश्वसनीय रिपोर्ट तैयार करने का गुर समझ में आ जाता था।


रवीन्द्रनाथ टैगोर

प्रेसिडेंसी कॉलेज के अपने सहपाठियों में से मैं दो ब्रह्मसमाजी युवकों के बारे में कुछ शब्द कहना चाहूंगा। इनमें से एक जनाब उपेंद्र किशोर राय चौधरी यानी उपेन बाबू थे। वह लंबे, घुंघराले बालों वाले और सुंदर नवयुवक थे। उन्होंने बड़ा मीठा व संगीतमय गला पाया था और व्यक्तित्व भी आकर्षक था प्रोफसर पेडलर जैसे ही प्रयोगशाला से बाहर जाते, तुरंत उपेन से गाना गाने की फरमाइश होने लगती (ऐक गान होचे)। अकसर कोई चौथाई घंटे तक प्रयोगशाला में उनके मधुर गीत गूंजते रहते। हम सभी साथी


राजा राममोहन राय

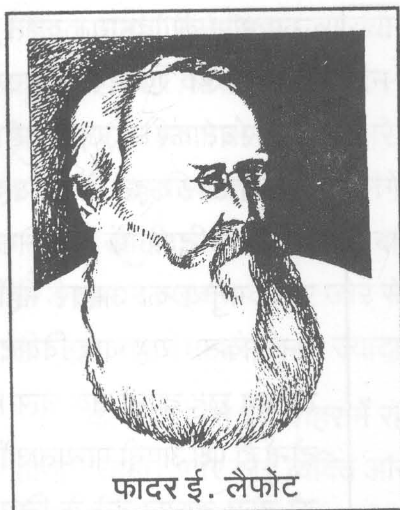
रोमांचित हो जाते। कई सालों बाद मैं दुबारा कलकत्ता गया। एक रविवार की शाम मैं और डॉ. (अब सर) प्रफुल्ल चंद्र राय ब्रह्म मंदिर की प्रार्थना सभा में अगल-बगल बैठे थे। मैंने उनसे अपने पुराने दोस्त और सहपाठी उपेंद्र किशोर राय चौधरी के बारे में पूछा। उन्होंने कहा समाज में इस नाम का तो कोई नहीं है। इतने सालों में मैं उससे एक बार भी नहीं मिला था, लेकिन जैसे ही सभागार की बॉलकनी में आरती (जय देवा, जय देवा ......) का सामूहिक गान शुरू हुआ मैंने उसे तुरंत आरती करने वाले व्यक्ति के रूप में पहचान लिया। प्रार्थना के बाद मैंने यह बात डॉ. राय को बतायी। ओह! तुम्हारा मतलब यू. राय से है, वह चौंक गये। अपने इसी अंग्रेजी रूप में वह हिंदुस्तान भर में मशहूर थे। उसने किताबों और अखबारों में चित्र छापने के लिए हाफ-टोन ब्लॉक बनाने का कारोबार कर लिया था। मैं जनाब यू. राय से मिला। उसने मुझे कई बार अपने घर पर आमंत्रित किया। अपना स्टूडियो दिखाया और ब्लॉक बनाने की पूरी प्रक्रिया भी समझायी। साथ ही उस प्रक्रिया में अपने द्वारा किये गये सुधारों को भी दिखाया।

दूसरे सज्जन थे डा. गगन चंद्र होम, जनाब अम्मल होम के पिता, जो आजकल कलकत्ता कार्पोरेशन के म्युनिसिपल जर्नल के संपादक हैं। जनाब अम्मल होम ने कुछ समय के लिए लाहौर के ट्रिब्यून में भी काम किया था। कुछ साल पहले जनाब अम्मल होम ने मुझे बताया कि सन् 1935 में

जब वह कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर[12] से मिले तो कवि ने उनसे पूछा कि क्या वह किसी तरह गगन चंद्र होम से संबंधित हैं (अम्मल होम कांग्रेस का जयंती अंक प्रकाशित कर रहे थे, जिसके लिए उन्हें टैगोर के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से संबंधित संस्मरणों की आवश्यकता थी)। यह बताने पर कि अम्मल उनके पुत्र हैं कवि ने प्रसन्न होकर कहा, 'मुझे याद है कि एक बार रुचि राम और गगन चंद्र होम दोनों महर्षि से मिलने आये थे। उस समय वे दोनों प्रेसिडेंसी कॉलेज के छात्र थे।' रवीन्द्र नाथ मुझसे कुछ साल बड़े थे। मुझे याद नहीं आता कि सन् 1885 में मैंने उन्हें कब उनके पिता के साथ देखा था। लेकिन मुझे यह अच्छी तरह याद है कि जब मैं कलकत्ता में छात्र था तो हम माघोत्सव (राजा राम मोहन राय [13] द्वारा ब्रह्म समाज की स्थापना दिवस का उत्सव) के अवसर पर महर्षि के दर्शन करने जाया करते थे। इस अवसर पर हर युवा और वृद्ध ब्रह्मसमाजी, यहां तक कि नेता भी महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर[14] को श्रद्धांजलि अर्पित करके उनसे आर्शीवाद प्राप्त करना अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे। उनके घर पर पुरुषों, महिलाओं और बच्चों का झुंड जमा हो जाता था। यह एक बहुत प्रेरणाप्रद दृश्य होता था। मुझे यह सोचकर ताज्जुब होता है कि पूरे 50 साल बाद भी रवीन्द्र नाथ टैगोर को यह मामूली-सी बात कैसे याद रही कि सैकड़ों-हजारों के झुंड में प्रेसिडेंसी कॉलेज के दो ब्रह्मसमाजी छात्र भी महर्षि को श्रद्धा-सुमन अर्पित करने जोरांसको आये थे।

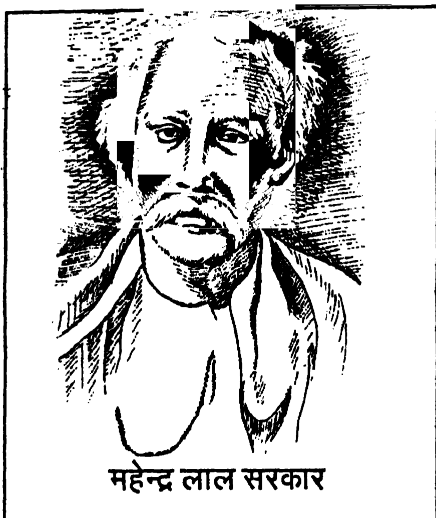
महेन्द्र लाल सरकार की संस्था

डॉ. महेन्द्र लाल सरकार [15] की संस्था में होने वाले विज्ञान के लोकप्रिय व्याख्यानों को नियमित रूप से सुनना भी मेरे लिए लाभकारी रहा। उन्हीं व्याख्यानों से प्रेरित होकर मैंने और प्रोफेसर ओमन ने लाहौर में *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* की स्थापना की। मैं सेंट जेवियर कॉलेज के फादर ई. लैफोंट [16]


फादर ई. लैफोंट

द्वारा दिये गये चमत्कृत करने वाले लोकप्रिय व्याख्यानों को कभी नहीं भूल सकूंगा। वहां बहुत से व्याख्याताओं ने समय-समय पर व्याख्यान दिये, लेकिन कठिन से कठिन तथ्य को शीशे की तरह साफ करके प्रस्तुत करने और विशेष रुप से विज्ञान के प्रति जनरुचि जगाने में फादर लैफोंट की टक्कर का कोई व्याख्याता नहीं था। डॉ. सरकार की संस्था में ही मैंने पहली बार डॉ. जगदीश चंद्र बोस को देखा। डॉ. बोस उसी समय प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्रोफेसर बने थे। वह दुबले-पतले व्यक्ति थे और सोच-सोच कर धीरे-धीरे बोलते थे। साथ ही उनमें थोड़ा संकोच भी था। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब वह मंच पर आये तो उन्होंने रेशम की कढ़ाई वाली काली टोपी पहन रखी थी।

मैं यहां विशेष रूप से एक बेहद रोचक सार्वजनिक वाद-विवाद का उल्लेख करना चाहूंगा, क्योंकि उसने मेरे ऊपर गहरा प्रभाव छोड़ा। मुझे ठीक से याद नहीं पड़ता कि यह डॉ. सरकार की संस्था में हुआ था या किसी अन्य सार्वजनिक सभागार में, पर इस बात का ज्यादा महत्त्व भी नहीं है। खास बात उन दो प्रख्यात चिकित्सकों डॉ. खशतगीर और डॉ. सिम्पसन का असाधारण उत्साह वह परिश्रम था, जिससे उन्होंने सार्वजनिक वाद-विवाद की शुरुआत की। इसका विषय था – आहार में मांस और चने की भूमिका। एक हफ्ते डा. खशतगीर उसके पक्ष में बोलते, जिसे विपक्षी चिकित्सक 'घोड़े की खुराक,' कह रहे थे और अगले हफ्ते डा. सिम्पसन


महेन्द्र लाल सरकार

उस मांस की हिमायत करते, जिसकी डॉ. खश्तगीर बेतुका आहार बताकर धज्जियां उड़ा चुके थे और कहते थे कि यह किसी भी दशा में आधुनिक सभ्य मनुष्य का आहार नहीं बन सकता। यह वाद-विवाद लगभग छह हफ्तों तक चला। दोनों ही पक्ष अपनी मान्यताओं को ठोस आधार देने के लिए पूरी तरह तैयार थे। वे ऐसे विस्तृत चार्ट लेकर आते थे कि पूरी दीवार ढक जाये। दोनों ही पक्षों द्वारा 'घोड़े की खुराक' और 'कुत्ते के भोजन' से जुड़े वैज्ञानिक पक्षों पर अधिकतम जोर दिया जाता था। इस वाद-विवाद में इतनी अधिक जन-रुचि उत्पन्न हो गई थी कि शुरू से अंत तक बड़ी संख्या में श्रोता मौजूद रहे। हां, इसमें उन विटामिनों का कोई उल्लेख नहीं था, जो आज मनुष्य और पशु दोनों के ही आहार में महत्त्वपूर्ण बन चुके हैं। वाद-विवाद के संबंध में मेरा अपना विचार था कि चना और मांस दोनों का ही उपयुक्त मात्रा में सेवन करना चाहिए। किसी भी एक को पूरी तरह नहीं त्यागना चाहिए।

डॉ. सरकार की संस्था का संक्षिप्त विवरण खत्म करने से पहले मैं एक छोटी-सी, पर रोचक घटना का जिक्र करना चाहूंगा। उन दिनों शहरों में बहुत कम देहाती दिखाई देते थे। अगर दिखते भी थे तो व्यावसायिक कंपनियों में दरबानों की तरह या सरकारी दफ्तरों में निचले स्तर पर नौकरी करते हुए। ऐसे में एक पगड़ीधारी पंजाबी की डॉ. सरकार की संस्था के

विशाल सभागार में विज्ञान व्याख्यान सुनने के लिए पधारने की तो कोई कल्पना ही नहीं करता था। एक दिन मैंने सभागार में घुसने पर खाली सीट के लिए एक किनारे से दूसरे किनारे तक नजर दौड़ाई। मुझे हर कतार में काले नंगे सिर दिखाई दिये। उन नंगे सिरों ने मुझे देखा और जोर से हंसे। पास की खाली सीट पर बैठने के बाद मैंने अपनी पगड़ी उतारकर सामने की डेस्क पर रख दी। वे फिर जोर से हंसे। मैंने झट से पगड़ी सिर पर रख ली। इस बार वे पहले से भी ज्यादा जोर से हंसे।

कलकत्ता जैसे बड़े शहर में रहने का मतलब है लगातार कुछ न कुछ सीखते रहना। अगर कोई व्यक्ति आंखें खोलकर यहां की सड़कों-गलियों में घूमता है, तो उसे ऐसा लगेगा जैसे उसके सामने पर्दे पर कभी न खत्म होने वाली कोई फिल्म चल रही है। मैंने अभी तक तीन बड़े शहर देखे थे – लाहौर, दिल्ली और इलाहाबाद। ये सभी कलकत्ता के एक कोने में समा सकते थे। लेकिन मुझे इसकी विशालता ने नहीं चौंकाया। मैं सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ यहां की चकित कर देने वाली विविधताओं और रोचकताओं से जो यहां की गली-गली में बिखरी पड़ी हैं। कलकत्ता के सिर्फ कुछ महीनों के प्रवास के दौरान ही मुझे इतने नये अनुभव हुए कि सबकी सूची बनाना भी कठिन होगा।

मैं यहां इस लंबी सूची में से सिर्फ एक घटना का वर्णन करना चाहूंगा। एक दिन मैंने अपने एक छात्र-मित्र से पूछा कि धोती कहां से खरीदी जाय। उसने एक खास बाज़ार का नाम बताकर कहा कि धोती खरीदने के लिए वह सबसे अच्छी जगह है, लेकिन आने वाले इतवार को वह वहां मेरे साथ चलेगा नहीं तो मेरा ठगा जाना तय है। मैंने इस पेशकश के लिए उसका शुक्रिया अदा किया और कहा कि अब मैं इतना बड़ा हो गया हूं कि अपनी खरीददारी खुद कर सकूं। बाज़ार में पहुंचकर मैंने एक दुकान में काली

किनारी वाली मानचेस्टर की बनी धोती पसंद कर ली। " क्या दाम है ?" मैंने पूछा। तुरंत जवाब आया, "एक रुपया दस आना"। मैंने कहा " बाबू जी, आप कपड़ा व्यापारी के बेटे को नहीं ठग सकते । " दुकानदार ने पूछा, "फिर क्या देंगे आप ?" मैंने सिर्फ दस आना देने की पेशकश की और दुकानदार ने उसे तुरंत मंजूर कर लिया। इस तरह मैं एक सुंदर काली किनारी वाली धोती बगल में दबाकर घर वापस आ गया। जब मैंने धोती अपने दोस्त को दिखायी तो उसने कहा कि हर बंगाली इसकी ठीक यही क़ीमत अदा करता। लेकिन यह कहानी की सिर्फ शुरुआत मात्र है। एक दिन जब मैं नई धोती पहनकर सड़क पर घूमने गया तो कोई 70 साल के एक बुजुर्ग बंगाली बाबू ने मुझे टोका। अपने साथियों के सहारे वह धीरे-धीरे चलते हुए मेरे पास आये और आवाज बुलंद करक़े पूछा, "तुम यह काली किनारी वाली धोती क्यों पहने हो ?" "क्या यह धोती पहनकर मैंने कोई पाप या अपराध कर दिया है ?" "यह बंगालियों का शुद्ध राष्ट्रीय पहनावा है," वह बड़े बनावटी ढंग से पर पूरे अधिकारिक लहज़े में कह रहे थे। मैंने पूछा, "क्या यह धोती पहनकर मैंने कोई पाप या अपराध कर दिया है ?" वृद्ध ने फिर तुरंत दोहराया, "नहीं, लेकिन यह काली किनारी वाली धोती बंगालियों का शुद्ध राष्ट्रीय पहनावा है ।" तीन-चार मिनट तक इसी तरह गर्मा-गर्म बहस चली। हममें से कोई भी हार मानना नहीं चाहता था, इसलिए मैंने यह कह कर बहस खत्म कर दी, "मैं यह काली किनारी वाली धोती पहनकर उसे और अंधिक गरिमा प्रदान कर रहा हूं। मैं इसे भारतीय राष्ट्रीय पहनावा बना रहा हूं।" इस सांत्वना से भी वह पूरी तरह खुश नहीं हुए और नाराज़गी के साथ चले गये। मैं हमेशा से सामाजिक विद्रोही रहा हूं, इसलिए बहुत सालों तक काली किनारी वाली धोती मेरा पसंदीदा घरेलू पहनावा रहा। लेकिन मैंने बंगाल के सिवा और कहीं सार्वजनिक तौर पर धोती नहीं पहनी ।

एच. एफ. ब्लैनफोर्ड और मौसम विभाग

अब समय आ गया था कि मैं कलकत्ता छोड़कर शिमला जाऊं। वहीं मेरा स्थायी सरकारी मुख्यालय था। वहीं से मौसम की दैनिक रपटें जारी की जानी थी। पंजाब वापस जाते समय मैंने आगरा में ताजमहल देखा और फिर कोई एक हफ्ता लाहौर व भेड़ा में बिताया। उसके बाद अप्रैल 1885 में मैं भारत सरकार की ग्रीष्मकालीन राजधानी पहुंच गया। मेरे अफसर जनाब ब्लैनफोर्ड भी छुट्टी बिताकर वापस आ गये थे। हमारा दफ्तर दो विशाल भवनों में से एक की सबसे ऊपरी (छठी) मंजिल पर था। भारत सरकार के ज्यादातर विभाग इन्हीं दो भवनों में थे। हमें चार बड़े कमरे दिये गये थे। इनमें से एक कमरे में दफ्तर था और बाकी तीन कमरे जनाब ब्लैनफोर्ड और उनके दो सहायकों के लिए थे। शिमला में मौसम विभाग के दफ्तर का एक छोटा-सा हिस्सा ही था । यहां कोई एक दर्जन बाबू और कम्प्यूटर थे। मौसम की दैनिक और मासिक रपटें तैयार करने के लिए इतना बंदोबस्त पर्याप्त था। जनाब डलास के साथ एक ड्राफ्ट्समैन भी था, जो उनके कमरे के ही एक कोने में बैठता था। बाकी सभी लोग मौसम की दैनिक और मासिक रपटें तैयार करने में मदद करते थे। दोनों ही रपटें तैयार करने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर डाली गयी थी।

यहां कुछ कम्प्यूटर अस्थायी तौर पर कलकत्ता से लाये गये थे। इसलिए मेरा पहला काम किसी ऐसे उपयुक्त पंजाबी कर्मचारी को काम पर लगाना था, जो कलकत्ता से लाये गये कम्प्यूटरों की जगह ले सके। ऐसा करना जरूरी था, क्योंकि बंगालियों के लिए साल भर शिमला में रहना बहुत असुविधाजनक था। इन लोगों को कई महीनों तक प्रशिक्षण देना पड़ा, तब कहीं जाकर बंगाली कम्प्यूटरों को कलकत्ता वापस भेजा जा सका। कुछ महीनों तक दैनिक मौसम रपट को प्रेस को जारी करने से पहले मैं जनाब

ब्लैनफोर्ड के समक्ष प्रस्तुत किया करता था। लेकिन एक दिन उन्होंने रपट देखने से इंकार कर दिया और कहा कि अब तुम्हें रपट की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह सरकारी तौर पर मेरे परिपक्व होने का समय था। मेरे मन में जिम्मेदारी का एक नया अहसास पैदा हो गया। इस अहसास में दो भावनाएं शामिल थीं: पहली भावना डर की थी। कहीं मैं आंकड़ों के आधार पर कोई गलत नतीजा न निकाल लूं। दूसरी भावना कुछ गर्व की थी। अब मुझे अपनी वास्तविक क्षमता दिखाने का मौका मिलेगा। दैनिक रपट तैयार करने के लिए हमारे पास पूरे हिंदुस्तान और बर्मा के लगभग 120 केंद्रों से मौसमी दशाओं का रिकार्ड हर सुबह तार द्वारा भेजा जाता था। आमतौर पर उसी दिन शाम साढ़े चार बजे तक रपट तैयार हो जाती थी और इसे शिमला के गवर्नमेन्ट प्रेस को भेज दिया जाता था। साथ ही इसका सारांश हिंदुस्तान के सभी दैनिक अखबारों को तार से भेजा जाता था।

अपने कमरे में आकर मैंने सबसे पहले असंशोधित रपट को फाड़ दिया और दुबारा काम में जुट गया। फिर से एकदम नई रपट तैयार करने में मुझे कोई आधा घंटे का वक्त लगा। मैंने दफ्तर द्वारा तैयार की गई सारणियों में मौजूद ढेर सारे तथ्यों और आंकड़ों के आधार पर अपनी रपट के हर विवरण को दो-दौ बार जांचा। साथ ही यह ध्यान भी रखा कि मेरे द्वारा व्यक्त विचारों में जहां तक संभव हो सतर्कता का पुट शामिल रहे। फिर भी जब रपट मेरे हाथ से निकली तो मैं घबराया हुआ था। अगली सुबह जब प्रेस से तारीख के साथ छपी हुई रपट आयी और उसकी एक प्रति हमेशा की तरह जनाब ब्लैनफोर्ड की मेज़ पर रख दी गयी तो मैं उनकी प्रतिक्रिया जानने के लिए बहुत उत्सुक हो उठा। कोई आधा घंटे बाद मुझसे रहा न गया और मैं एक कागज़ दिखाने के बहाने जनाब ब्लैनफोर्ड के कमरे में गया।

दरअसल मैं यह जानना चाहता था कि वह रपट से संतुष्ट हैं या नहीं। उन्होंने रपट की अच्छाई या बुराई, किसी पर भी कोई टिप्पणी नहीं की। इससे मैंने नतीजा निकाला कि मेरी रपट में कोई बड़ी गलती नहीं थी।

इसी तरह दिन-महीने गुज़र गये। कभी-कभी जनाब ब्लैनफोर्ड मेरी रपट के कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर मुझसे चर्चा कर लिया करते थे। लेकिन उनकी भावना एक प्यार करने वाले गुरु जैसी होती थी न कि एक गुस्सैल अफसर जैसी। लेकिन एक दिन सुबह मैंने उन्हें बड़े गुस्से में देखा। यह एक बड़ी असाधारण बात थी। उन्होंने अपनी मेज़ पर रखी छपी हुई रपट मेरे ऊपर फेंकते हुए कहा कि पूरे एक खास इलाके में बैरोमीटर गिरा है, जबकि सारणी में दिये गये आंकड़े बिल्कुल उलटी बात कह रहे हैं। फिर उन्होंने कहा, "इसी वजह से अखबारों में हमारे विभाग की कड़ी आलोचना होती है।" मैंने अपनी रपट में छपे हुए विवरण को देखा और फिर उन आंकड़ों को देखा जिनके आधार पर विवरण लिखा गया था। जाहिर था कि रपट ने मेरी प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुंचाया था और इससे उबरने का कोई रास्ता भी नहीं था। मैं इस पर बेहद हैरान था। इस फटकार के बदले में एक भी शब्द कहे बिना मैं अपने कमरे में वापस आ गया और अपनी मूल रपट को देखने लगा। मुझे यह देखकर बहुत संतोष हुआ कि मेरी अपनी मूल रपट पूरी तरह दुरुस्त थी। दरअसल प्रेस में गलती हुई थी। जैसे ही उन्हें इस बात का पता लगा, उन्होंने ऊंचे स्वरों में मुझसे माफ़ी मांगी और कहा, "मैं हैरान था कि तुम्हारे जैसा सतर्क व्यक्ति कैसे इतनी बड़ी गलती कर सकता है।" इसके बाद उन्होंने कहा, "अब लाला रुचि राम आप प्रेस को एक कड़ा खत लिखिये और जिस कंपोज़ीटर ने गलती की है उसे कठोर दंड देने के लिए कहिए।" अपने कमरे में आकर जब मैं खत लिखने लगा तो मैंने सोचा कि अगर मैं कठोर दंड के लिए लिख दूंगा तो एक या

दो लोग नौकरी से बर्खास्त कर दिये जाएंगे। इसलिए मैंने अपनी तरफ से दो रुपये जुर्माने का सुझाव दिया। लेकिन जब मैं प्रेस के सुपरिटेंडेंट को खत भेजने लगा तो मुझे महसूस हुआ कि दो रुपये के हलके जुर्माने का सुझाव देकर मैं जनाब ब्लैनफोर्ड की नाराज़गी का गंभीर खतरा मोल ले रहा हूं। मैंने सोचा बेहतर होगा कि भेजने से पहले खत उन्हें दिखा लिया जाय। खत पढ़ते समय उनके चेहरे पर गलती करने वाले व्यक्ति के लिए दर्द और दया के जो भाव उभरे उन्हें मैं कभी नहीं भुला सकूंगा। फिर उन्होंने मुझसे करुण स्वर मे कहा, "लाला रुचि राम, तुम्हें यह नहीं लगता कि उन गरीबों के लिए दो रुपये का जुर्माना अदा करना बहुत भारी पड़ जाएगा। उनकी कमाई ही कितनी है। इसे आठ आने कर दो।" मैं यहां पाठकों को विश्वास दिलाना चाहूंगा कि मुझसे ये शब्द कहते समय जनाब ब्लैनफोर्ड रुंआसे हो गये थे। कुछ मिनटों में ही उनके गुस्से की गर्मी पूरी तरह शांत होकर ठंडी पड़ गयी थी और गरीब समुदाय के लिए सच्ची हमदर्दी में बदल गयी थी। अगली सुबह उन्हें यह जानकर बहुत तसल्ली हुई कि दरअसल गलती कैसे हुई थी। समय बचाने के लिए प्रेस ने मौसम रपटों में अकसर आने वाले कुछ शब्दों व वाक्यों के पहले से ही कंपोज करके कुछ सेट ररवे हुए थे, जैसे, "बैरोमीटर चढ़ रहा है, "बैरोमीटर गिर रहा है, तापमान ऊंचा है," वगैरह-वगैरह। गलती से कंपोजीटर ने शब्दों का गलत सेट उठाकर लगा दिया। प्रूफ रीडर भी यह गलती नहीं पकड़ सका, क्योंकि उसने प्रूफ को मूल रपट से नहीं मिलाया। बस यह देख लिया कि अर्थ निकल रहा है और अंग्रेजी ठीक है।

मुझे यहां यह लिखने में खुशी हो रही है कि मैंने अपनी सरकारी जिंदगी एक प्रसन्नता भरी सौभाग्यशाली घड़ी में शुरू की। मैं चाहता हूं कि सभी विभागों के छोटे या बड़े, हिंदुस्तानी या युरोपीय अध्यक्ष सज्जनता, मीठे बर्ताव, कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी और अपने सभी मातहतों के साथ

दयालु बर्ताव में वैसे ही हों जैसा मैंने जनाब ब्लैनफोर्ड को पाया। मौसम विभाग में बिताये दो सालों के दौरान मैंने मौसम विज्ञान के बारे में बहुत कुछ सीखा। खासतौर से उन नई दिशाओं को जाना, जिनमें नया कार्य किया जा रहा था या करना संभव था। मुझे उन तमाम अवसरों की याद है, जब जनाब ब्लैनफोर्ड मुझे अपने घर बुलाकर रूस, अमेरिका या कहीं और मिले महत्त्वपूर्ण नतीजों या अवलोकनों के बारे में समझाते थे। नये आये उपकरणों के काम करने के ढंग के बारे में बताते थे। इस तरह बड़े मज़े से घंटा-घंटा भर बीत जाता था। इन अवसरों पर वह दुनिया के विभिन्न हिस्सों के मौसमों के बीच परस्पर निर्भरता पर विशेष जोर देते थे और खासतौर से उस प्रक्रिया के बारे में समझाते, जिससे किसी एक देश का मौसम अपने पड़ोसी देशों की मौसमी दशाओं से प्रभावित होता है। पूरे विस्तार के साथ स्पष्ट किये गये इस तथ्य का मेरे ऊपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। अपने दयालु अफसर के मानवीय पक्ष के बारे में मुझे ज्यादा नहीं कहना है, लेकिन अगर सारे अंग्रेज जनाब ब्लैनफोर्ड जैसे होते तो इन दो जातियों के बीच सामाजिक और राजनीतिक संबंध वैसे कड़वे नहीं होते जैसे आज दुर्भाग्य से हैं। हमारे बीच कभी भी राजनीति पर एक शब्द चर्चा नहीं हुई। हमारी बातचीत और रुचि का एक ही विषय था – सामान्य रूप से विज्ञान और विशेष रूप से मौसम का विज्ञान। वह अकसर मुझे नई किताबें या रिपोर्टें पढ़ने को देते और यह जोर देकर कहते कि एक नौजवान के रूप में ही मुझे किताबें पढ़ने की आदत डाल लेनी चाहिए, ताकि मैं अपनी आने वाली जिंदगी में कार्य करने के लिए तैयार रह सकूं। वह मुझसे कहते कि बहुत से इधर-उधर के काम खुद न किया करो, बल्कि बाबुओं से करवाया करो ताकि तुम्हें खुद अध्ययन के लिए समय मिल सके । बाद में उनकी इस मूल्यवान सलाह को मैंने अपनी जिंदगी का आदर्श बना लिया, "वह काम

खुद न करो, जिसे तुम अपने लिए दूसरों से करवा सकते हो।"

जनाब ब्लैनफोर्ड को समर्पित इस संक्षिप्त श्रद्धांजलि को समाप्त करने से पहले मैं कुछ शब्दों का एक संस्मरण और सुनाना चाहूंगा। यह है तो बहुत मामूली पर उनकी सहृदयता को बहुत स्पष्ट करता है। उन दिनों अपने मातहतों को 'कोई है' (यह शब्द अंग्रेजी भाषा में दाखिल हो गया है) कहकर बुलाने का चलन था। लेकिन जनाब ब्लैनफोर्ड ने मुझे कभी अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे चिल्लाकर नहीं बुलाया और न ही मुझे बुलाने के लिए कभी चपरासी भेजा। जब भी उन्हें मुझे बुलाना होता, वह बुजुर्ग अपनी कुर्सी से उठते और हमारे कमरों के बीच लगे दरवाजे को खोलकर धीरे से कहते, "लाला रुचि राम।" यह सुनते ही मैं उनके पीछे-पीछे उनकी मेज़ तक जाता, जहां मेरे लिए एक खाली कुर्सी पड़ी होती।

मैं ऐसे युरोपीय अधिकारियों को जानता हूं, जो किसी हिंदुस्तानी मुलाकाती के आने से पहले अपने पास पड़ी खाली कुर्सी हटवा देते थे, ताकि उस व्यक्ति को दूसरे कमरे से कुर्सी आने तक कुछ मिनटों के लिए खड़ा रहना पड़े। सम्मानीय पदों के हिंदुस्तानी मुलाकातियों का यह आम अनुभव है कि उन्हें काफी लंबे समय के लिए बाहर बरामदे में इंतजार करने के लिए बैठा दिया जाता था। ऐसे अवसरों पर आमतौर पर चपरासी एक ही जवाब देते, "साहब नहा रहे हैं।" मुझे दोस्तों ने बताया है कि एक तरफ चपरासी बताता कि साहब नहा रहे हैं, इंतजार करिए और दूसरी तरफ साहब अपने कमरे की खिड़की पर लगे शीशे से झांक कर देखते कि घर के बाहर लंबा इंतजार कराने की जानी–बूझी बेइज्जती की वजह से वह व्यक्ति कैसे झुंझला रहा है। मज़े की बात यह है कि ऐसा करते समय साहब बरामदे से साफ-साफ दिखाई भी देते। ऐसी जगहों पर एक नियम की तरह (मैंने इसका अपवाद बहुत कम देखा है) बरामदे में एक या दो घटिया और बेकार कुर्सियां

पड़ी होतीं और चपरासी जोर देकर इन पर बैठने के लिए कहता। मैं इस सरकारी पृष्ठभूमि के बारे में इसलिए बता रहा हूं कि इसी को ध्यान में रखते हुए मेरे प्रति जनाब ब्लैनफोर्ड के बर्ताव की परख की जाय। उन्होंने कभी भी मुझे अपने सामने जूता पहन कर आने के लिए मना नहीं किया । हालांकि, उस समय युरोपियों और उनके हिंदुस्तानी मुलाकातियों के बीच जूता-मसला (उस समय अखबारों के संपादक इसी शब्द का उपयोग करते थे) अकसर विवाद का विषय बना रहता था। सिर्फ घर में ही नहीं, बल्कि दफ्तर में भी। एक बार इस मसले पर मेरे साथ भी हलकी झड़प हुई थी। हुआ यह कि एक बार मैं एक *इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स* के साथ डी.पी.आई. से मुलाकात करने गया। वह मेरी तुलना में अपने अधिकारियों को ज्यादा मान-सम्मान देते थे। इंस्पेक्टर ने कमरे में घुसने से पहले न केवल अपने जूते उतार दिये, बल्कि उन्हें नजरों से दूर बरामदे के एक कोने में रख दिया। मुझे ऐसा न करते देखकर उसने कहा, "तुम अपने प्रमुख अधिकारी का वैसा आदर नहीं करते, जैसा और सब अधिकारी करते हैं।" मैंने पहले कभी ऐसा नहीं किया था और न ही भविष्य में अपने स्वाभिमान को त्याग कर दूसरे को आदर देने की मेरी मंशा थी, इसलिए मैं सिर्फ मुस्करा कर चुप रह गया।

मौसम विभाग के बगल में सर्वेयर जनरल का दफ्तर था। वहां के उच्च युरोपीय अधिकारी मेरे जैसे नेटिव को भारत सरकार के वैज्ञानिक विभाग में जिम्मेदार पद पर देखकर खुश नहीं थे। अकसर वह मुझे देखकर मुंह बिचकाते थे या फिर बरामदे में जब मैं उनके बगल से गुज़रता तो मेरे लिए कोई फिकरा कसते। ऐसे में मैंने भी उनकी तरफ़ मुंह करके नाक चढ़ाने या फिर जवाब में धीरे से कोई करारा शब्द बुदबुदाने का नियम बना रखा था। पर मैंने यह सब अपने अफसर को कभी नहीं बताया। मेरा सोचना था कि

इस मामले में ज्यादा भावुक होना ठीक नहीं था, लेकिन इसके साथ ही अपमान को चुपचाप सहना भी सही नहीं था। मैंने इस कड़वे अनुभव को भी अच्छाई में बदल लिया, क्योंकि इसी की वजह से मैंने अपनी जिंदगी में एक नियम बनाया–जहां तक संभव हो दूसरों से शिकायत न करो, बल्कि मामले को खुद सुलझा लो। मैं बता दूं कि जिन कुछ मामलों में मैंने यह नियम नहीं माना, वहां मैं मनचाही राहत पाने में नाकामयाब रहा, जबकि वह मेरा अधिकार भी था। जब मैं मौसम विभाग में था तो इलाहाबाद के *पायोनियर* अखबार (हिंदुस्तान का उस समय का सबसे प्रभावशाली अखबार) के पन्नों के जरिये मेरे ऊपर एक खतरनाक हमला हुआ। अखबार के एक लेख में मेरी एक खास दैनिक रपट का हवाला देते हुए आरोप लगाया गया कि मैं मौसम की पूर्व-चेतावनी देने में नाकामयाब रहा, जबकि उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर मैं यह काम कर सकता था और मुझे करना चाहिए था। लेखक ने यह भी लिखा कि अभी किसी नेटिव को ऐसी जिम्मेदारी भरे वैज्ञानिक पद पर नियुक्त करने का समय नहीं आया है। लेखक ने लिखा कि उसे उस व्यक्ति विशेष के प्रति कोई शिकायत नहीं है, जिस पर इस कठिन काम की जिम्मेदारी है। दरअसल इस काम के लिए तो कोई युरापीय ही योग्य है। आलोचना के अंत में कहा गया कि दैनिक मौसम रपटें रूस समेत अनेक बाहरी मुल्कों में भी भेजी जाती हैं। रूसियों के मन में भारत सरकार का दर्जा कितना गिर जायेगा, जब उन्हें पता लगेगा कि इस जिम्मेदारी भरे पद पर कोई नेटिव काम कर रहा है। मैंने यह आक्रामक लेख जनाब ब्लैनफोर्ड को दिखाया और इसका जवाब देने की आज्ञा मांगी। साथ ही मैंने उन्हें यह भी बताया कि मेरे पास पूर्व-चेतावनी के लिए पर्याप्त आंकड़े नहीं थे। इसके अलावा उनका खुद का भी यह निर्देश था कि जब तक पूर्व-चेतावनी के सही निकलने की पर्याप्त संभावना न हो, पूर्व-चेतावनी

मत घोषित करो। उनका मानना था कि ऐसे मसलों में अखबार में उठे विवाद पर उनके निर्देश का उल्लेख करना ठीक नहीं होगा, खासतौर से तब जबकि विपक्षी व्यक्ति वैज्ञानिक नहीं है। मेरे सामने चुप रहने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। हालांकि, एक नौजवान अपने को सही साबित करने के लिए बेहद उतावला रहता है, खासतौर से तब जबकि वह इसके काबिल भी हो । मैं भी इसका अपवाद नहीं था । कुछ हफ्तों बाद मेरा मासिक मौसम रपट लिखने का समय आया। मैंने इस मौके का फायदा उठाकर *पायोनियर* द्वारा उठाये गये मुद्दों की कुछ विस्तार से चर्चा की, पर अखबार के नाम का कहीं उल्लेख नहीं किया। जनाब ब्लैनफोर्ड को यह रपट प्रस्तुत करते समय मैंने इस मुद्दे की ओर उनका ध्यान दिलाया और प्रार्थना की कि कृपया मेरी टिप्पणियों को जाने दें, पर अगर जरूरी हो तो इसमें आवश्यक सुधार या हेर-फेर कर दें। उन्होंने मामले के सही तथ्यों को इस ढंग से प्रस्तुत करने के लिए मुझे दिली मुबारकबाद दी और रपट को प्रेस भेजने के लिए मुझे वापस कर दिया। साथ ही उन्होंने रपट के नीचे मेरे पक्ष में एक संक्षिप्त टिप्पणी भी लिख दी।

कुछ महीनों बाद शिमला वापस आने पर जनाब ब्लैनफोर्ड ने मुझसे पूछा कि क्या मैं जानता हूं कि *पायोनियर* में वह लेख किसने लिखा था। मैंने कहा कि मेरे पास ऐसा कोई जरिया नहीं कि मैं लेखक का नाम जान सकूं। तब उन्होंने मुझे बताया कि वह सज्जन जनाब हिल थे। यह वही हिल साहब थे, जिन्होंने इस पद के लिए मेरा चयन किया था। जनाब हिल *सेंट्रल म्यूर कॉलेज*, इलाहाबाद में भौतिकी के प्रोफेसर थे और उत्तर-पश्चिमी प्रांतों के लिए प्रांतीय रिपोर्टर भी थे। जनाब ब्लैनफोर्ड ने मुझे यह भी बताया कि उन्होंने हिल साहब को एक कड़ा व्यक्तिगत पत्र भी लिखा है।

मौसम विभाग में मेरे कार्यकाल की सबसे प्रमुख घटना उत्तरी बंगाल (उड़ीसा इसी प्रांत का हिस्सा था) के सभी बंदरगाह केंद्रों को लाल गेंद ऊपर उठाने के लिए भेजा गया खतरे का सिगनल था। यह कार्रवाई मैंने तुरंत और अपनी पूरी जिम्मेदारी पर की थी। एक सुबह दफ्तर जाने पर मैंने हमेशा की तरह मौसम की उन रपटों को मंगाया, जिन्हें सारणीबद्ध किया जा चुका था। उन्हें जांचने पर मैंने देखा कि डायमंड हार्बर में वायुमंडलीय दाब में असाधारण और तेज गिरावट दर्ज की गयी है। आस-पास के केंद्रों की रपटों में इस ओर कोई संकेत नहीं था। उस समय मैं शिमला में अकेला था। जनाब ब्लैनफोर्ड और जनाब डलास, दोनों ही कलकत्ता गये हुए थे। मैंने डायमंड हार्बर के आब्ज़र्वर को तुरंत एक अर्जेन्ट तार भेजा – नवीनतम सूचनाओं की तुरंत एक ताजा रपट भेजो। इस रपट ने मेरा यह संदेह पक्का कर दिया कि एक बड़ा तूफान आने वाला है। फिर मैंने उसे निर्देश दिया कि अगले आदेश तक वेधशाला छोड़ कर मत जाओ और हर आधा घंटे पर मुझे मौसम की रपट भेजते रहो। कुछ समय बाद मैंने दो-तीन पड़ोसी केंद्रों को भी ऐसे ही आदेश जारी कर दिये। इस बीच मैं पहले आये बड़े तूफानों की रपटों का तेजी से अध्ययन कर रहा था। जब मैं पूरी तरह आश्वस्त हो गया कि सागर-तट पर एक बड़े तूफान का हमला होने वाला है, तब मैंने खतरे का सिगनल जारी कर दिया।

यह सब करने के बाद मैंने कलकत्ता में जनाब ब्लैनफोर्ड को तूफान के बारे में सूचित करते हुए एक लंबा तार भेजा। मैंने उसमें उन विशेष रपटों के प्रमुख मुद्दों की जानकारी भी दे दी थी, जिनके आधार पर तूफान आने का संकेत मिल रहा था। बाद में मुझे कलकत्ता के दफ्तर के लोगों ने बताया कि तार मिलने पर जनाब ब्लैनफोर्ड कुछ मिनटों के लिए बेहद घबरा गये और परेशान हो गये। वह तुरंत प्रोफेसर पेडलर के पास गये और उनसे पूछा

कि क्या आप खाड़ी में आने वाले तूफान के बारे में जानते हैं। प्रोफेसर पेडलर बंगाल के प्रांतीय रिपोर्टर थे। इसलिए उन्हें बंगाल के सभी केंद्रों की रपटें मिलती थीं। ये रपटें दरअसल उन्हीं रपटों की प्रतियां होती थीं, जिन्हें दैनिक मौसम रपट बनाने के लिए हर सुबह शिमला भेजा जाता था। प्रोफेसर पेडलर को तूफान की कोई जानकारी नहीं थी। सच तो यह है कि उस समय तक उन्होंने सारी रपटें देखी ही नहीं थी। जैसा मैंने पहले कहा था प्रोफेसर पेडलर बहुधंधी व्यक्ति थे। वह प्रेसिडेंसी कालेज में रसायन विज्ञान के प्रोफेसर थे, कलकत्ता नगरपालिका के जल और गैस विश्लेषक थे, बंगाल सरकार के मौसम रिपोर्टर थे और निजी रूप से कलकत्ता की कई बड़ी कंपनियों की शराब, दवा वगैरह की जांच का धंधा भी करते थे। जनाब ब्लैनफोर्ड के सुझाव पर प्रोफेसर पेडलर ने सभी प्रभावित केंद्रों को आदेश दिया कि मुझे भेजे जाने वाले तारों की एक प्रति उन्हें भी भेजी जाय। इस समय तक तूफान काफी उग्र होकर तट पर पहुंच चुका था। जब मन में संदेह पैदा करने वाली पहली रपट मुझे मिली थी, तो तूफान तट से कुछ दूरी पर था। जनाब ब्लैनफोर्ड और जनाब पेडलर दोनों ही पूरी तरह आश्वस्त थे कि मैंने सही निर्णय लिया और मेरे द्वारा जारी किये गये सभी आदेश पूरी तरह उपयुक्त थे। जहां तक मेरा विचार है यही तूफान बाद में एक बड़े शोध निबंध का विषय बना, जिसका शीर्षक था *द फाल्स प्वाइंट साइक्लोन* ।

शिमला में पहले ही साल के जाड़ों के महीनों में मुझे अपने मातहतों द्वारा उठाये गये एक अन्य तूफान का भी सामना करना पड़ा। कलकत्ता से आये आदेशों के अनुसार तार से भेजी जाने वाली सूचनाओं में एक नया सुधार करना था। कम्प्यूटरों ने शिकायत की कि इसके लिए उनमें से हर एक को एक घंटा अतिरिक्त काम करना पड़ेगा और उनके पास पहले से ही जरूरत से ज्यादा काम है। मैंने उन्हें समझाया कि इससे उनके मौजूदा

काम पर बहुत हलका-सा बोझ पड़ेगा। लेकिन उन्होंने मेरी एक न सुनी। उन्होंने मुझे सामूहिक रूप से इस्तीफे सौंप दिये। इस गुट के दो नेता थे। एक था जालंधर का अल्ला बख्श जो प्रधान कम्प्यूटर था और दूसरा था अमर सिंह जो दूसरे नंबर पर था। इन दोनों को कुछ महीने पहले मैंने ही नियुक्त किया था और इन्हें अन्य लोगों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण पद दिया था। मैं इनसे और अन्य लोगों से जितनी ज्यादा गुज़ारिश करता, ये उतनी ही ज्यादा जिद पकड़ते जाते । हालात बिगड़ते जा रहे थे । जब-तब बर्फ गिर रही थी, इसलिए कलकत्ता से प्रशिक्षित लोगों को बुलाने का कोई सवाल नहीं था। पंजाब में विज्ञापन देकर नये लोगों को चुनना और फिर उन्हें प्रशिक्षण देकर तैयार करना भी संभव नहीं था। मैंने भी कड़ा रुख अपनाने का फैसला कर लिया और सोच लिया कि इनकी धमकियों के आगे नहीं झुकूंगा, चाहे जो हो जाये। फिर मैंने उनसे कह दिया मैं आप लोगों को इस मसले पर दुबारा सोचने के लिए 24 घंटे देता हूं। इसके बाद मैं एक महीने की जगह 15 दिनों की नोटिस पर ही उनके इस्तीफे मंजूर कर लूंगा। मेरा असल मकसद यह था कि मैं उन दोनों नेताओं द्वारा किये जा रहे काम का अभ्यास कर लूं, ताकि वह खुद देख सकें कि मुझे उनकी जगह भर्ती किये गये नये लोगों को प्रशिक्षण देने में कोई दिक्कत नहीं होगी। अगले दिन सबसे पहले मैंने उन नेताओं से पूछा कि क्या वे इस्तीफा वापस लेने के लिए तैयार हैं। वे तैयार नहीं थे। फिर मैंने अल्ला बख्श से अपने सारे कागज़ लाने को कहा, ताकि मैं खुद देख सकूं कि उसे पूरे दिन में कितने घंटे काम करना पड़ता है। मैंने उसका काम करना शुरू किया और उसे बगल में ही खड़ा कर लिया। वह मुझे कोई पौन घंटे तक काम करते हुए ध्यान से देखता रहा। वह यह देखकर थोड़ा घबरा गया कि उसका काम करने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हो रही है और मैं उसकी तुलना में तेजी से काम निपटा रहा हूं। फिर

मैंने उससे कहा कि मैंने तुम्हारा काम खुद करके देख लिया है और इस काम को खत्म करने में तुम्हें तीन घंटे से ज्यादा समय नहीं लगना चाहिए । इसके बाद मैंने कहा कि अगर तुम लोग इस्तीफे के नोटिस की जगह एक महीने की तनख्वाह छोड़ने के लिए तैयार हो तो मैं तुम्हें और अमर सिंह को तुरंत अभी सेवामुक्त कर सकता हूं। जब तक मैं नये व्यक्तियों को प्रशिक्षण नहीं दे पाता, तब तक मैं उनका काम खुद ही करूंगा। यहां मैं उसे दिये गये लंबे भाषण का जिक्र नहीं करूंगा। उसने तुरंत यह महसूस कर लिया कि अब अगर वह अपनी बात पर अड़ा रहता है तो मैं दोनों नेताओं को तुरंत नौकरी से बाहर निकालने के लिए तैयार हूं और इस हालत में सिर्फ उन्हें ही नुकसान होगा। वह इस्तीफा वापस लेने के लिए प्रार्थना करने लगा। मैंने कहा कि अब तो इस्तीफा तुम्हारी नौकरी के रिकार्ड का हिस्सा बन गया है । तुम इसके लिए एक नया प्रार्थना-पत्र दो, जिस पर विचार किया जाएगा । उसने ऐसा ही किया। मैंने उसका इस्तीफा रद्द कर दिया। अमर सिंह ने भी ऐसा ही प्रार्थना-पत्र दिया और उसका इस्तीफा भी रद्द कर दिया गया। बाकी सब लोगों से भी यही कहा गया और सबने एक संयुक्त प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर दिया। इसे स्वीकार करते समय मैंने एक आदेश जारी किया कि मैं सभी कम्प्यूटरों का प्रार्थना-पत्र इस शर्त पर स्वीकार कर रहा हूं कि अगर आगे दफ्तर में फिर कोई गड़बड़ी होती है तो उनके मौजूदा आचरण को ध्यान में रखते हुए उन्हें दफ्तर की नौकरी से हटा दिया जाएगा। मैंने उन्हें यह भी याद दिलाया कि एक बार सरकारी नौकरी से हटाये जाने पर वह भविष्य में भी कोई सरकारी नौकरी पाने योग्य नहीं रहेंगे। इस तरह आसानी से झंझट खत्म हो जाने पर मैं खुश था। मैं कोई भी कड़ी कार्रवाई करना नहीं चाहता था, क्योंकि इसके लिए मामले को जनाब ब्लैनफोर्ड तक पहुंचाना पड़ता, जो मैं हर संभव टालना चाहता था।

शिमला में पहले ही साल जाड़ों की शुरुआत में मेरे साथ एक छोटी घटना और घटी। मैं सोचता हूं कुछ पाठकों को इसमें भी मज़ा आयेगा। मैं हर दिन रिज से बर्फ का फैलाव देखा करता था। एक दिन मुझे लगा कि बर्फ की चादर काफी नीचे आ गयी है। मैं अकसर अपनी मौसम रपटों में आस–पास की पहाड़ियों के लिए इस तथ्य का ज़िक्र कर दिया करता था और जहां तक संभव होता इनमें बर्फ के नीचे आने का निकटतम स्तर भी बताता। एक दिन मैंने पहाड़ की चोटी पर से प्रेक्षण लेने का इरादा किया। मुझे याद नहीं पड़ता कि किस कारण से मैं पहाड़ी के पीछे बनी एक पगडंडी से ऊपर चढ़ गया। मैंने चमड़े के खोल में बंद अपने प्रिज्मेटिक कम्पास को गले में लटका रखा था। रास्ते का कुछ हिस्सा पत्तियों से ढका होने और हाल में हुई बर्फीली बारिश के कारण बहुत फिसलन भरा हो गया था। इसलिए खड़ी सड़क पर पहुंचने के लिए मैं चौपायों की तरह चलने की कोशिश करने लगा। दुर्भाग्य से कम्पास का चमड़े का खोल गलती से खुला रह गया। इसलिए अचानक उपकरण खोल से बाहर निकल गया और मैं उसे पहाड़ी पर नीचे लुढ़कता देखता रह गया। फिर हुआ यह कि थोड़ी दूर पर ही कम्पास का ढक्कन निकलकर वहीं रह गया और कम्पास लुढ़कते हुए काफी दूर जाकर खड्ड में गिर गया। मैंने ढक्कन उठा लिया और उन दोनों पेड़ों के पास एक-एक पत्थर रख दिया, जिनके बीच से कम्पास लुढ़कता हुआ नीचे गिरा था। उस समय मैं अकेला था। मैं लौटकर दफ्तर आया और अपने साथ एक चपरासी लेकर फिर उस जगह पर गया। मैंने चपरासी को उन दोनों पेड़ों के बीच कुछ दूर नीचे जाकर खड़ा होने को कहा, जिनके बीच से कम्पास लुढ़का था। फिर मैंने अपनी पहले वाली जगह से खड़े होकर ढक्कन (बिना कम्पास के) को इस तरह लुढ़का दिया कि वह उन दोनों पेड़ों के बीच से गुजरे। चपरासी ने अपनी नजरों से, जहां तक उसकी नजरें

जाती थीं, लुढ़कते हुए ढक्कन का पीछा किया। इसके बाद मैंने उससे कहा कि नीचे जाकर ढक्कन और कम्पास दोनों को ढूंढ लाओ। जैसी मेरी आशा और उम्मीद थी, उपकरण के दोनों हिस्से एक-दूसरे से कुछ गज की दूरी पर पड़े हुए थे। मैं खुश था कि अब मुझे अपने अफसर को उपकरण खोने की सूचना नहीं देनी पड़ेगी। यह सिर्फ 20-25 रुपयों की बात नहीं थी। इससे मेरी लापरवाही का पता लगता जो मैं नहीं चाहता था। अपने अफसर को खुश करने की चाह रखने वाला कोई भी नौजवान ऐसी बात को अफसर से दूर रखना चाहेगा। मैंने भी यही किया। पर बाद में मैंने जनाब ब्लैनफोर्ड को इस पूरी घटना की जानकारी एक नये रूप में दी और उपकरण को पाने की बात एक रोचक अंदाज में पेश की। इस तरह मुझे आलोचना की जगह बधाई मिली।

हिंदुस्तानियों से नफरत करने वाले जनाब जॉन इलियट

अब मेरा मौसम विभाग से विदा लेने का समय आ रहा था। सन् 1886 की गर्मियों में प्रोफेसर ओमन ने मुझे सूचित किया कि मुझे कॉलेज में सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त करने का निर्णय लिया गया है। इसमें तनख्वाह 200 रुपये होगी, जो बाद में बढ़कर 350 रुपये हो जाएगी। लेकिन मुझे नियुक्ति-पत्र एक औपचारिक प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करने के बाद ही जारी किया जाएगा। मैंने वह पत्र जनाब ब्लैनफोर्ड को दिखाया। उन्हें मेरा विभाग छोड़कर जाने का विचार पसंद नहीं आया, क्योंकि अब मैं उनके लिए उपयोगी हो चला था। उन्होंने मेरी कम तनख्वाह के लिए मुझसे हमदर्दी प्रकट की और आश्वस्त किया कि वह मेरा वेतनमान संशोधित करवा देंगे। अपनी तरफ से मैंने भी उनसे विदा लेने की संभावना पर हार्दिक खेद प्रकट किया, लेकिन उन्हें यह भी याद दिलाया कि आप जल्दी ही नौकरी से अवकाश प्राप्त करने वाले हैं और आपकी जगह आने वाले जनाब जॉन इलियट से मेरी कैसी

पटेगी कौन जाने। दरअसल मैं जानता था कि जनाब इलियट हिंदुस्तानियों से नफरत करते हैं। इसलिए उन्हें *नेटिव हेटर* कहा जाता था। यह बात मुझे मेरे कई बंगाली दोस्त पहले ही बता चुके थे। बड़ी कोशिशों के बाद जनाब ब्लैनफोर्ड ने मुझे लाहौर वाले पद के लिए प्रार्थना-पत्र भेजने की आज्ञा दी, लेकिन एक शर्त लगा दी। मैं वित्तीय वर्ष समाप्त होने से पहले विभाग छोड़कर नहीं जाऊंगा, क्योंकि लगभग इसी समय उन्हें भी अपना कार्यभार सौंपकर अवकाश ग्रहण करना था। अपेक्षित समय के बाद मुझे सरकारी नियुक्ति-पत्र मिल गया, जिसमें मार्च के अंत तक कार्यभार संभालने का निर्देश था।

प्रेसिडेंसी कॉलेज में जनाब इलियट ने जो ख्याति अर्जित की थी, वह बेवजह नहीं थी। मैं खुद भी इस बात की गवाही दे सकता हूं। गवर्नमेन्ट कॉलेज में पहले ग्रीष्मावकाश (जुलाई-सितबंर 1887) में मैं शिमला गया। एक दिन मैं जनाब इलियट से मिलने जा पहुंचा। उन्होंने मुझसे कुर्सी पर बैठने के लिए नहीं कहा और न ही उनके कमरे में कोई खाली कुर्सी थी। उन्होंने छूटते ही कहा, "मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं?" मैंने कहा, "जनाब इलियट, क्या आप मेरे द्वारा यहां किये गये काम की एक संक्षिप्त रपट पंजाब शिक्षा विभाग को भेज सकते हैं?" इसका मुझे एक बेहद अपमान भरा जवाब सुनने को मिला। फिर उन्होंने गुस्से से भरकर मुझसे कहा, "मुझे लगता है कि जनाब ब्लैनफोर्ड ने तुम्हारे लिए कोई खास छड़ी बनवा रखी थी?" "मैं आपकी छड़ी से बहुत दूर जा रहा हूं जनाब इलियट", यह कहकर मैं उनके कमरे से बाहर आ गया। बाद में मैंने अपनी किस्मत का शुक्रिया अदा किया कि मुझे नये मौसम रिपोर्टर की मातहती में काम नहीं करना पड़ा। मैं मानता हूं कि जनाब इलियट के पास जाना मेरी समझदारी नहीं थी। लेकिन समझ सालों बाद आती है। जनाब ब्लैनफोर्ड जैसे व्यक्ति

के साथ काम करने के कारण, जनाब इलियट के बारे में सब कुछ जानने के बावजूद मुझे यह जरा भी उम्मीद नहीं थी कि वह दफ्तर में इस तरह का नीच बर्ताव करेगा। गलतियां व्यक्ति की सबसे अच्छी शिक्षक होती हैं। शायद यह अच्छा ही हुआ कि मैंने अपनी जिंदगी के शुरूआती दौर में ही एक बहुत महत्त्वपूर्ण पाठ पढ़ लिया–हर सिक्के के दो पहलू होते हैं, एक जनाब ब्लैनफोर्ड जैसा और दूसरा जनाब इलियट जैसा।

अध्याय - 2

मैं शिक्षक बन गया

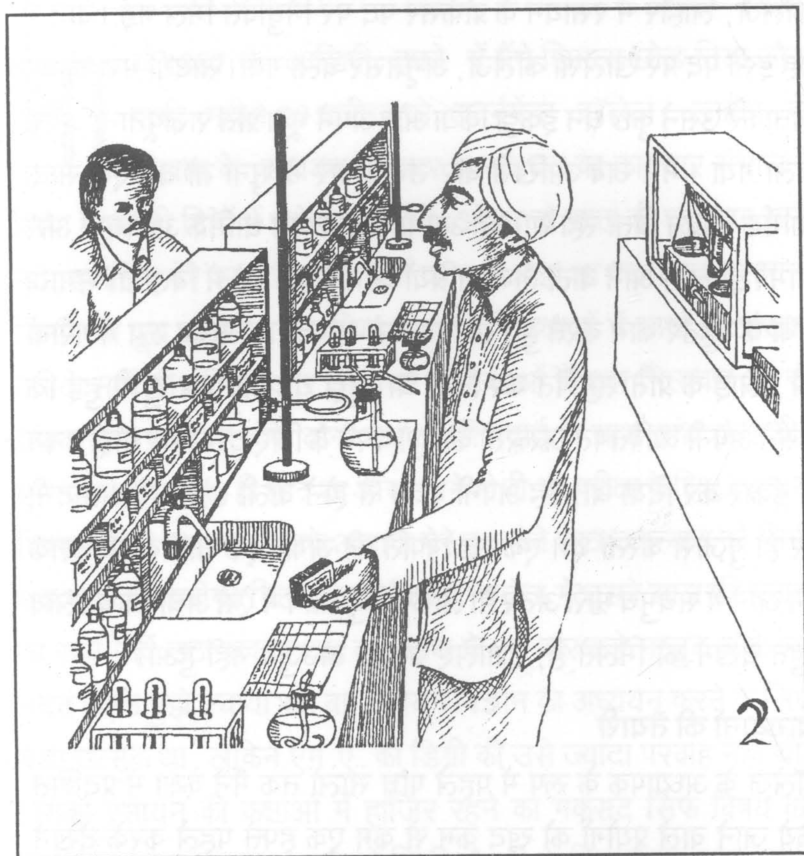
मार्च 1887 के आखिरी हफ्ते में मैंने शिमला छोड़ दिया और उसी महीने 29 तारीख को गवर्नमेन्ट कॉलेज, लाहौर में विज्ञान के सहायक प्रोफेसर के नये पद का कार्यभार संभाल लिया। कुछ ही दिनों में प्रोफेसर जे. सी. ओमन दो साल की छुट्टी पर चले गये, इसलिए मेरे ऊपर जिम्मेदारियों का भारी बोझ आ पड़ा। मुझे रसायन विभाग का पूरा कार्यभार सौंप दिया गया। डिग्री कक्षाओं में छात्रों की संख्या ज्यादा नहीं थी। तीसरे और चौथे वर्ष की कक्षाओं में कुल मिलाकर 30 से ज्यादा छात्र नहीं रहे होंगे। दोनों कक्षाओं की पढ़ाई भी साथ-साथ होती थी। एम.ए. में केवल एक ही छात्र था और उसने भी बी.ए. परीक्षा के लिए रसायन विषय नहीं ले रखा था। इसके अलावा मेरे इकलौते छात्र जगन्नाथ को सिर्फ एक साल ही वजीफा मिलना था और वह कालेज में दूसरे साल की पढ़ाई का खर्च नहीं उठा सकता था। जगन्नाथ ने एक बार बड़े नाजुक मौके पर मदद करके मुझे बचाया था। वह रसायन विज्ञान का अध्ययन करने के लिए बड़ा उत्सुक था, लेकिन एम.ए. की डिग्री की उसे ज्यादा परवाह नहीं थी। उसका रसायन की कक्षाओं में हाजिर रहने का मकसद सिर्फ विषय का अध्ययन करना था। वह अपने को किसी नौकरी के लिए तैयार करना नहीं चाहता था। उसने अपने आपको किसी औद्योगिक काम में समर्पित करने का मन बना रखा था। वह बहुत उत्साही था और उसे पढ़ाने में वास्तव में बड़ा आनंद आता था। शुरू के महीनों में वह बी.ए. की ज्यादातर कक्षाओं में भी हाजिर होता रहा। उसने कॉलेज में साल भर मेरे साथ रहकर इंटरमीडिएट

और डिग्री कक्षाओं के लिए प्रयोग तैयार करने में मेरी भारी मदद की।

गवर्नमेन्ट कॉलेज, लाहौर में जगन्नाथ ने अपने समय का इतना अच्छा सदुपयोग किया कि कॉलेज छोड़ने के तुरंत बाद उसे डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर में रसायन के प्रोफेसर पद पर नियुक्ति मिल गई। बाद में वह इसी पद पर खालसा कॉलेज, अमृतसर चला गया। सादगी भरा जीवन बिताकर उसने कुछ धन इकट्ठा किया और अपने मूल प्रांत राजपूताना वापस चला गया। मैंने जब आखिरी बार उसके बारे में सुना तो वह एक सादा धार्मिक जीवन बिता रहा था। वह अपना सारा समय धार्मिक अध्ययनों और सांभर झील में आने वाले तीर्थ यात्रियों को उपदेश देने में बिताता। समाज सेवा के बहुतेरे काम करते हुए उसने अपने आपको हर संभव रूप में गरीबों की भलाई के प्रति समर्पित कर दिया था। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि उसने अपनी व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करने के लिए दूसरों पर बोझ बनने से इंकार कर दिया था। वह अपनी बचत से होने वाली छोटी-सी आमदनी पर ही गुज़ारा करता था। एक उद्योगपति की जगह एक धार्मिक उपदेशक बन जाने में सचमुच भारी अंतर है। लेकिन हिंदुस्तान में ऐसे अचानक बदलाव बहुत देखने को मिलते हैं, इसलिए ज्यादा ताज्जुब नहीं हुआ।

व्याख्यानों की तैयारी

कॉलेज के अध्यापक के रूप में पहले पांच सालों तक मैंने कक्षा में प्रदर्शित किये जाने वाले प्रयोगों को खुद कम से कम एक हफ्ते पहले करके देखने का नियम बना रखा था। मैं इन प्रयोगों से तब तक संतुष्ट नहीं होता, जब तक कि लगातार तीन बार इनमें सफल नहीं होता। मतलब यह कि अगर मैं तीसरी बार किये जाने वाले प्रयोग से सर्वश्रेष्ठ परिणाम प्राप्त नहीं कर पाता तो फिर से शुरूआत करता और लगातार तीन सफलताएं मिलने तक प्रयोग करता रहता। साथ ही मैं फैराडे द्वारा नौसिखियों को दी गई सलाह



अगले दिन की प्रायोगिक कक्षा की तैयारी

का भी कड़ाई से पालन करता। इसके अनुसार छोटी सी छोटी बात का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। एक छोटा-सा उदाहरण इस बात को और स्पष्ट कर देगा। अगर मुझे किसी दिन अपनी मेज़ पर दिखाये जाने वाले तीन अलग-अलग प्रयोगों के लिए माचिस की जरूरत होती तो प्रत्येक प्रयोग के उपकरणों के बगल में एक माचिस रखी होती। इसके अलावा मेरी जेब में भी एक माचिस होती ताकि जब मैं प्रयोगशाला का चक्कर लगाऊं तो किसी रासायनिक क्रिया को दिखाने के लिए गैस बर्नर जलाने की जरूरत पड़ने पर मुझे किसी से माचिस न मांगनी पड़े । मुझे याद नहीं आता कि इन पांच सालों के दौरान मैं कक्षा में दिखाये जाने वाले प्रयोगों में कभी भी असफल रहा हूं । इस आदत की वजह से मेरे अंदर काफी आत्मविश्वास पैदा हो गया और बाद के वर्षों में मेरे लिए सिर्फ एक दिन पहले ही अपनी मेज़ पर प्रयोग की व्यवस्था करना जरूरी रह गया। इसके लिए पहले से किसी व्यापक तैयारी की जरूरत भी नहीं पड़ती। लेकिन हां, मेरे विचार से जिन प्रयोगों में विशेष सावधानी या सतर्कता रखने की जरूरत होती या जिनमें किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न होने की संभावना होती उन पर जरूर पहले से ध्यान दिया जाता और तैयारी की जाती। मुझे याद नहीं पड़ता कि कॉलेज में बिताये लंबे जीवन में मैं कभी भी अगले दिन दिखाये जाने वाले प्रयोगों की अपनी मेज़ पर की गई व्यवस्था को देखे बिना घर चला गया होऊं । ज्यादातर प्रयोगों के लिए मेरे प्रयोगशाला सहायक के पास आवश्यक उपकरणों और अन्य सहायक सामग्रियों की ध्यानपूर्वक बनायी गयी सूची थी, लेकिन जब तक मैं अगले दिन के व्याख्यान के लिए सारी चीज़ों को सही जगह पर नहीं देख लेता, तब तक मैं संतुष्ट नहीं होता और घर नहीं जाता।

यहां मैं बता दूं कि शीतकालीन सत्र के दौरान मैं हर रोज आमतौर पर सुबह 9:30 से 11:30 तक व्याख्यान देने के लिए, और फिर दोपहर दो

बजे के बाद प्रयोगात्मक कक्षाओं के लिए कॉलेज जाता। ऐसा करना दोपहर के भोजन के बाद एक घंटा झपकी मारने के लिए जरूरी था। दोपहर के भोजन की नींद मेरे ऊपर जिंदगी भर हावी रही। रात के भोजन के बाद भी लगभग ऐसा ही था। मैं ध्यान रखता कि मेरा बिस्तर तैयार रहे और पास में ही हो, ताकि मैं तुरंत सो सकूं। दोपहर के भोजन बाद एक घंटा नींद लेने पर मैं ताजादम होकर फिर से काम करने के लिए तैयार हो जाता। कुछ मौकों पर अगर मुझे दोपहर के भोजन के बाद भी काम करने की जरूरत पड़ती तो मैं भोजन ही नहीं करता। बस एक कप चाय पीकर काम चला लेता। रात में मैं भोजन के तुरंत बाद सो जाता। यहां तक कि कभी-कभी मैं भोजन के बाद वहीं बैठे-बैठे ऊंघने लगता। तब मेरे परिवार के लोग कहते बेहतर होगा कि आप बिस्तर पर चले जाएं।

यह लंबा विषयान्तर यह समझाने के लिए जरूरी था कि मैं क्यों दिन में दो बार कॉलेज जाता था, जबकि वरिष्ठ प्रोफेसरों समेत बाकी सभी लगातार कई घंटों तक कक्षाएं लेने पर जोर दिया करते थे।

गवर्नमेन्ट कॉलेज में अध्यापक के रूप में मेरी जिंदगी के पांच साल शायद सबसे ज्यादा व्यस्त और कठोर परिश्रम करते हुए गुज़रे । *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* की नई स्थापित कार्यशाला और अन्य सार्वजनिक कार्यकलापों के कारण मेरे पास वक्त की बहुत कमी थी, लेकिन फिर भी मैं हर रोज दस घंटे अध्यापन कार्य में लगाता । मैं इतवार और अन्य छुट्टियों समेत हर रोज कॉलेज में लगभग आठ घंटे व्याख्यानों की तैयारी में लगाता और समझता हूं कि मैं यह तथ्य बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं। जैसा मैं पहले ही कह चुका हूं, मैं कक्षा में प्रदर्शित किये जाने वाले हर प्रयोग को कई दिन पहले ही बार- बार करके देख लेता था। मेरे साथ मेरे प्रयोगशाला

सहायक को भी प्रयोगशाला में कुछ अतिरिक्त समय गुज़ारना पड़ता। इसकी भरपाई मैं अपनी जेब से उसे कुछ अतिरिक्त धन देकर करता। पहले साल मुझे अपने मित्र जगन्नाथ का उपयोगी सहयोग मिलने से भी लाभ हुआ। वह समझता था कि इस तरह वह डिग्री परीक्षा में रसायन न लेने की कमियों को पूरा कर सकेगा। लेकिन उसने मुझे मेरे व्याख्यानों के प्रयोगात्मक पक्ष की तैयारी के कठिन कार्य में प्रसन्नतापूर्वक जो समझदारी भरा सहयोग दिया उसके लिए मैं हार्दिक धन्यवाद के सिवा और क्या दे सकता हूं !

कक्षा में हर दिन ज्यादा से ज्यादा प्रयोगों को करके दिखाना मेरी आदत थी। इसकी तैयारी में लगने वाले समय के अलावा व्याख्यानों की तैयारी में भी मेरा काफी समय खपता था। मेरे यह कहने का मतलब आप इस तथ्य से समझ सकेंगे कि पहले दो-तीन सालों तक मैं कक्षा में दिये जाने वाले अपने व्याख्यानों को लम्बे सारांशों (लाँग नोट्स) के रूप में लिख लिया करता था, हालांकि मैं कक्षा में कभी इन पर नज़र भी नहीं डालता था। समझायी जाने वाली ज्यादा महत्त्वपूर्ण बातों को मैं एक अलग क्लास नोट बुक में लिख लिया करता था। इनमें से कुछ नोट्स को मैं कभी-कभी कक्षा में बोलकर लिखवा दिया करता था, लेकिन ज्यादातर इन्हें कमरे के कोने में पड़ी मेज़ पर रख दिया जाता था, ताकि व्याख्यान के बाद छात्र इन्हें पढ़ सकें या उतार सकें। मेरे लिए इतना सब कुछ करना भी पर्याप्त नहीं था। मैं अपनी हर जूनियर या सीनियर कक्षा के लिए हर रोज एक छोटी-सी पर्ची तैयार करके रखता, जिसमें व्याख्यान के दौरान समझायी जाने वाली महत्त्वपूर्ण बातें उसी क्रम में लिखी रहती, जिस क्रम में उन्हें बताना है। कक्षा में व्याख्यान देते समय मैं यह पर्ची अपने हाथ में रखता।

मैं प्रयोगों और व्याख्यानों, दोनों की ही पहले से भली प्रकार तैयारी रखता था। इसलिए लोगों की आशाओं के विपरीत मुझे अपने छात्रों के

CLASS NOTES

ON

ELEMENTARY ORGANIC CHEMISTRY.

BY

RUCHI RAM SANHI, M. A.,

PROFESSOR, GOVERNMENT COLLEGE, LAHORE.

Lahore:

G. R. COOMAWR & SONS,

"The Lyceum", Machhi Hatta Street

AND

Government College.

1914.

रुचि राम के प्रकाशित "क्लास नोट्स" का आवरण पृष्ठ

सवालों का सामना करने में कभी कोई परेशानी नहीं हुई। एक नये प्रोफेसर पर, जिसने अपना अध्यापकीय पेशा शुरू ही किया हो, कक्षा के चतुर छात्रों द्वारा खोजी सवालों की बौछार होना तय रहता है। यहां मैं यह भी बता दूं कि कॉलेज में एक भी कक्षा लेने से पहले मैंने खुद अपने मार्गदर्शन के लिए कुछ नियम बना लिये थे। इनमें से एक नियम यह था कि अगर व्याख्यान के दौरान मैं किसी सवाल का संतोषजनक जवाब न दे सकूं तो बजाय इधर-उधर की बातें करने के मैं तुरंत अपनी अज्ञानता स्वीकार कर लूं और अगले दिन उस बात को ठीक से समझाने का वादा करूं। इसके लिए मैंने अपने घर पर अपने विषय की स्तरीय पुस्तकों का एक अच्छा-खासा संग्रह बना रखा था। उस समय विश्वविद्यालय में कोई पुस्तकालय नहीं था और कॉलेज के पुस्तकालय में अंग्रेजी भाषा और साहित्य, इतिहास, दर्शन शास्त्र, उपन्यास तथा अन्य सामान्य विषयों पर तो पुस्तकों का अच्छा भण्डार था, पर विज्ञान की किसी भी शाखा की पुस्तकों की बेहद कमी थी। शुरू में 100 रुपये लगाने के अलावा मैं भौतिकी और रसायन की नई पुस्तकें खरीदने पर हर महीने 15 रुपये खर्च करता था। कॉलेज के पूरे जीवन भर मैं इस नियम का पालन करता रहा। अगर किसी महीने मुझे 30-40 या और ज्यादा रुपयों की पुस्तकें खरीदना जरूरी हो जाता तो भी मैं अगले महीने अपने मनपसंद विषयों की पुस्तकें खरीदने पर 15 रुपये जरूर खर्च करता। बाद के वर्षों में पुस्तकों का मेरा व्यक्तिगत संग्रह, समय-समय पर प्रकाशकों द्वारा भेंट की गई पुस्तकों के कारण और भी विशाल हो गया। अपने निजी पुस्तकालय से मुझे अपने व्याख्यानों की तैयारी करने में बहुत मदद मिली। इसके अलावा भी पुस्तकालय ने अनेक मौकों पर अनेक तरह से मेरी सहायता की।

स्कूल ऑफ आर्ट में

कॉलेज में सहायक प्रोफेसर बनने के तुरंत बाद मैंने लगभग छह महीनों तक *मेयो स्कूल ऑफ आर्ट* में बढ़ईगीरी (कारपेन्टरी) की कक्षाओं में अध्ययन किया। इस प्रशिक्षण से मुझे कॉलेज का रोजमर्रा का काम निपटाने में बड़ी मदद मिली। मैं सौभाग्यशाली रहा कि *स्कूल ऑफ आर्ट* में मेरी जान-पहचान लॉकवुड किपलिंग (रुडयार्ड किपलिंग के पिता)[17], भाई राम सिंह और शेर मुहम्मद से हुई। जनाब लॉकवुड किपलिंग उस समय *स्कूल ऑफ आर्ट* के प्रधानाचार्य थे, जबकि बाकी दोनों सज्जन वहां वरिष्ठ छात्र-शिक्षक थे। यह व्यवस्था जनाब किपलिंग और उनके इन दोनों छात्रों के लिए माकूल थी। राम सिंह और शेर मुहम्मद को अच्छा वजीफ़ा (स्टाइपेन्ड) मिलता था, जिस कारण स्कूल में अध्यापक की उपयुक्त जगह मिलने से पहले उनका अनेक वर्षों तक स्कूल में काम करना संभव हो सका। बाद में राम सिंह उन्नति करते हुए स्कूल के प्रधानाचार्य के पद तक पहुंचे और (खान साहब) शेर मुहम्मद उनके उप-प्रधानाचार्य बने। राम सिंह कलात्मक डिज़ाइनिंग में बेहद निपुण थे, जबकि शेर मुहम्मद समान रूप से सज्जा कला के माहिर थे। यहां बता दूं कि *युनिवर्सिटी कन्वोकेशन हाल*, संग्रहालय, *चीफ कोर्ट*, एचिसन कॉलेज समेत लाहौर के सभी सर्वोत्तम भवनों के डिज़ाइन उन्होंने तैयार किये थे । मैं समझता हूं कि कलात्मक दृष्टिकोण से अमृतसर के खालसा कॉलेज का भवन उनके द्वारा डिज़ाइन किया गया सर्वोत्तम भवन है। शेर मुहम्मद को वैसे अवसर नहीं मिले, लेकिन यहां यह उल्लेखनीय होगा कि लाहौर गवर्नमेन्ट हाउस की दीवारों पर किया गया कलात्मक चित्रण उन्हीं ने किया था। मैं हमेशा इसे अपना सौभाग्य मानता हूं कि मैं उन्हें अपने दोस्तों में शामिल कर सका। यह बहुत खेद का विषय है कि पंजाब ने उनकी स्मृतियों को वैसा आदर-सम्मान नहीं दिया, जिसके वे हकदार

थे। बहुत-सी बातों में पिछड़ा होने के साथ ही पंजाब अपने उन प्रतिभाशाली सपूतों की कदर करने में भी पिछड़ा हुआ है, जिन्होंने चुपचाप बिना आडंबर के अपना कार्य किया। मैं भाई राम सिंह और मुंशी शेर मुहम्मद को प्रांत का ऐसा ही भुलाया गया प्रतिभाशाली सपूत मानता हूं। उन्होंने भारतीय कला और दस्तकारी के पुनरुत्थान में जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया, उसकी कभी अपेक्षित सराहना नहीं की गई।

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता हो रही है कि जब मैं कुछ बढ़ईगीरी सीखने के उद्देश्य से लॉकवुड किपलिंग के पास गया तो उन्होंने मुझे भाई राम सिंह की देख-रेख और निर्देशन में सौंप दिया। स्वाभाविक रूप से बढ़ईगीरी मेरी दूसरी रुचि बन गई और कला की सराहना करना पहली रुचि। छात्र-शिक्षक होने पर भी राम सिंह मुझे पास के संग्रहालय में ले जाकर कलात्मक वस्तुएं दिखाने में बहुत खुश होते। वह मुझे तैल चित्रों, मूर्तियों और अन्य कलात्मक वस्तुओं की कला के मूल्यांकन का आधार समझाते। उस समय मौजूदा टौलिन्टन बाजार ही लाहौर संग्रहालय था, जबकि *स्कूल ऑफ आर्ट* एक पुरानी-सी इमारत में था, जिसकी बगल में तुरन्त बाद ही मौजूदा बड़ा और सुंदर भवन बनाया गया।

भारत-इंग्लैंड के सामाजिक संबंधों का कठिन दौर

गवर्नमेन्ट कॉलेज में आये मुझे ज्यादा समय नहीं बीता था कि एक रोचक घटना घटी। यह मेरी सरकारी जिंदगी में अपने तरह की पहली घटना थी और आज इसका पूरा अर्थ समझने पर मैं यह नहीं कह सकता कि मुझे इसका खेद है। अनेक दृष्टिकोणों से लगता है कि पिछली शताब्दी का अंतिम चतुर्थांश भारत-इंग्लैंड के सामाजिक संबंधों के लिए कठिन दौर था। अंग्रेजों के लिए यह वह समय था, जब साम्राज्य का विस्तार हो रहा था और खास

बात यह थी कि इसका अर्थ और मान्यताएं भी बदल रहीं थीं । * इसी समय हिन्दुस्तान भी एक ऐसे सामाजिक और बौद्धिक जागरण के प्रभाव का अनुभव कर रहा था, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। देश का संपूर्ण प्रबुद्ध वर्ग एक ओर अपनी प्राचीन मान्यताओं को छोड़ने में हिचक रहा था तो दूसरी ओर पश्चिम की संस्कृति और सभ्यता के मोहजाल में भी जकड़ता जा रहा था। यह सच है कि वे कुछ सरकारी कार्रवाइयों की आलोचना करते थे, लेकिन उसी सांस में युरोपीय कला व विज्ञान तथा उदारवादी अंग्रेजी साहित्य के प्रति हार्दिक प्रेम व प्रशंसा के भाव भी प्रदर्शित करते थे। वे सबसे ज्यादा प्रशंसा तो उस सामाजिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के वादे की करते थे, जिसे ब्रिटेन की महारानी ने हिंदुस्तानियों को बतौर तोहफा भेंट किया था। यह हिंदुस्तान के इतिहास में *प्रोक्लेमेशन ऑफ क्वीन-द मैग्ना कार्टा ऑफ इंडियन लिबर्टीज़* के नाम से मशहूर है। **

सन् 1894 या 1895 में मुझे एक अनोखा अनुभव हुआ, जिससे मुझे धक्का भी लगा। यह इस तरह का मेरा पहला अनुभव था, पर दुर्भाग्य से यह आखिरी अनुभव न रहा। एक सुबह एक सहयोगी कॉलेज से एक छात्र मेरे पास आया और मुझसे रसायन के प्रयोगात्मक प्रश्नपत्र के एक सवाल

---

* यहां लेखक ने अपनी पुस्तक *ए सेंचुरी ऑफ कल्चरल फरमेंट* (अध्याय: *ग्रोथ ऑफ नेशनलिज़्म इन इंडिया*) का उल्लेख किया है, लेकिन हमें यह पुस्तक प्रकाशित या अप्रकाशित, किसी भी रूप में प्राप्त नहीं हो पायी । - संपादक

** पिछली शताब्दी के अंतिम दो दशकों में मुझे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के ऐसे एक भी भाषण की याद नहीं है, जिसमें उन्होंने भाषण खत्म करते समय यह न कहा हो : मैं *प्रोक्लेमेशन ऑफ क्वीन-द मैग्ना कार्टा ऑफ इंडियन लिबर्टीज़* के पक्ष में हूं। उनके यह कहने पर श्रोता जिस जबर्दस्त उत्साह का प्रदर्शन करते उसका शब्दों में वर्णन करना सचमुच मेरे लिए बहुत कठिन है।

का हल पूछने लगा। उसे उम्मीद थी कि अगले दिन इंटरमीडिएट परीक्षा में यही सवाल पूछा जाएगा। वह खुद परीक्षा में बैठ रहा था। जनाब ए (सुविधा के लिए मैं उसे इसी नाम से पुकारूंगा) मेरे कुछ दोस्तों के संबंधी थे और जब-तब मुझसे मिलने आया करते थे। मेरे विचार से इंटरमीडिएट के छात्रों से ऐसा सवाल पूछे जाने की कोई संभावना नहीं थी। मैंने उससे भी यही कहा। लेकिन जनाब ए ने मेरी एक न सुनी। जब वह जवाब जानने के लिए पीछे पड़ गया तो मैंने पेंसिल से चित्र बनाकर उसे जवाब समझा दिया। अगले दिन मुझे यह देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि वैसा असंभावित सवाल सच में पूछा गया था। मैं इस अनहोनी को किसी भी तरह से समझ नहीं पाया। यहां मेरा इस घटना की पृष्ठभूमि में जाना अनावश्यक होगा। लेकिन फिलहाल मेरा यहां इतना बताना ही पर्याप्त होगा कि सर चार्ल्स एचिसन की अध्यक्षता में गठित लोक सेवा आयोग की सिफारिश पर सन् 1886 में यह निर्णय लिया गया कि उच्च सेवाओं को दो अलग-अलग वर्गों में बांट दिया जाय और इन्हें *इन्डियन* व *प्रोविंशियल सर्विस* कहा जाय। न केवल इन दोनों वर्गों के पदों की तनख्वाह में भारी अंतर था, बल्कि कुछ आपत्तिजनक भेदभाव भी किये गये थे। इस कारण अखबारों में इससे सम्बद्ध एक कड़वा विवाद भी उभरा था । एक दिन हमारे प्रधानाचार्य जनाब टी. ओ. लुइस ने सभी चारों हिंदुस्तानी सहायक प्रोफेसरों को बुलाया – एल. सागर चंद, बाबू शशि भूषण मुकर्जी, जी. एन. चटर्जी और मुझे। हम जैसे ही प्रधानाचार्य के कमरे में बैठे, वैसे ही जनाब लुइस ने हमसे कहा कि सार्वजनिक शिक्षा के निदेशक से प्राप्त निर्देशों के अनुसार आगे से प्रोफेसर लोग हर दिन तीन घंटे पढ़ाया करेंगे*, जबकि सहायक प्रोफेसरों

---

* गर्मियों में प्रतिदिन या 50 मिनट के तीन या चार घंटों (पीरियडों) में व्याख्यान देने की वर्तमान परंपरा का चलन बहुत बाद में हुआ।

को हर दिन चार घंटे व्याख्यान देना होगा। इसके अलावा प्रोफेसर लोग केवल एक ही विषय पढ़ाया करेंगे, जबकि जरूरत पड़ने पर प्रधानाचार्य के कहने से सहायक प्रोफेसरों को दो या तीन विषय पढ़ाने होंगे। मेरे यह पूछने पर कि सीनियर और जूनियर प्रोफेसरों के बीच यह भेदभाव क्यों किया जा रहा है, जनाब लुइस ने बताया कि सहायक प्रोफेसर युवा होते हैं और उन्हें किसी खास विषय में विशेषज्ञता प्राप्त नहीं होती । जबकि प्रोफेसर लोग आमतौर पर कुछ वृद्ध होते हैं और किसी एक विषय के विशेषज्ञ होते हैं। इस पर मैंने कहा, "इसका मतलब यह हुआ सर कि जूनियर प्रोफेसर कभी भी सीनियर प्रोफेसर नहीं बन पाएंगे, क्योंकि उन्हें कभी भी किसी एक विषय में विशेषज्ञता प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलेगा।"

यह सुनते ही जनाब लुइस भड़क गये। उन्होंने गुस्से में मुझसे अपने शब्द दुहाराने के लिए कहा, ताकि वह सार्वजनिक शिक्षा के निदेशक को इसकी रिपोर्ट भेज सकें। मुझसे यह कहते समय उन्होंने अपना पेन उठा लिया, ताकि शब्दों को लिखकर एक दम उसी रूप में सार्वजनिक शिक्षा के निदेशक के पास भेज सकें। इससे पहले कि मैं कुछ कहने और अपनी बात समझाने के लिए अपना मुंह खोलता लाला (बाद में राय बहादुर) सागर चंद ने मेरा बचाव किया। उन्होंने कठोर स्वर में कहा, ".... इन्हें मेरे शब्द भी माना जाये।" उसी समय तुरंत बाबू शशि भूषण और जी. एन. चटर्जी ने भी कहा, "... और हमारे शब्द भी यही हैं।" इस मसले पर हम सबने जो कड़ा रुख अपनाया उसका जनाब लुइस पर जो असर पड़ा वह मैं कभी भूल नहीं सकता। मैं यह कहने में जरा भी अतिश्योक्ति नहीं कर रहा हूं कि उनके हाथ से पेन अपने आप छूट गया। फिर उन्होंने हमसे अंतिम शब्द ये कहे, "ठीक है, आप जा सकते हैं।" हमने फिर कभी इस अजीब प्रस्ताव के बारे में कुछ नहीं सुना। यदि यह प्रस्ताव लागू हो जाता तो हम हमेशा

के लिए कॉलेज में किसी भी विषय के वरिष्ठ प्रोफेसर के पद के लिए अयोग्य हो जाते । अस्थायी तौर भी हमें यह पद नहीं मिलता। लेकिन नयी गठित *प्रोविंशियल एजुकेशनल सर्विस* के हिंदुस्तानी सदस्यों को अपनी जगह पर रोके रखके *इंडियन एजुकेशनल सर्विस* (आई. ई. एस.) तक न पहुंचने देने के और भी कई रास्ते थे। कैसी विडंबना है कि इसके नाम में *इंडियन* शामिल है, पर व्यावहारिक रूप से हिंदुस्तानियों को हमेशा इस सेवा से अलग रखा गया। यहां यह बताना काफी होगा कि सन् 1918 में मेरे अवकाश ग्रहण करने के समय भी, जहां तक मुझे मालूम है, पूरे हिंदुस्तान में कुल तीन हिंदुस्तानी ही ऐसे थे, जो अपने नाम के बाद आई.ई.एस. के तीन प्रतिष्ठित अक्षरों को लगा सकते थे। * यहां तक कि सर प्रफुल्ल चंद्र राय, डी.एस-सी. ने भी अपना सारा जीवन *प्रोविंशियल सर्विस* में ही बिताया। इनके अलावा और भी ऐसे ही बहुत से समान रूप से योग्य व्यक्ति थे।

लगभग उसी समय या उसके थोड़े समय बाद एक घटना और घटी, जिसका मैं यहां संक्षिप्त उल्लेख करना चाहूंगा। सन् 1893 में लाहौर में पहले-पहल *इंडियन नेशनल कांग्रेस* का अधिवेशन हुआ। जैसी आशा थी, इसने शहर में इतनी उत्तेजना फैला दी कि मैं वर्णन नहीं कर सकता। एक तरह से पूरा लाहौर लॉर्ड सैलिसबरी के काले व्यक्ति (ब्लैकमैन) के जोरदार स्वागत के लिए सड़कों पर आ गया था। इस काले व्यक्ति को हाल में ही लिबरल चुनाव क्षेत्र से ब्रिटिश संसद के लिए चुना गया था। शहर की एक

---

* सर जगदीश चंद्र बोस, एफ.आर.एस. (भौतिकी); डा. डी. एन. मल्लिक (गणित) और मद्रास में एक हिंदुस्तानी ईसाई सज्जन (अंग्रेज़ी)।

खास जगह * पर जुलूस की लंबाई बड़ी आसानी से एक मील थी।

यहां मुझे इन सब बारीकियों पर ज्यादा समय नहीं लगाना चाहिए, बल्कि जल्दी से, जहां तक संभव हो, संक्षिप्त रूप में उस घटना का जिक्र करना चाहिए, जिससे मेरा और गवर्नमेन्ट कॉलेज के मेरे हिंदुस्तानी साथियों का संबंध है। लाहौर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन की असीम लोकप्रियता की संभावना को ध्यान में रखते हुए पंजाब सरकार ने अपने सभी वरिष्ठ व कनिष्ठ कर्मचारियों के लिए व्यापक निर्देश जारी किये थे। इसके अनुसार कोई भी कर्मचारी कांग्रेस आंदोलन में सक्रिय भाग नहीं ले सकता था और न ही धन से मदद कर सकता था। अपने प्रभाव के उपयोग द्वारा मदद करने पर भी मनाही थी। उस समय ऐसा करना बहुत जरूरी था, क्योंकि सरकारी कर्मचारियों के राजनीतिक संगठनों में शामिल होने पर कोई प्रतिबंध नहीं था। कॉलेज के कई प्रोफेसर स्थानीय *इंडियन एसोसिएशन ऑफ कलकत्ता* के नियमित सदस्य थे। यह उस समय की एक बेहद प्रभावशाली राजनीतिक संस्था थी और इसकी शाखाएं देश भर में फैली हुई थी। हम अधिक स्वतंत्रता के आदी थे, इसलिए हमें लगा कि हमारे कार्यकलापों पर इतने कड़े प्रतिबंध लगाना उचित नहीं है। हम चारों हिंदुस्तानी सहायक प्रोफेसरों ने कॉलेज के एक कमरे में बैठ कर बदले हुए हालातों पर विचार किया। हम लोगों के बीच एक मुद्दे पर जरा भी मतभेद नहीं था। वह मुद्दा यह था कि हम सबको एकजुट होकर रहना चाहिए और फैसला चाहे जो भी हो हमें उसके पक्ष में

---

* जुलूस का शुरू का हिस्सा जल-निगम के जलाशय तक पहुंच चुका था, जहां दादा भाई नौरोजी को एक मानपत्र भेंट किया गया, जबकि पिछला हिस्सा अभी भी वजीर खान की मसजिद के सामने खुले मैदान में उमड़ रहा था।

एकजुट होकर दृढ़ता से कार्रवाई करनी चाहिए। फिर हम सबने यह तय किया कि हम आगंतुक (विज़िटर) के रूप में कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेंगे और हममें से हर कोई 50 रुपये मूल्य का विशिष्ट आगंतुक टिकट खरीदेगा। इस टिकट के बदले हमें मंच पर बैठने का हक होगा, पर हम सामान्य आगंतुकों के वर्ग में सबसे पीछे की कतार वाली कुर्सी पर बैठेंगे। हम यह नहीं चाहते थे कि हम कांग्रेस अधिवेशन में उभरकर सामने आयें, क्योंकि ऐसा करने से यह माना जाता कि हम अपने प्रभाव का उपयोग कर रहें हैं। हमारा सोचना सही था या नहीं, यह तो नहीं मालूम, पर हमारे फैसले का मुख्य उद्देश्य सरकारी कर्मचारियों को जारी किये गये निर्देशों की सीमा के भीतर रहते हुए कांग्रेस के कोष में छोटा-सा योगदान देना था। अब मेरे लिए यही बताना बाकी रह जाता है कि सब कुछ हमारी आशाओं से भी बेहतर ढंग से संपन्न हुआ। पहले दिन एक छात्र वालंटियर सबके टिकट देखता हुआ हमारे पास आया। जब उसने देखा कि हमारे पास विशिष्ट आगंतुक टिकट है तो उसने हमसे विनीत भाव में मंच पर लगी आरामदायक कुर्सियों पर बैठने की प्रार्थना की, लेकिन हमने कोई बहाना बना दिया। यह खबर जल्दी ही विश्वविद्यालय के उन थोड़े-से छात्रों तक पहुंच गयी, जिन्हें कुछ कठिनाई से, आग्रह करके कांग्रेस अधिवेशन का वालंटियर बनने के लिए राजी किया जा रहा था। हमे अगले दिन कांग्रेस वालंटियरों के प्रमुख जनाब चार्ल्स गोलकनाथ, बैरिस्टर ने बताया कि कल शाम कॉलेज के बहुत छात्र उनके पास आये और अपने को वालंटियर बनाने की जिद करने लगे। उन्होंने बताया कि अधिवेशन शुरू होने से पहले उन्हें विभिन्न कामों के लिए तैनात किये जाने वाले वालंटियर ढूंढने में बड़ी दिक्कत हो रही थी, लेकिन अब इतने ज्यादा वालंटियर हैं कि उनके लिए काम ढूंढना मुश्किल है। यहां तक कि वरिष्ठ छात्र भी वालंटियर बन गये हैं। उन्होंने हमें यह भी बताया कि जब कई छात्रों से पूछा गया कि

अभी तक आप लोग वालंटियर क्यों नहीं बन रहे थे तो सबने एक ही जवाब दिया–हमें कुछ दोस्तों ने सलाह दी थी कि वालंटियर बनने से आगे सरकारी नौकरी मिलने की संभावना पर बुरा असर पड़ेगा। लेकिन जब उन्हें यह पता चला कि गवर्नमेन्ट कॉलेज स्टॉफ के सभी हिंदुस्तानी सदस्यों ने 50 रुपये वाला विशिष्ट आगंतुक टिकट खरीदा है तो उनमें साहस पैदा हुआ और वे एकजुट होकर कांग्रेस का वालंटियर बनने के लिए आ गये। हमने कभी नहीं सोचा था कि ऐसा भी हो सकता है। हम तो विशिष्ट आगंतुक टिकट खरीदकर सिर्फ राष्ट्रीय सम्मेलन के कोष में छोटा-सा योगदान देना चाहते थे।

मैं जनाब 'ए' वाले मामले पर वापस लौटता हूँ। परीक्षा समाप्त होने के बाद कॉलेज जाने पर मैंने प्रोफेसर ओमन को अपने अनोखे अनुभव के बारे में बताया। उन्होंने बिना एक पल भी हिचके मुझसे पूछा कि क्या मैं प्रधानाचार्य (जनाब एरिक राबर्टसन) को इस मामले की रिपोर्ट देने के लिए तैयार हूं। मैंने कहा कि अगर आप मेरे लिए ऐसा करना उचित समझते हैं तो मुझे व्यक्तिगत रूप से किसी को भी इसकी रिपोर्ट देने में कोई आपत्ति नहीं है। उन्होंने कहा कि यह गंभीर मामला है और मुझे प्रधानाचार्य से इस बारे में बात करनी चाहिए। मुझे तुरंत पता लगा कि प्रधानाचार्य इस समय अपने दफ्तर के कमरे में अकेले बैठे हैं। मैं उनसे मिलने के लिए जैसे ही नीचे जाने लगा, प्रोफेसर ओमन ने मुझसे पूछा कि अगर मैं प्रधानाचार्य के यहां तुम्हारे साथ चलूं तो तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है। भला मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी, पर मैं उस समय यह समझ नहीं पाया कि प्रोफेसर ओमन ने मुझे ऐसा परामर्श क्यों दिया। जनाब राबर्टसन ने मेरी बातों को धैर्यपूर्वक सुना और मुझसे एक-दो सवाल पूछे, लेकिन हमसे पक्की तौर पर कुछ नहीं कहा। बस एक औपचारिक-सी टिप्पणी की, समझ में नहीं आता कि मैं इस मामले में क्या कर सकता हूं। लेकिन मैं खुश था कि मैंने अपने मन का

बोझ अपने विज्ञान के वरिष्ठ प्रोफेसर और कॉलेज के प्रधानाचार्य के सामने उतार दिया था। आगे की घटनाओं से पता चलेगा कि जनाब ओमन के साथ प्रधानाचार्य से मिलना कितना सौभाग्यशाली रहा।

अगले पूरे एक साल तक इस संबंध में कुछ सुनाई नहीं पड़ा। अगले साल फिर कुछ ऐसा ही घटा। मैं परीक्षा के अधीक्षकों में से एक था। भौतिकी की प्रयोगात्मक परीक्षा के लिए पहले सभी छात्र गवर्नमेन्ट कॉलेज के हॉल में इकट्ठा हो जाते थे और फिर यह मेरा काम था कि छात्रों की टोलियों को तीन या चार परीक्षकों के पास विश्वविद्यालय के अधिकारियों द्वारा नियत किये गये क्रम से भेजता रहूं। हॉल में मैंने कुछ छात्रों को कुछ विशेष सवालों पर चर्चा करते सुना। मेरे विचार से इनमें से दो सवाल इंटरमीडिएट के छात्रों के लिए बहुत कड़े थे, लेकिन अधीक्षक के तौर पर इस बारे में कुछ कहने का मेरा हक नहीं बनता था। मैं तो वहां सिर्फ व्यवस्था बनाये रखने के लिए था और मेरा काम यह देखना था कि विभिन्न परीक्षकों के पास छात्रों की सही टोली पहुंचे। जब परीक्षा समाप्त हुई तो मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ और यह शक पक्का हो गया कि संभवतया कुछ छात्रों को पहले से ही कम से क़म दो सवालों की जानकारी थी। पहले की तरह इस बार भी मैंने इसकी जानकारी प्रोफेसर ओमन को दी। उन्होंने कहा: "तुमने पिछले साल प्रधानाचार्य राबर्टसन को मेरी मौजूदगी में सारी बातें बतायी थी। अब मैं तुम्हें बेवजह मुसीबत में फंसने की सलाह नहीं दूंगा "। इस समय तक जनाब राबर्टसन हिंदुस्तान छोड़ चुके थे और उनकी जगह जनाब डालिंगर आ गये थे। जनाब डालिंगर नये-नये आये थे और मेरा उनसे जनाब राबर्टसन की तरह ज्यादा परिचय नहीं था।

इस बार प्रोफेसर ओमन भी प्रयोगात्मक परीक्षा के परीक्षकों में से एक

थे। कई दिन शांति से गुज़र जाने के बाद एक दिन जनाब डालिंगर ने मुझे तुरंत मिलने के लिए बुलाया। जैसे ही मैं उनके सामने पहुंचा, उन्होंने मुझसे पहला सवाल यही किया कि क्या मैं भौतिकी के प्रयोगात्मक परीक्षा प्रश्नपत्र के *लीक* हो जाने के बारे में कुछ जानता हूं। मैंने उनसे वह सब कुछ बता दिया, जो मैं जानता था और यह भी बताया कि मेरा शक कैसे पैदा हुआ। उन्होंने गुस्से में भरकर कहा, "लेकिन तुमने इस मसले के बारे में कभी मुझे या विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार (डा. ऑरेल स्टीन) को नहीं बताया।" फिर उन्होंने मुझे कॉलेज के प्रोफेसर और परीक्षा के अधीक्षक के रूप में मेरी जिम्मेदारियों पर एक अच्छा-खासा भाषण पिला दिया। मैंने जैसे ही उन्हें कुछ समझाने की कोशिश की, उन्होंने मेरी बात काट दी और बड़े रूखे अंदाज में एक निश्चित समय पर डॉ. स्टीन से मिलने को कहा।

अब मेरे पास ज्यादा समय नहीं था। मैं सीधे डॉ. स्टीन के पास चला गया। वह अकेले थे और दरअसल मेरा ही इंतजार कर रहे थे। वह मुझसे ऐसे मिले जैसे पहले से अपराधी घोषित किसी व्यक्ति से मिला जाता है। मैं उनसे ओरियेंटल कॉलेज की कक्षा (क्लास रूम) में मिला। डॉ. स्टीन ओरियेंटल कॉलेज के प्रधानाचार्य और विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार के संयुक्त पद पर थे। जैसे ही उन्होंने मुझे कमरे में घुसते देखा, वह बड़े रूखे अंदाज में चिल्ला पड़े, "रुचि राम, तुमने मुझे भौतिकी के प्रयोगात्मक प्रश्नपत्र के *लीक* होने की रिपोर्ट क्यों नहीं दी।" अभी मैं उनकी मेज़ तक भी नही पहुंचा था कि वह यह वाक्य कह चुके थे। मैंने कहा, "मैंने यह बात तुरंत ही प्रोफेसर ओमन को बता दी थी और उन्होंने मुझे सलाह दी कि बेवजह मुसीबत में मत फंसो।" यह सुनते ही वह गुस्से में बिफर पड़े। मैं नहीं जानता था कि पिछले कुछ दिनों के दौरान क्या कुछ हुआ है। उन्होंने कहा "लाला रुचि राम, क्या आप गवर्नमेन्ट कॉलेज के प्रोफेसर, ओरियेंटल कॉलेज के

एलैक्जेंड्रा स्कॉलर,* विश्वविद्यालय के परीक्षक और परीक्षा के अधीक्षक के रूप में अपनी जिम्मेदारियों को समझते हैं ?, "मैं अपनी जिम्मेदारियों को पूरी तरह समझता हूं सर। पिछले साल मैंने यह बात प्रधानाचार्य (जनाब एरिक राबर्टसन) को बतायी थी, लेकिन कुछ नहीं हुआ, इसलिए इस बार मैंने प्रधानाचार्य या आपको इस मसले की जानकारी देना जरूरी नहीं समझा। लेकिन मैंने प्रोफेसर ओमन को अपनी जानकारी में जो भी था, तुरंत सब बता दिया था।" मेरे जवाब से डॉ. स्टीन का संतुष्ट होना तो दूर, वह यह सोचकर बुरी तरह बेचैन हो गए कि अब क्या कहें या क्या करें। आखिरकार वह बोले "इसका मतलब है कि अगर एक ईमानदार और सच्चा परीक्षक आकर मुझे यह सब न बताता तो मुझे कभी इस बात की जानकारी ही नहीं होती।" मैंने पूछा, "आपका आशय किससे है ?" उन्होंने कहा, "जाहिर है मेरा मतलब... से है।" इस जवाब पर मुझे फारसी की एक मशहूर कहावत** याद आ गयी, लेकिन मैंने अपने आपको रोककर सिर्फ इतना

---

* उन दिनों गवर्नमेन्ट कॉलेज में अपनी जिम्मेदारियों के अलावा मैं ओरियेंटल कॉलेज में *कपूरथला एलैक्जेंड्रा स्कॉलर* का कार्य भी कर रहा था। *एलैक्जेंड्रा स्कॉलर* के रूप में मुझे ओरियेंटल कॉलेज की युनिवर्सिटी साइंस क्लास को हफ्ते में तीन बार उर्दू में व्याख्यान देना पड़ता था। विश्वविद्यालय के अधिकारियों की मंजूरी के बाद मुझे एक वैज्ञानिक पुस्तक का उर्दू में अनुवाद भी करना था। मैं उल्लेख कर दूं कि मैंने बाल्फोर स्टीवर्ट द्वारा लिखित *कन्ज़र्वेशन ऑफ एनर्जी (इंटरनेशनल साइंटिफिक सीरीज़)* नामक पुस्तक का अनुवाद किया था, लेकिन हमेशा रहने वाली धन की कमी के कारण यह कभी प्रकाशित नहीं हो पाया।

** मुझे याद नहीं आता कि यह कहावत उस समय मेरे दिमाग में आयी थी या नहीं, लेकिन यह पक्का है कि मैंने इसे बोला नहीं था। हालांकि यह उस मौके के लिए बहुत उपयुक्त होती।

ही कहा, तब आपका सच्चा और ईमानदार परीक्षक खुद ही प्रश्नपत्रों की *लीकेज* के लिए जिम्मेदार है।"

इसके बाद वहां जो दृश्य उपस्थित हुआ, वह सचमुच फरिश्तों के देखने लायक था। एक ऐसे नौजवान हिंदुस्तानी प्रोफेसर ने स्पष्ट भाषा में एक गोरे व्यक्ति पर गंभीर आरोप लगाने का साहस किया था, जो अभी अपने व्यावसायिक जीवन में प्रवेश ही कर रहा था। बाद के वर्षों में मैंने बहुत बार इस घटना के बारे में सोचा और महसूस किया कि वास्तविकता में असीम शक्ति और संभावनाएं होती हैं। मौजूदा स्थिति में सत्य जैसे पवित्र शब्द का उपयोग करना ठीक नहीं होगा। मेरी जिंदगी के तथाकथित कठिन रास्ते पर अनेक घटनाओं (इनका मैंने उपयुक्त जगहों पर उल्लेख किया है) की तरह इस घटना ने भी रोशनी फेंककर सही रास्ता दिखाया है। शायद इसीलिए मुझे जिंदगी कभी ज्यादा कठिन नहीं लगी। मैंने अपनी जिंदगी में बहुत त्याग किये, लेकिन वे उस दिमागी शांति और आत्मा के संतोष के सामने कुछ भी नहीं हैं, जो मैंने माज्जिनी[18] द्वारा बताये गये *राइट लाइन* रास्ते पर साहस के साथ चलते समय महसूस की।

डॉ. स्टीन मंच पर लगी एक कुर्सी पर बैठे थे, जिसके सामने एक मेज़ थी, जबकि मैं नीचे फर्श पर खड़ा हुआ था। कमरे में और कोई कुर्सी नहीं थी। मेरे मुंह से यह शब्द सुनकर कि ईमानदार और सच्चा परीक्षक खुद ही प्रश्नपत्रों की लीकेज के लिए जिम्मेदार है, डॉ. स्टीन बुरी तरह गुस्से में आ गये। अचानक वह मंच से उतर पड़े और मेरे एकदम पास आकर खड़े हो गये। उनका चेहरा मेरे चेहरे के एकदम पास और सामने था। मुझे लगता है कि एक बार तो उनकी नाक मेरी नाक से भिड़ गई थी। पर इस बारे में मैं पक्की तौर पर नहीं कह सकता। उन्होंने गुस्से में लाल होकर कहा,

"लाला रुचि राम, क्या तुम जानते हो कि तुम क्या कह रहे हो ? तुम एक गोरे व्यक्ति पर एक बेहद गंभीर आरोप लगा रहे हो।" उन्होंने फिर कहा, "मेरे लिए इस मामले की रिपोर्ट कुलपति को देना जरूरी होगा।" उनके गुस्सैल शब्दों और धमकियों का मुझ पर कोई असर नहीं पड़ा, मैंने कहा, "सर मैं जानता हूं, मैंने क्या कहा है। यह पहला मौका नही है जबकि... ने अपने छात्रों को पहले से ही सवाल बता दिये हों। जब भी मुझे इस मामले में कुछ भी पता चला मैंने तुरंत सारी बातें कॉलेज में अपने वरिष्ट प्रोफेसर को बता दीं और हर बार उनकी ही सलाह मानी।" "ठीक है, तुम अपनी सफाई कुलपति को दे सकते हो" यह कहने के बाद उन्होंने खोखली आवाज़ में मुझसे कहा, "मुझे अपनी बात लिखकर दो ताकि मैं उसे कुलपति के सामने प्रस्तुत कर सकूं।" मैंने तुरंत उनकी मेज़ से लगी डेस्क से एक कागज निकाला और उनके कलमदान से एक कलम ली और फिर छात्रों के लिए पड़ी एक डेस्क पर बैठ कर अपना वक्तव्य लिखने लगा। लेकिन इसी समय पता नहीं कैसे डॉ. स्टीन का रुख मेरे लिए पूरी तरह बदल गया। वह मेरे पास आये और बहुत शिष्ट आवाज में बोले, "लाला रुचि राम, यह बहुत गंभीर मामला है। जल्दबाजी मत करो। इस पर ध्यान से और सोचो और मुझे अपना वक्तव्य कल चार बजे तक भिजवा दो।" मैं तो अपना वक्तव्य लिखने ही वाला था, पर इसके लिए और ज्यादा समय पाकर मैं खुश हो गया, क्योंकि अब मैं डॉ. स्टीन को रिपोर्ट भेजने से पहले घटनाचक्र में हुए इन आ चर्यजनक बदलावों के बारे में प्रोफेसर ओमन से चर्चा कर सकता था।

डॉ. स्टीन के कमरे से मैं सीधा प्रोफेसर ओमन के घर गया। वह मेरे और डॉ. स्टीन के साथ हुए वार्तालाप को सुनने के लिए इतने उतावले थे कि झट से बगल के कमरे से अपनी पत्नी को भी बुला लाये, ताकि वह भी

यह कहानी सुन सके। जल्दी ही उनके पूरे परिवार ने मुझे घेर लिया और मैंने उन्हें यह पूरी रोमांचकारी कहानी सुना डाली। तब प्रोफेसर ओमन ने इस मामले पर एक नई रोशनी डाली। उन्होंने बताया कि उन्हें पिछले कई सालों से यह बात पता थी कि वह खास गोरा व्यक्ति विश्वविद्यालय की परीक्षा में पूछे जाने वाले सवालों को परीक्षा की तारीख से कुछ दिनों पहले अपनी कक्षा में हल करवा दिया करता था। उसका ठीक - ठीक तरीका कुछ इस प्रकार था: वह प्रोफेसर महोदय परीक्षा से तुरंत पहले एक दिन शाम को अपनी पूरी कक्षा को बुलाते और उन्हें आठ - नौ सवालों का हल समझाते। इनमें दो-तीन सवाल ऐसे भी होते, जो परीक्षा में पूछे जाने वाले होते। एक बार ऐसा हुआ कि प्रोफेसर ओमन की कक्षा का एक छात्र भी उस समय मौजूद था, जब वह महत्त्वपूर्ण सवालों का हल समझा रहे थे। उसे डॉ. स्टीन के ईमानदार और सच्चे परीक्षक की कक्षा के एक छात्र-मित्र ने बुलाया हुआ था। यह मेरे शक पैदा होने से एक-दो साल पहले हुआ था। दरअसल प्रोफेसर ओमन ने अपने छात्र द्वारा दी गई जानकारी की पुष्टि के लिए ही मुझे सारे मामले की रिपोर्ट प्रधानाचार्य एरिक राबर्टसन को देने की सलाह दी थी और खुद भी मेरे साथ गये थे। यह एक बहुत मूल्यवान जानकारी थी। इससे मेरे उस बयान को बहुत मजबूत सहारा मिल रहा था, जो मैंने कुछ घंटे पहले डॉ. स्टीन को दिया था। प्रोफेसर ओमन के घर से मुझे पहली बार एक और उपयोगी खबर मिली। डॉ. स्टीन के उस ईमानदार परीक्षक ने दरअसल कुछ व्यक्तिगत कारणों (इनका मैं यहां उल्लेख करना नहीं चाहूंगा) से इस साल के प्रश्नपत्रों के *लीक* होने की जिम्मेदारी प्रोफेसर ओमन के कंधों पर डाल दी थी। उसको यह नहीं पता था कि उसके खिलाफ ऐसे अकाट्य सबूत पेश कर दिये जाएंगे जो यह सिद्ध कर देंगे कि पिछले कई सालों से छात्रों को भौतिकी के प्रयोगात्मक प्रश्नपत्र का पहले से ही पता लग रहा था और तब

प्रोफेसर ओमन परीक्षक नहीं थे, बल्कि वह खुद ही परीक्षक था।

ऊपर बतायी गयी वजहों से मेरी स्थिति बहुत मजबूत हो गयी। फिर मैंने और प्रोफेसर ओमन ने मिलकर डॉ. स्टीन को प्रस्तुत करने के लिए वक्तव्य बनाया। अब प्रोफेसर ओमन अपनी स्थिति साफ़ करने के लिए व्यक्तिगत रुचि ले रहे थे। डॉ. स्टीन का मुखबिर खुद ही हार चुका था और एकत्र हुए तथ्यों ने उसके खिलाफ मामले को इतना साफ़ और निर्णायक बना दिया था, जितना मौजूदा हालातों में संभव था।

अगले दिन सुबह विश्वविद्यालय का दफ्तर खुलने पर मैंने दस्तावेज को एक सीलबंद लिफाफे में बंद करके जमा कर दिया और उसकी रसीद ले ली। फिर कभी मैंने इस मामले में कुछ नहीं सुना। मुझे नहीं पता कि मेरा वक्तव्य कुलपति या और किसी के समक्ष प्रस्तुत किया गया या नहीं। कई सालों तक उसी पद पर काम करने के बाद दोषी परीक्षक का नाम परीक्षकों की सूची से हटा दिया गया। पर उस समय से विश्वविद्यालय की परिषद् में मौजूद कई उच्चाधिकारी मेरा ज्यादा ध्यान रखने लगे, इससे मेरा अनुमान है कि कम से कम कुछ लोगों को इस सारी घटना की जानकारी हो गयी थी।

अध्याय - 3

मेरी पहली युरोप यात्रा

एक लंबे अर्से से मेरी इच्छा थी कि मैं कुछ समय ब्रिटिश या किसी अन्य प्रतिष्ठित विदेशी विश्वविद्यालय में बिताऊं। मैं इसकी बहुत बार योजना बना चुका था, लेकिन सन् 1914 की शुरुआत में कुछ ऐसी अनोखी और अनअपेक्षित घटनाएं घटी कि मैंने अपनी इस पुरानी इच्छा को पूरा करने का मन बना लिया। जब मैं गवर्नमेन्ट कॉलेज का छात्र था, तभी पहले-पहल मेरे मन में यह विचार आया था कि आगे अध्ययन के लिए युरोप जाना चाहिए। इसके लिए मुझे बहुत कम ब्याज पर कर्ज मिलने की भी पूरी उम्मीद थी। लेकिन जब कर्ज की मंजूरी होने लगी तो मेरे मन को कर्ज की रकम से पढ़ाई करने का ख्याल कचोटने लगा। इसके बाद जब जनाब ए. सी. हरम्यूरी विज्ञान के प्रोफेसर बन कर आये तो मैं पढ़ाई के लिए एक साल की छुट्टी लेना चाहता था। लेकिन उस समय मेरी छुट्टी इस आधार पर मंजूर नहीं की गयी कि मेरे प्रमुख अफसर इस देश के लिये नये हैं और विज्ञान विभाग में दोनों ही अधिकारियों का काम-काज में नया होना ठीक नहीं होगा। कोई एक-दो साल बाद मैंने तय किया कि मैं नौकरी पूरी तरह से छोड़ दूंगा और रसायनों से संबंधित कोई कारोबार करूंगा। यह विचार भी बाद में त्याग देना पड़ा। लेकिन इसके बाद एक बेहद दुखदायी घटना घटी। मुझे अपनी पूरी जिंदगी में शायद इससे ज्यादा निराशाजनक और कष्टकर घटना कभी नहीं झेलनी पड़ी। मैंने बहुत समय यह सोचते हुए बिताया कि मुझे इस घटना का जिक्र करना चाहिए या नहीं। फिर मुझे लगा कि मेरी आत्मकथा के प्रकाशन की जिम्मेदारी आखिरकार कुछ अन्य व्यक्तियों को वहन करनी पड़ेगी, मुझे

नहीं। इसलिए मैंने बेमन से यह फैसला लिया कि मैं अपनी जानकारी के हिसाब से तथ्यों को ज्यों का त्यों लिख दूं।

इस अप्रिय घटना के कारण ही मेरे मन में युरोप में कुछ समय गुजारने और वहां रेडियोधर्मिता जैसे नये विषय पर कुछ महत्त्वपूर्ण अनुसंधान करने की जर्बदस्त इच्छा पनपी। पता नहीं किस तरह पिछले दो या तीन सालों से मेरी इस विषय में बेहद रुचि पैदा हो गयी थी। इस विषय पर पत्रिकाओं में, किताबों में, जहां भी मेरे हाथ कुछ लगता मैं उसका अध्ययन करता। पंजाब विश्वविद्यालय का फैलो चुने जाने के तुरंत बाद मैं सिंडिक बन गया और बीच के कोई एक साल के अंतराल के सिवाय, सन् 1921 तक लगातार सिंडिक बना रहा। इस साल मैंने कांग्रेस घोषणापत्र का पालन करते हुए फैलोशिप से इस्तीफा दे दिया था। जैसी लोगों को उम्मीद थी, इन तमाम सालों के दौरान मैं विश्वविद्यालय का बेहद सक्रिय सदस्य बना रहा। इसके अलावा मुझे विश्वविद्यालय में अपने विषय का परीक्षा संबंधी कार्य भी करना पड़ता था। उन्हीं दिनों एक बार ऐसा हुआ कि मैं *बोर्ड ऑफ स्टडीज़* की बैठक में शामिल नहीं हो पाया। इस बैठक में अगले साल के परीक्षकों को चुना जाना था। कुछ दिनों बाद मुझे पता लगा कि विज्ञान की डिग्री (स्नातक) परीक्षाओं के परीक्षकों की सूची में से मेरा नाम गायब है। उन दिनों दो अलग-अलग परीक्षाएं हुआ करती थीं – एक कला संकाय की और एक विज्ञान संकाय की। पिछले अनेक सालों से मैं लगातार बी.एस-सी. या बी.ए. की परीक्षाओं का परीक्षक चुना जाता था। रसायन के वरिष्ठ प्रोफेसर मोउत जोन्स को दूसरी परीक्षा का परीक्षक नियुक्त किया जाता था। एम.एस-सी. की परीक्षा का ज्यादातर काम भी प्रोफेसर जोन्स ही निपटाते थे। यहां मैं बताना चाहूंगा कि उस समय मैं भी रसायन का पूर्ण प्रोफेसर था, लेकिन मैं प्रांतीय सेवा में था, जबकि जनाब जोन्स *इंडियन एजुकेशनल सर्विस* के सदस्य थे।

मुझे यह देखकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि *बोर्ड ऑफ स्टडीज़* ने पता नहीं किस तरह प्रोफेसर जोन्स को बी.ए. और बी.एस-सी., दोनों ही परीक्षाओं का परीक्षक चुन लिया था। मैंने इसे अपनी अवहेलना समझा, लेकिन उस समय मेरा विश्वास था कि परीक्षकों की सूची में से मेरा नाम किसी गलती की वजह से कट गया है। किसी ने खुद आगे आने के लिए मेरा नाम जानबूझकर किसी साज़िश के तहत नहीं कटवाया है। उस समय मैं बुजुर्ग अध्यापक था और मेरे लिए परीक्षक बनना पैसे का नहीं, बल्कि प्रतिष्ठा का सवाल था। इसके अलावा ऐसी कोई वजह नहीं थी कि प्रोफेसर जोन्स को बी.ए. और बी.एस-सी. दोनों ही परीक्षाओं का परीक्षक बना दिया जाये, जबकि प्रांतीय सेवा के उनके साथी की अनजाने में पूरी तरह से उपेक्षा कर दी जाये। खासतौर से तब जबकि वह अध्यापक पिछले 25 सालों से कक्षा में पढ़ा रहा हो। परेशान होकर इस उलझन और समस्या को मैंने आर. बी. शादीलाल (बाद में सर शादी लाल) के सामने रखा। वह मेरे इस विचार से सहमत थे कि कहीं कोई गलती हुई है। उन्होंने कहा कि जब परीक्षकों की सूची अंतिम मंजूरी के लिए सिंडिकेट की बैठक में प्रस्तुत की जाएगी तो वह उसमें मेरा नाम शामिल करवा देंगे। मैं बता दूं कि उस समय आर. बी. शादीलाल और मैं, दोनों ही सिंडिकेट के सदस्य थे। साथ ही प्रोफेसर जोन्स भी इसके सदस्य थे। उस समय डॉ. जे. सी. आर. इविंग विश्वविद्यालय के कुलपति थे।

जब *बोर्ड ऑफ स्टडीज़* द्वारा प्रस्तावित परीक्षकों की सूची अंतिम मंजूरी के लिए सिंडिकेट के सामने प्रस्तुत की गयी तो आर. बी. शादीलाल ने बी.ए. की रसायन परीक्षा के परीक्षक के लिए मेरा नाम प्रस्तावित किया। यह प्रस्ताव 4 के खिलाफ 5 से गिर गया। मैंने वोट नहीं दिया। उसके बाद उन्होंने बी. एस-सी. की परीक्षा के लिए मेरा नाम प्रस्तावित किया। इसका

भी पहले ही जैसा हश्र हुआ। फिर उन्होंने एम.एस-सी. की परीक्षा के लिए मेरा नाम प्रस्तावित किया और इसका भी वही नतीजा निकला। भौतिकी की बी.ए., बी.एस-सी. और एम.एस-सी. परीक्षाओं के साथ भी ऐसा ही हुआ। आर. बी. शादीलाल अपना आपा खो बैठे। यह उन जैसे व्यक्ति के लिए एक असाधारण बात थी, क्योंकि वह सारे प्रांत में अपने शांत स्वभाव व विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य बनाये रखने के लिए मशहूर थे। उन्होंने कुलपति को संबोधित करते हुए कहा कि वह यह प्रस्ताव रखने की आज्ञा चाहते है कि *बोर्ड ऑफ स्टडीज़* के सदस्य स्वयं परीक्षक बनने के चुनाव में हिस्सा न लें। डॉ. इविंग ने इसका जवाब देते हुए कहा कि उन्हें इस बाबत अन्य स्त्रोतों से भी शिकायतें मिली हैं, लेकिन वह चाहते थे कि आर. बी. शादीलाल इस बैठक में इस प्रस्ताव पर जोर न दें। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि वह शादीलाल के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए इस दिशा में सुधार करने का प्रयास करेंगे। सर शादीलाल ने इस पर अपना प्रस्ताव वापस ले लिया।

सिंडीकेट की बैठक समाप्त होने पर जनाब जे. सी. गोडले (*डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन*) मुझे एक ओर ले गये और मुझसे पूछा कि गवर्नमेन्ट कॉलेज का सारा युरोपीय स्टाफ मेरे खिलाफ क्यों है। अपने अधिकारी के इस हमदर्दी भरे सवाल के जवाब में मैं सिर्फ इतना कह पाया कि आमतौर पर सभी के साथ मेरे संबंध दोस्ताना हैं और ऐसी कोई वजह नहीं है कि वे मेरे खिलाफ हों। उन्होंने बताया कि कॉलेज के सभी युरोपीय प्रोफेसरों ने उन छहों प्रस्तावों में मेरे खिलाफ वोट दिया था। उनकी बातों से मुझे यह भी पता लगा कि वह पूरी तरह से प्रोफेसर मोउत जोन्स का पक्ष लेने के लिए बुरी तरह से कॉलेज स्टाफ के खिलाफ हैं। मैं यह जानकर हैरत में पड़ गया। उन्होंने कहा कि ऊंची कक्षाओं के परीक्षा कार्य में मुझे भी

शामिल करना उचित होता, क्योंकि मैं भी उन कक्षाओं को प्रोफेसर जोन्स के साथ पढ़ा रहा था। मैंने जनाब गोडले को उनकी हमदर्दी और समर्थन के लिए धन्यवाद दिया और चला आया। मेरे विदा लेने से पहले जनाब गोडले ने मुझे बताया कि शादीलाल के छहों प्रस्तावों में उन्होंने मुझे वोट दिया था।

कौन है बेहतर रसायनशास्त्री ?

अगले दिन जब मैं दिन भर का काम-काज खत्म करके कॉलेज से जाने हो वाला था तो मेरे और प्रोफेसर मोउत जोन्स के बीच एक दिलचस्प बातचीत हुई। वह मुझे अपने दफ्तर के कमरे में ले गये और मुझे बैठने के लिए एक कुर्सी दी, जबकि वह खुद मेज़ के एक कोने पर टिक कर खड़े हो गये। फिर उन्होंने मुझसे एक बेहद असाधारण सवाल पूछा (इस वक्त प्रोफेसर जोन्स मुस्करा रहे थे)।

मोउत जोन्स : राय साहब, क्या आप बता सकते हैं कि कौन बेहतर रसायनशास्त्री है – मैं या आप?

रुचि राम : क्यों? यह सवाल कैसे उठा?

जोन्स : डिग्री कक्षाओं के परीक्षक के लिए आपने खुद अपना नाम प्रस्तावित किया, जबकि *बोर्ड ऑफ स्टडीज़* ने मुझे इस कार्य के लिए चुना है।

रुचि राम : जनाब जोन्स, सबसे पहले तो मैं आपको यह बता दूं कि आपका यह सोचना गलत है कि मैंने परीक्षक के लिए खुद अपना नाम प्रस्तावित किया। सच तो यह है कि मैंने जनाब शादी लाल से अपना नाम प्रस्तावित करने के लिए कहा था। क्योंकि मेरा विश्वास था कि

मेरा नाम गलती से कट गया है।

जोन्स : ओह! मुझे नहीं पता था कि आपने उनसे अपना नाम प्रस्तावित करवाया था, जबकि *बोर्ड ऑफ स्टडीज़* ने मुझे पहले ही इस काम के लिए चुन लिया था।

रुचि राम : हां, ऐसा ही था।

जोन्स : इसके मतलब कि आप निश्चित रूप से खुद को मुझसे बेहतर रसायनशास्त्री मानते हैं। जनाब गोडले क्यों आपसे इतना स्नेह रखते हैं? क्या माजरा है?

रुचि राम : मुझे नहीं पता। मुझे यह भी नहीं पता कि आप कितना रसायन जानते हैं और आपके पास ऐसा कोई जरिया नहीं कि आप जान सकें कि मैं इसे कितना जानता हूं। मुझे यह भी नहीं पता कि डी. पी. आई. साहब खासतौर से मेरे प्रति स्नेह रखते हैं। बाकी बातें आप उनसे सीधे ही पूछ लीजिए।

जोन्स : लेकिन आप यह निश्चित रूप से जानते हैं कि मैं एम. ए. की कक्षाओं में रसायन पढ़ाता हूं, जबकि आपका काम बी.ए. और बी.एस-सी. की कक्षाओं तक ही सीमित हैं।

उन्होंने मुझे यह बताकर हैरत में डाल दिया कि उन्होंने मेरे और जनाब गोडले के बीच हुई सारी बातचीत सुन रखी है। वह सिडिंकेट के कमरे और उस बड़े कमरे के पर्दे के पीछे थे, जहां उन दिनों सीनेट की बैठकें हुआ करती थीं।

रुचि राम : आप एम. ए. की कक्षाओं का सारा अध्यापन कार्य खुद करने के बेहद इच्छुक थे, इसलिए मैंने इस ओर ध्यान नहीं दिया। अन्य विषयों में युवा सहायक प्रोफेसर एम. ए. की कक्षाओं में पढ़ाते हैं, जबकि मैं प्रांतीय सेवा का पूर्ण प्रोफेसर हूं और मुझे चौथाई शताब्दी का अध्यापन अनुभव भी है। प्रांतीय सेवा का मतलब है *इंडियन एजुकेशनल सर्विस* को प्रांतीय सेवा प्रदान करना।

जोन्स : वजह चाहे जो भी हो, पर आज सच यह है कि मैं एम. ए. की कक्षाओं में पढ़ाता हूं, जबकि आप नहीं पढ़ाते।

रुचि राम : जनाब जोन्स, आप यहां सिर्फ पिछले छह-सात सालों से हैं। क्या आप जानते हैं कि मैंने लगभग सात सालों तक एम.ए. की कक्षाओं में भौतिकी और रसायन दोनों ही विषय अकेले पढ़ाये हैं।

जोन्स : यह कब की बात है?

रुचि राम : मुझे पहली बार एम. ए. की कक्षा में पढ़ाये 20 साल से ज्यादा हो गया होगा। उसके बाद मैंने कई बार एम. ए. की कक्षाओं में भौतिकी या रसायन पढ़ाया है। हर बार लगभग एक साल तक पढ़ाया होगा। इस तरह कुल-मिलाकर लगभग सात साल जरूर हो गये होंगे।

जोन्स : (कुछ गुस्से से) क्या कहा आपने लगभग 20 साल?

रुचि राम : हां, जनाब जोन्स, उस समय आप बहुत छोटे रहे होंगे ।

जोन्स (गुस्से में आपा खोते हुए) : क्या कहा आपने? जरा फिर से कहिए।

रुचि राम : जनाब जोन्स, हमें कॉलेज के भीतर इस तरह बातें नहीं करनी चाहिए। कॉलेज की सीमा के बाहर मैं इस मसले पर आपसे चर्चा करने के लिए तैयार हूं।

जोन्स (गुस्से से) : मैं यह जानना चाहता हूं कि आपने एम. ए. की कक्षा में कब पढ़ाया?

रुचि राम : मैं आपको बता चुका हूं जनाब जोन्स कि मैंने पहले-पहल कोई 20 साल पहले एम. ए. की कक्षा में रसायन पढ़ाया था। एकदम सही कहें तो मैंने सन् 1887 और 1888 में एम. ए. की कक्षा में रसायन पढ़ाया था।

जोन्स (गुस्से में बिफरते हुए) : नेह! ओह!

रुचि राम : हमें इस मसले पर आगे बात नहीं करनी चाहिए।

जोन्स : नहीं... नहीं.. यह तो बड़ा दिलचस्प मामला है । क्या कहा आपने, उस समय मैं बहुत छोटा रहा हूंगा?

रुचि राम : जनाब जोन्स, उस समय आप जरूर घुटनों के बल चलते रहे होंगे।

जोन्स (जोर से) : इसके मतलब आप निश्चित रूप से एक महान रसायनशास्त्री हैं?

रुचि राम : मैं नहीं जानता, मैंने ऐसा तो नहीं कहा जनाब जोन्स। स्टाफ के दो सदस्यों का कॉलेज के भीतर इस तरह बातें करना शोभा नहीं देता।

जोन्स : लेकिन आप मेरे इस सीधे सवाल का जवाब जरूर दीजिये – हम दोनों में कौन बड़ा रसायनशास्त्री है?

रुचि राम : मैं पहले ही कह चुका हूं, मैं नहीं जानता। मुझे कभी आपके रसायन-ज्ञान को परखने का मौका नहीं मिला और जहां तक मैं समझता हूं आपको भी मेरे रसायन-ज्ञान को परखने का कोई मौका नहीं मिला है। लेकिन अगर आप चाहते ही हैं तो इसे जानने का एक आसान तरीका है। आप विषय का कोई एक हिस्सा चुनकर मुझे बता दीजिए और मैं उसी हिस्से को आपके द्वारा बतायी किसी भी कक्षा में 15 दिनों तक पढ़ाऊंगा। आप भी कक्षा में मौजूद रहिए। इसी तरह मैं भी एक विषय बताऊंगा और आप उसे मेरे द्वारा बतायी कक्षा में 15 दिनों तक पढ़ाइये। मैं भी कक्षा में मौजूद रहूंगा। पंद्रह दिनों बाद

> हम दोनों एक-दूसरे के अध्ययन की आलोचना करेंगे और इस तरह हम जान जायेंगे कि वास्तविकता में हम कितना जानते हैं और कितना नहीं जानते।

एक दूसरे की क्षमताओं को परखने का मेरा तरीका सुनकर जनाब जोन्स कुछ घबरा गये । इसके बाद बिना किसी खास नतीजे के थोड़ी देर और बातचीत हुई। फिर उन्होंने मुझे अपने विश्वास में लिया और बताया कि *बोर्ड ऑफ स्टडीज़* ने मुझे इसलिए परीक्षक नहीं बनाया, क्योंकि उनकी निगाह में मैं एक दयालु परीक्षक था । इस पर मैंने कहा कि आपने यह दिलचस्प बात सिंडिकेट की बैठक में क्यों नहीं बताई। इससे मुझे वहीं पता चल जाता कि परीक्षकों की सूची में से मेरा नाम क्यों काटा गया और मेरी जगह आपको क्यों चुना गया। मैंने यह भी कहा कि अगर मैं दयालु परीक्षक हूं तो सभी के लिए हूं, सिर्फ अपने छात्रों के लिए नहीं हूं। मैं हिंदुस्तानी था इसलिए मुझ तक ज्यादा लोगों की पहुंच थी, फिर भी कोई मेरे पास किसी खास तरफदारी के लिए आने का साहस नहीं करता था। दूसरी ओर यह एक जानी-पहचानी बात थी कि वह (जनाब जोन्स) प्रायोगिक परीक्षा से पहले छात्रावास में जाकर अपने छात्रों को पूछे जाने वाले सवालों का संकेत दे आते थे। मैंने जनाब जोन्स को समझाया कि सिर्फ एक अंक से फेल होने वाले हर छात्र को एक अंक ग्रेस मार्क में देना मेरी आदत है। यानी अगर पास मार्क 25 है तो कुल 24 अंक पाने वाले सभी छात्रों को मेरी ओर से एक अंक ग्रेस मार्क का मिलता था। यह मैं सभी छात्रों के साथ सालों से करता आ रहा था। इसमें कोई भेदभाव या पक्षपात नहीं था। मैंने उन्हें बताया कि दूसरी ओर मैं एक ऐसा मामला जानता हूं जब वह (जनाब जोन्स) और लाहौर के एक अन्य कॉलेज के प्रोफेसर साथ-साथ परीक्षक थे और एक

छात्र को सिर्फ 16 अंक मिले थे, जबकि 17 अंक पाने से वह पास हो सकता था। जनाब जोन्स उसे एक अंक और देकर पास करना नहीं चाहते थे, जबकि उनके साथी की राय दूसरी थी। मैंने जनाब जोन्स से कहा कि छात्रों की काबिलियत को तौलने के लिए हमारे पास कोई बारीक रासायनिक तराजू नहीं है। अगर मैं एक दयालु परीक्षक हूं तो वह (जनाब जोन्स) एक कठोर परीक्षक हैं।

रुचि राम : मुझे बड़ा दु:ख है जनाब जोन्स कि आपने उस दिन सिंडिकेट में यह नहीं बताया कि मेरा नाम डिग्री परीक्षा में से क्यों काट दिया गया। अगर आपने बताया होता तो मैं सिंडिकेट से कहता कि मेरी जगह आपका नाम काटा जाय। मैं उन्हें उस बेचारे छात्र का मामला बताता, जो 16 अंक पाया था और 17 अंक पाने से पास हो जाता। आपने और आपके साथी ने उस बेचारे के भाग्य पर 10-15 मिनट तक चर्चा की, लेकिन इस बात पर एकमत नहीं हो पाये कि उसे पास किया जाये या नहीं। तब आपकी सलाह पर सिक्का उछालकर उसके भाग्य का फैसला करने का निर्णय लिया गया। उस बेचारे का भाग्य अच्छा था कि सिक्के ने उसके पक्ष में निर्णय दिया और वह बी. ए. पास हो गया। मैं वहीं जेब से सिक्का निकालकर उछालता और सिंडिकेट को बताता कि विश्वविद्यालय में इस तरह छात्रों को बी. ए. पास करवाया जा रहा है।

यह सुनते ही जनाब जोन्स डर गये और तुरंत नरम पड़ गये। फिर उन्होंने मुझसे बेहद कोमल शब्दों में कहा कि हम दोनों दोस्त थे और हमने

सालों तक साथ-साथ काम किया है। उन्होंने कहा कि सिंडिकेट की अगली बैठक में वह खुद किसी एक डिग्री परीक्षा के लिए परीक्षक के रूप में मेरा नाम प्रस्तावित करेंगे, ताकि मैं पिछले अनेक सालों की तरह काम कर सकूं। इसके बाद हमने दोस्तों की तरह एक दूसरे से विदा ली और बाद में यथासमय मुझे बी. ए. या बी. एस-सी. की परीक्षा के लिए फिर से परीक्षक नियुक्त किया गया। इसके बाद मेरी यह राय बन गयी कि अब हम दोनों के बीच कोई गिला-शिकवा नहीं है। लेकिन आश्चर्य होता है कि असलियत इससे कोसों दूर थी। हालांकि, ऊपरी तौर पर हमारे आपसी संबंध बहुत मधुर बने रहे।

मुझे अंधेरे में रखा गया

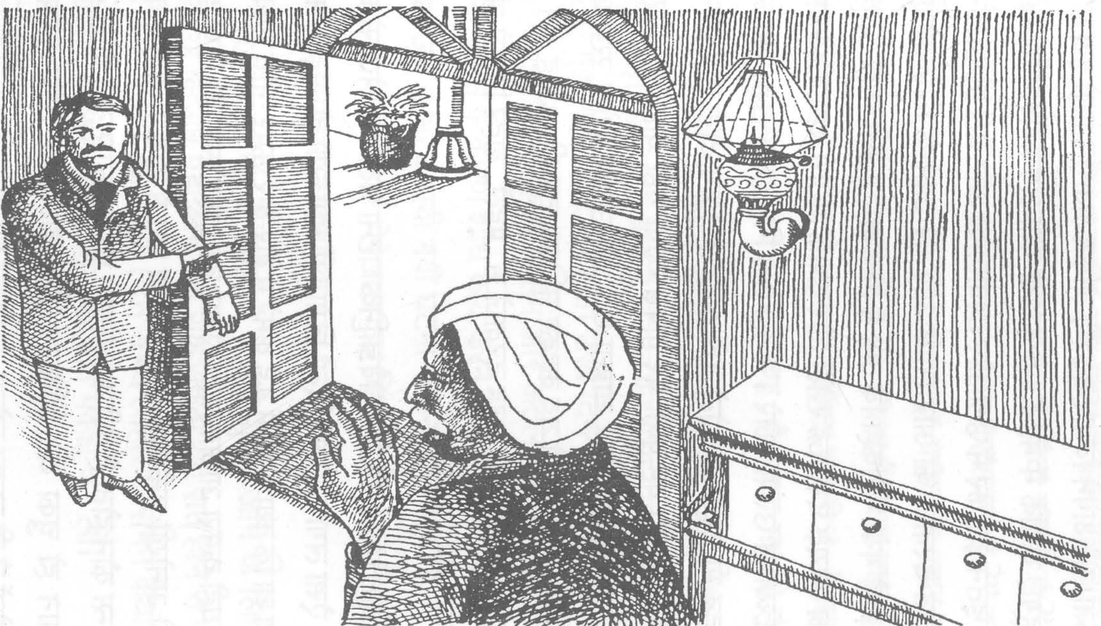
कुछ समय बाद जनाब जोन्स एक ऊंचे पद पर इंग्लैंड चले गये। इस तरह कॉलेज के रसायन विभाग में एक पद खाली हो गया। अगर आम हालात होते तो मुझे अपने आप ही जनाब जोन्स का पद मिल जाता और मेरे पद पर किसी और को नियुक्त किया जाता। लेकिन जो हालात थे, उनमें ऐसी आशा रखना व्यर्थ था। कारण मैं विस्तार से पहले ही बता चुका हूं। सर चार्ल्स एचिसन की अध्यक्षता में गठित लोक सेवा आयोग (1886) की सिफारिशों के तहत सभी ऊंचे पदों को दो अलग-अलग वर्गों में बांट दिया गया था–*इम्पीरियल* (या *इंडियन*) और *प्रोविंशियल सर्विस* (प्रांतीय सेवा)। सरकार ने इन दोनों सेवाओं को समानान्तर सेवा के रूप में घोषित किया था, लेकिन व्यवहार में दोनों के बीच एक बड़ी खाई थी। इन दोनों वर्गों के बीच केवल वेतन में ही अंतर नहीं था, बल्कि सेवा की दशाओं और इससे जुड़े अधिकारों व सुविधाओं में भी भारी अंतर था। प्रांतीय सेवा में एक हिंदुस्तानी सबसे ऊपर पहुंचने पर भी ज्यादा से ज्यादा 700 रुपये माहवार तनख्वाह पा सकता था, जबकि आमतौर पर युरोपीयों को सीधे *इंडियन एजुकेशनल सर्विस* में नियुक्त किया जाता था । जनाब ओमन के

सेवानिवृत्त होने पर वरिष्ठ प्रोफेसर का पद *इंडियन एजुकेशनल सर्विस* में शामिल कर दिया गया और प्रांतीय सेवा के तहत एक अन्य प्रोफेसर का पद बनाकर मुझे नियुक्त कर दिया गया। यह एक जाना-पहचाना तथ्य था कि नियमानुसार *इंडियन एजुकेशनल सर्विस* में हिंदुस्तानियों की नियुक्ति पर कोई प्रतिबंध नहीं था, लेकिन व्यावहारिक रूप से हिंदुस्तानियों के लिए इस प्रतिष्ठित सेवा में प्रवेश पाना बेहद मुश्किल था। इसीलिए इसे आमतौर पर युरोपीयों के लिए आरक्षित सेवा माना जाता था। लेकिन अपना पिछला अनुभव देखते हुए मुझे लगता था कि मेरे मामले को अपवाद की तरह लिया जाएगा और इस पद पर मेरी स्थायी नियुक्ति हो जाएगी। अप्रैल 1918 में मेरे सेवानिवृत्त होने के समय भी पूरे देश में *इंडियन एजुकेशनल सर्विस* के तहत सिर्फ तीन हिंदुस्तानी ही कार्यरत थे। लेकिन यह निर्णय पहले ही ले लिया गया था कि जब तक स्थायी नियुक्ति नहीं होती, मुझे रसायन विभाग के प्रोफेसर इन्चार्ज का पद संभालना होगा और मेरी जगह काम करने के लिए किसी और को चुना जाएगा। इस विश्वास को पक्का करने के लिए जनाब जोन्स ने काफी कोशिशें की, हालांकि उनके लिए ऐसा करना जरूरी नहीं था। वह अकसर मुझे बताते कि उन्होंने अपनी कक्षा में कितना पढ़ा दिया है और कितना बाकी है; किन विषयों में उनकी कक्षा कमजोर है और कौन–से विषय छोड़ दिये गये हैं; किन विषयों को पूरी तरह छोड़ दिया गया है और किन विषयों में कुछ काम बाकी है। वह यह सब मुझे इसलिए बताते कि मैं उनका काम समझ सकूं। मुझे यहां यह लिखते हुए बड़ा दु:ख हो रहा है कि यह सब उनका दिखावा था ताकि मैं गुमराह रहूं। वह एक ओर अपना बहुत समय मुझे छोटी-छोटी बातें समझाने में बिताते, यहां तक कि रसायनों के स्टॉक वगैरह की भी जानकारी देते, जबकि ये बातें सिर्फ प्रयोगशाला के इन्चार्ज को ही जाननी होती हैं। लेकिन दूसरी ओर उन्होंने मेरे खिलाफ

एक गोपनीय रिपोर्ट विभाग के अध्यक्ष को भेज दी और कहा कि प्रांत में अन्य कोई व्यक्ति इस पद के उपयुक्त नहीं है, इसलिए पंजाब के बाहर से किसी को बुलाया जाये। जनाब जोन्स के लाहौर से जाने से चंद दिनों पहले मुझे मात्र एक संयोग से पता चला कि जर्मन विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की परीक्षा पास किसी जनाब को कार्यकारी पद के लिए चुन लिया गया है और वह एक-दो दिन में लाहौर आने वाले हैं। उस समय वह जनाब हिंदुस्तानी विश्वविद्यालय की एम. ए. परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। इस खबर से मुझे जो धक्का लगा उसकी कल्पना करना भी मुश्किल है। इसकी एक वजह यह थी कि यह खबर उन सब धारणाओं के खिलाफ थी, जो जनाब जोन्स के पद पर काम कर चुके व्यक्तियों के लिए मेरे मन में बनी थीं। उस समय मेरे दिमाग में जो हलचल मची उसे मैं कागज़ पर नहीं उतार सकता, लेकिन यह बात तय है कि इसने मेरी धारणाओं को काफी हद तक बदल डाला। जनाब जोन्स के लाहौर से विदा लेने के एक-दो दिन पहले हमारे संबंध बहुत तनावपूर्ण हो गये। हर किसी को यह विश्वास था कि चाहे कुछ हो जाये मैं जनाब जोन्स के सम्मान में आयोजित किये जाने वाले विदाई समारोह में शिरकत नहीं करूंगा। पर एक बार फिर मैं बेवकूफ बन गया। प्रोफेसर जी.ए.वाथेन मेरे पास आये और समारोह में शामिल होने के लिए प्रार्थना करने लगे। नये व्यक्ति की नियुक्ति के बारे में उन्होंने मुझे एक नयी कहानी सुनायी, जिसके अनुसार नये युवा रसायनशास्त्री को यहां लाकर मेरे ऊपर बैठाने में जनाब जोन्स ने कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभायी थी। उन्होंने मुझे बताया कि छात्रों के विदाई भाषण के जवाब में जनाब जोन्स ने जो भाषण तैयार किया है, उसे उन्होंने पढ़ रखा है और उसमें जनाब जोन्स ने मेरे बारे में काफी कुछ कहा है। उनका मानना था कि जो कुछ मेरे साथ हुआ अगर उसमें जनाब जोन्स का जरा भी हाथ होता तो वह यह

सब कुछ नहीं कहते । काफी कठिनाई के बाद वह मुझसे यह वादा लेने में कामयाब हो गये कि मैं विदाई समारोह में शिरकत करूंगा। जैसा प्रोफेसर वाथेन ने कहा था, जनाब जोन्स ने अपने भाषण में मेरी तारीफ की, लेकिन बाद में मुझे पता लगा कि उन्होंने यह तारीफ एक अलग पर्ची पर लिख रखी थी और जब उन्होंने अपना भाषण कॉलेज की मैगज़ीन में छपने के लिए प्रिंसिपल साहब को सौंपा तो उसमें से वह पर्ची अलग कर ली । जब मैंने यह बात प्रोफेसर वाथेन को बतायी तो उन्होंने माना कि मेरे साथ चालबाजी की गयी थी और फिर उन्होंने कुछ घमंड से कहा कि जनाब जोन्स ने खुद को मुझसे ज्यादा चालाक साबित किया है। मैं कहना चाहूंगा कि जनाब जोन्स निश्चित रूप से मुझसे ज्यादा चालाक थे, लेकिन मेरे साथ अन्याय करके उन्होंने मेरी तुलना में कहीं ज्यादा खोया।

जनाब जोन्स के विदा लेने के एक-दो दिन बाद मैं प्रिंसिपल कर्नल स्टीफेंसन के पास गया और उनसे अपने साथ हुए अन्याय व मेरे खिलाफ दी गई जनाब जोन्स की झूठी रिपोर्ट के बाबत शिकायत की। मैंने उन्हें याद दिलाया कि डिग्री परीक्षाओं में परीक्षक की नियुक्ति को लेकर सिंडिकेट की बैठक में जो घटना हुई थी, उसके कारण उनके मन में मेरे प्रति दुर्भावना थी। मैंने उनसे ये बातें कुछ तीखे अंदाज में कहीं और एक से ज्यादा बार कहा: ऐसे नहीं चलेगा । इस पर कर्नल स्टीफेंसन गुस्से से घूमे और एक अंग्रेज के खिलाफ बोलने के लिए मुझे डांटने-फटकारने लगे। उन्होंने कहा कि मेरी यह कहने की हिम्मत कैसे पड़ी कि एक अंग्रेज ने मेरे खिलाफ सिर्फ इसलिए रिपोर्ट दी क्योंकि उसके मन में मेरे प्रति दुर्भावना थी। फिर उन्होंने गुस्से से पूछा "क्या नहीं चलेगा ?, क्या नहीं चलेगा ?" मैंने कहा कि अभी तक मैं यह समझता था कि मैं विभाग का एक वरिष्ठ अधिकारी हूं, लेकिन अब मैं समझ गया कि ऐसा नहीं है। मैं 27 या 28 साल नौकरी कर चुका



“अब मैं फिर यह गलती नहीं करुंगा कि कॉलेज का अध्यक्ष दरवाजा खोले.....”

हूं और अब मैं बिना पेंशन लिए विभाग को गुडबाई कहकर कॉलेज से बाहर नहीं जा सकता। मेरे अपने विचार दृढ़ हैं, लेकिन अब मैं आपसे इस बाबत कुछ नहीं कहूंगा, क्योंकि मैं मेहनत से कमायी गयी अपनी पेंशन को खोना नहीं चाहता। इतना कहकर मैं उठा और दरवाजे की ओर चल दिया। कर्नल स्टीफेंसन तुरंत दरवाजे की ओर लपके और मेरे जाने के लिए दरवाजा खोलकर खड़े हो गये। मैंने कहा कि अब मैं फिर यह गलती नहीं करूंगा कि कॉलेज का अध्यक्ष दरवाजा खोले और उसके अधीन काम करने वाला सबसे कनिष्ठ व्यक्ति उससे गुजरे। मैं वहां 2-3 मिनट तक खड़ा रहा और प्रिंसिपल साहब भी दरवाजा खोले वहीं खड़े रहे। हम दोनों नहीं जानते थे कि क्या किया जाये। वह कुर्सी पर वापस जाना नहीं चाहते थे और मैं उस दरवाजे से निकलना नहीं चाहता था, जो उन्होंने खोल रखा था। आखिर में कर्नल स्टीफेंसन ने यह कहकर मुश्किल दूर की: "ओह ! मैं भी घर जा रहा हूं।" यह कहते हुए वह दरवाजे से पहले बाहर निकले और अपने बंगले की ओर चल दिये।

इसके बाद एक अनोखी मनोवैज्ञानिक घटना घटी। कॉलेज से घर आने पर मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे दिलो-दिमाग में आग लगी हो। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूं। मैं बड़े कमरे में बार-बार ऊपर -नीचे चक्कर लगाने लगा। यही कमरा आजकल हमारे घर का ड्राइंग रूम है। मैं पीड़ा और व्यथा की अनोखी मनोदशा से गुज़र रहा था। मैं खुद से सवाल कर रहा था, "जोन्स कौन होता है मेरी काबिलियत पर फैसला सुनाने वाला?" लेकिन नुकसान हो चुका था। प्रिंसिपल और *डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन* दोनों ने ही जनाब जोन्स की रिपोर्ट पर बेहिचक अपनी मंजूरी की मोहर लगा दी थी। मुझे यह सोच-सोच कर बड़ी पीड़ा हो रही थी कि एक नौजवान की रिपोर्ट पर मेरी जिंदगी भर की सेवा को दरकिनार कर

दिया गया, सिर्फ इसलिए कि वह नौजवान अंग्रेज था। कोई आधा घंटे तक मेरा दिमाग इसी गहरी उलझन और पीड़ा में फंसा रहा और मैं कमरे में बार-बार नीचे चक्कर काटता रहा। "क्या मैं जिंदा मछली हूं?" "क्या मैं मुर्दा मछली हूं? " "क्या मैं बहाव में ऊपर तैर सकता हूं?" क्या मैं बहाव के खिलाफ तैर सकता हूं?" "क्या मुझे बहाव के साथ नीचे तैरना चाहिए?" "क्या मैं मुर्दा मछली हूं?" "क्या मैं जिंदा मछली हूं?" फिर चंद मिनटों बाद मैंने खुद से कहा : "मैं जिंदा मछली हूं, मैं बहाव में ऊपर तैर सकता हूं, मैं बहाव में ऊपर तैरूंगा, मैं जिंदा मछली हूं ।"

इन शब्दों को कहने से मुझे गहरा संतोष मिला और बड़ी राहत महसूस हुई। कुछ समय बाद मैं बिस्तर पर चला गया और लगभग एक घंटे के लिए मुझे गहरी नींद आ गयी। उसी दिन दोपहर में मैंने युरोप जाकर कुछ समय शोध करने का अंतिम और अटल फैसला लिया। अभी तक मैं अपनी चाहत के कारण शोध कार्य करने को इच्छुक था। तमाम कठिनाइयों के बावजूद अभी बताायी गयी घटना से इन कठिनाइयों के बारे में अंदाज लगाया जा सकता है।* मेरे पास कुछ विषय थे जिन पर मैं युरोप से लौटने के बाद काम करना चाहता था ।

जनाब जोन्स के कारनामे ने मुझे युरोप जाने के लिए इस कदर उकसाया कि अब मुझे कोई नहीं रोक सकता था। रात होने से पहले ही मैंने एक जर्मन कैथोलिक पादरी (उस समय लाहौर के रोमन कैथोलिक चर्च में कार्यरत) से जर्मन भाषा पढ़ने की बात पक्की कर ली।

---

* मैं इन कठिनाइयों का उल्लेख करने की पीड़ा से बचना चाहता हूं। उन दिनों हिंदुस्तान में विज्ञान के क्षेत्र में बहुत कम शोध होता था। खासतौर से हिंदुस्तानियों को तो इसमें बड़ी मुश्किलें पेश आती थीं। पंजाब में ये मुश्किलें दस गुनी ज्यादा थीं ।

रेडियो धर्मिता में मेरी ि लचस्पी

मैं जिस विषय पर खासतौर से अध्ययन करना चाहता था वह था रेडियो धर्मिता। पिछले कुछ सालों में किताबों और एक-दो पत्रिकाओं की मदद से मैंने इस विषय के सैद्धांतिक पक्ष की अच्छी जानकारी हासिल कर ली थी। मैं इस विषय पर जल्दी से जल्दी काम शुरू करना चाहता था, इसलिए मैंने प्रोफेसर स्मिथेल्स को किसी जर्मन विश्वविद्यालय में आवश्यक बंदोबस्त करने के लिए लिख दिया। मैं ऐसा विश्वविद्यालय चाहता था, जहां इस विषय का अध्ययन किया जा सके और किसी सुयोग्य प्रोफेसर के साथ इस विषय पर अनुसंधान भी किया जा सके।

लाहौर छोड़ने से तुरंत पहले मेरी दिलचस्पी खासतौर से लेड और बिस्मथ का सटीक परमाणु भार ज्ञात करने में पैदा हो गयी थी। इन दोनों में मेरी दिलचस्पी बढ़ने की एक खास वजह थी। जब मैं विभिन्न प्रकार के लवणों के घुलनशीलता संबंधी नियमों पर व्यापक अनुसंधान कर रहा था तो मुझे पता लगा कि अनेक दक्ष अनुसंधानकर्त्ताओं ने इनका परमाणु भार अलग-अलग निर्धारित किया है। यह अंतर प्रयोग की संभावित त्रुटियों से उत्पन्न होने वाले अंतर से कहीं ज्यादा था। काफी सोचने-विचारने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि कोई बाहरी कारक है, जो इन दोनों तत्त्वों के परमाणु भार के सही निर्धारण में बाधा पहुंचा रहा है। संभवतया इन दोनों ही मामलों में कोई अन्य धातु बहुत सूक्ष्म, लेकिन विभिन्न मात्राओं में शुद्ध कहे जाने वाले लेड और बिस्मथ के साथ मिल जाती है और यही अज्ञात धातु (या धातुएं) विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त किये गये परमाणु भारों में अंतर के लिए जिम्मेदार है।

प्रोफेसर स्मिथेल्स ने मुझे डॉ. कासिमिर फैजन्स [19] के पास जाने

को कहा और अंत में मैंने उन्हीं की प्रयोगशाला में अनुसंधान के लिए डेरा जमाया। वह भी उसी बाहरी कारक के अस्तित्व की खोज कर रहे थे, जिसका मैंने अभी उल्लेख किया है।

उन दिनों सरकार से पासपोर्ट लेना जरूरी नहीं था। विदेश जाने से पहले कभी-कभी लोग पहचान का प्रमाणपत्र जारी करवा लेते थे। इसलिए मैंने लाहौर के डिप्टी-कमिशनर को पहचान-प्रमाणपत्र जारी करने के लिए अर्जी दे दी, लेकिन जब हिंदुस्तान से जाने का समय आया तो पता लगा कि प्रमाणपत्र तैयार नहीं था। तब दोस्तों ने भरोसा दिलाया कि पहचान-प्रमाणपत्र रहना अच्छा होता है, लेकिन इसका होना जरूरी नहीं है। हो सकता है पूरे विदेश प्रवास के दौरान इसकी जरूरत न पड़े, इसलिए तुम बेहिचक जाओ । फिर संयोग से ऐसा हुआ कि बंबई में मैं अपने पुराने दोस्त सेठ भगवान दास से मिलने गया। सेठ भगवान दास युरोप और चीन में काफी यात्राएं कर चुके थे। उनकी सलाह पर मैंने लाहौर के डिप्टी-कमिशनर को तार भेजकर हीडेलबर्ग के डाकघर में पहचान-प्रमाणपत्र भेजने के लिए कहा। बाद में उनकी सलाह बड़ी बहुमूल्य साबित हुई। कारण कि जब मैं जर्मनी में था तो पहला विश्व युद्ध [20] छिड़ गया और संभवतया इसके बगैर मैं वहां से बाहर नहीं निकल पाता।

सौभाग्य से स्टीमर पर मेरी मुलाकात एक 'टाइरोल जर्मन' से हो गयी, जो हिंदुस्तान में 18 साल बिताने के बाद घर जा रहा था। मैं उससे बराबर जर्मन भाषा के पाठ पढ़ता रहा और जर्मन में ही उससे थोड़ी बहुत बातचीत भी करता रहा। वह स्टीमर आस्ट्रेलियन लॉयड कंपनी का था। मैं ट्रीस्टी पहुंच गया। रास्ते में अकसर मुझे स्टीमर के चालक से भी बातचीत करने का मौका मिला। वह इटैलियन था, लेकिन जर्मन भाषा अच्छी तरह जानता था। इन लोगों से बातचीत करने पर ही मुझे पता लगा कि जर्मन

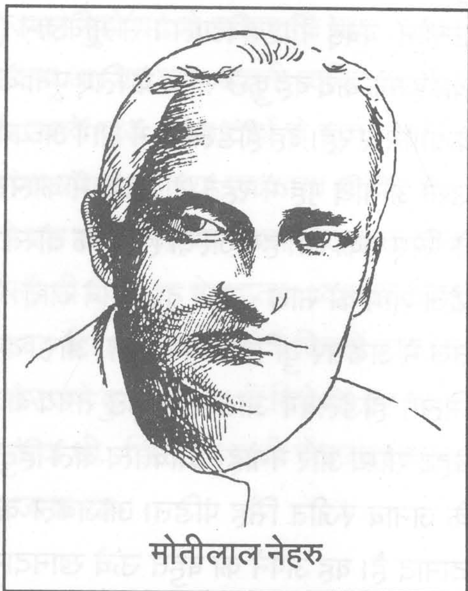
भाषा बोलने में मैं कितनी गलतियां करता था। लाहौर में जो मेरे पादरी अध्यापक थे, वह एक लंबे अर्से से घर से दूर थे, इसलिए उनका उच्चारण जर्मन कम, अंग्रेजी जैसा ज्यादा था। इसलिए जब मैंने बंबई से चलने वाले स्टीमर पर पहले-पहल जर्मन भाषा सुनी तो मैं उसका एक शब्द भी नहीं समझ पाया। सौभाग्य से मेरे साथी एक लाहौरी सज्जन थे, जो कारोबार के लिए जर्मनी होते हुए इंग्लैंड जा रहे थे। उन्होंने कई तरीकों से मेरी बड़ी मदद की। वह अनारकली में कोई एजेन्सी चलाते थे। वह एक मेहनती और दिलचस्प नौजवान थे। उनसे दोस्ती करके मुझे बड़ा आनंद मिला। मुझे कुछ धुंधला-सा याद आता है कि उनका नाम लाला शंकर दास था। अब पक्की तौर पर कुछ कहना मुश्किल है। हिंदुस्तान वापस आने पर मैं उनसे लाहौर में एक या दो बार मिला। स्टीमर पर मैंने वायरलैस आपरेटर से भी दोस्ती गांठ ली। मैं फुर्सत निकालकर उसके बगल में बैठ जाता और उससे उपकरण की कार्यप्रणाली के बारे में सीखता रहता। वह उपकरण क्रिस्टल वर्ग का था। एक बार उसने मुझे गर्व से बताया कि वह 2,000 मील की दूरी तक संदेश भेज सकता था। वह बहुत बातूनी व्यक्ति था और उसने खूब यात्राएं कर रखी थीं। उसके पास अनेक देशों से जुड़ी बहुतेरी दिलचस्प कहानियां थीं। स्टीमर का प्रधान रसोइया एक अन्य व्यक्ति था, जिससे मैंने दोस्ती करी। वह मुझे एक से एक बढ़िया पकवान खिलाता और कभी-कभी चाय के बाद बढ़िया पेस्ट्री भी देता। वह मेरा इतना ध्यान इसलिए रखता था, क्योंकि एक बार जब वह बीमार होकर अपने केबिन में पड़ा था तो मैंने उसकी देखभाल की थी और उसे कुछ शिलिंग भी दिये थे। यह रकम 10 मार्क के उस आम चंदे के अलावा थी, जिसे हर यात्री से इकट्ठा करके जहाज के सेवकों के बीच बांटा जाता था।

हीडेलबर्ग में

लीड्स युनिवर्सिटी के प्रोफेसर स्मिथेल्स ने मेरे लिए सारा बंदोबस्त किया था। उन्होंने मुझे निर्देश दिया कि मैं हीडेलबर्ग से 25 मील दूर स्थित कार्लस्रू में डॉ. फैजन्स से मिलूं। मुझे किसी तरह पता लगा कि हीडेलबर्ग में फ्रॉ शेरेर नामक एक जर्मन महिला सारी दुनिया से आने वाले छात्रों के लिए अतिथि गृह चलाती है। वह जर्मन भाषा की पैदाइशी शिक्षक भी थी। मैंने कार्लस्रू जाने से पहले एक-दो दिन हीडेलबर्ग में रुकने का निश्चय किया। मैंने रास्ते से ही फ्रॉ शेरेर को तार कर दिया कि कोई मुझे लेने रेलवे स्टेशन आ जाये। हीडेलबर्ग स्टेशन पर मैंने देखा कि उनकी बेटी मेरा इंतजार कर रही थी। वह मुझे अपने पेन्शन ले गयी, जो सुंदर नैकर नदी के दाहिने किनारे पर स्थित पहाड़ की ढलान पर बना था। मैं सौभाग्यशाली था कि वहां मेरी मुलाकात एक ऐसे हिंदुस्तानी छात्र से हुई, जिसने बाद में मेरी बड़ी मदद की। उनका नाम डॉ. हुडलीकर था। उन्होने बंबई विश्वविद्यालय से भूविज्ञान (जियोलॉजी) में एम.ए. किया था। इसके बाद वह कुछ समय के लिए पूना के फर्गुसन कॉलेज में इसी विषय के प्रोफेसर रहे। वह हीडेलबर्ग में आगे अध्ययन के लिए आए थे। हुडलीकर उसी अतिथि गृह में रहते थे, जहां मैं कार्लस्रू जाने से पहले दो-तीन दिन के लिए रुका था। हम जल्दी ही पक्के दोस्त बन गये। हम लोग लगभग हर रोज शाम को साथ - साथ दूर घूमने जाते। जब तक मैं कार्लस्रू में रहा तब तक मैं अकसर युनिवर्सिटी देखने और वहां के कुछ मशहूर प्रोफेसरों से मिलने हीडेलबर्ग आता रहा। कुछ समय बाद यहीं मेरी मुलाकात एक अन्य बेहद सौम्य और मनोहर व्यक्तित्व वाले हिंदुस्तानी छात्र से हुई – राजकोट के जनाब रंजीत सिंह पंडित। आजकल वह पंडित मोतीलाल नेहरू का दामाद है। वह अपने को बहुत ऊंचे खानदान का बताता था और निश्चित

ही उसका व्यवहार व शिष्टाचार किसी ऊंचे खानदान के नौजवान जैसा ही था। जब मुझे यह पता लगा कि वह वेदों के महान विद्वान शंकर पांडुरंग पंडित का भतीजा है तो मेरे और उसके बीच एक खास रिश्ता बन गया, क्योंकि 28 साल पहले पंडित जी से मेरे अंतरंग संबंध थे और वह प्रार्थना समाज [21] के प्रमुख सदस्य भी थे। जब मुझे जर्मनी से अचानक जाना पड़ा तो हुडलीकर और पंडित दोनों ने ही मेरी बड़ी मदद की। मैं उनकी इस सहृदयता को कभी नहीं भूल सकूंगा। मैं इस बारे में बाद में कुछ बताऊंगा। अकसर मैं, पंडित और हुडलीकर शाम को साथ-साथ घूमने जाते। ऐसे मौकों पर अकसर मैं देखता कि पंडित के कोमल व काले घुंघराले बालों और सुंदर चेहरे के कारण नौजवान जर्मन कन्याएं उसकी ओर आकर्षित हो जातीं। कम से कम दो बार मैंने देखा कि इन कन्याओं ने उसके पास आकर माफी मांगते हुए उसके सिर के कोमल मखमली बाल छूने की इजाजत मांगी।

हीडेलबर्ग में ही मेरी मुलाकात प्रोफेसर लियोनार्ड से हुई। वह एक दिलचस्प व्यक्ति थे। वह रोज सुंदर नैकर नदी के किनारे टहलने जाते और टहलते वक्त अपना सिर इधर-उधर हिलाते रहते। हीडेलबर्ग में मैं प्रोफेसर गोल्डशमिट से मिलने गया। उन्होंने छुट्टी में भी विशेष रूप से मेरे लिए प्रयोगशाला आकर अपना गोनि-


मोतीलाल नेहरु

योमीटर दिखाने और इसकी बनावट व कार्यप्रणाली समझाने की कृपा की।

हीडेलबर्ग से मैं अपने दोस्त प्रोफेसर हुडलीकर के साथ कार्लस्रू गया। होटल में अपना सामान रखकर हम टेक्नीशे होमुले में डॉ. फैजन्स से मिलने गये। उत्प्रेरण के मशहूर विशेषज्ञ डॉ. ब्रेडिग उस समय संस्थान के निदेशक थे।

उस समय डॉ. फैजन्स की उम्र कोई 40 साल रही होगी, लेकिन उन्होंने रेडियो धर्मिता के क्षेत्र में अपनी पहचान बना ली थी। *लंदन टाइम्स* ने विज्ञान विभाग के उस समय के छह सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकों में उनका उल्लेख किया था। संस्थान पहुंचने के कुछ ही मिनटों बाद डॉ. हुडलीकर मुझसे विदा लेकर चले गये, क्योंकि उन्हें हीडेलबर्ग वापस जाने के लिए गाड़ी पकड़नी थी। लेकिन मुझे डॉ. फैजन्स के साथ बेहिचक बातचीत करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई। इसका एक कारण तो यह था कि वह नरम और खुशमिजाज व्यक्ति थे और दूसरे मेरी और उनकी रुचियां एक जैसी थीं। जरूरी औपचारिकताओं और सफर वगैरह के बारे में आम बातें करने के बाद हमारे बीच निम्न दिलचस्प बातचीत हुई।

डॉ. फैजन्स : प्रोफेसर साहनी, क्या आप लेड से जुड़ी किसी समस्या में दिलचस्पी रखते हैं?

साहनी : हां, पिछले कुछ महीनों से मैं लेड के परमाणु भार से जुड़े एक बेहद दिलचस्प सवाल पर काम कर रहा हूं।

डॉ. फैजन्स : आप इस काम में कितना आगे बढ़ चुके हैं?

साहनी : मैं धातु के एक या दो यौगिकों का शुद्धीकरण कर रहा था और मैंने लेड के परमाणु भार के सर्वश्रेष्ठ निर्धारणों

से संबंधित शोध साहित्य भी पढ़ रखा है।

मैंने उनसे यह भी बताया कि मैंने जो भी काम किया है, उसके नोट्स मेरे पास मौजूद हैं।

डॉ. फैजन्स : यह तो बहुत अच्छा है, लेकिन आपकी इस ओर दिलचस्पी कैसे पैदा हुई?

साहनी : मैं विभिन्न यौगिकों के अंशों और उनकी घुलनशीलता के बीच कुछ नियमों या संबंधों का निर्धारण कर रहा था। इस अध्ययन में परमाणु भार एक महत्त्वपूर्ण कारक था। इस कारण मेरे लिए जरूरी हो गया कि मैं हर संबंधित तत्त्व के एकदम सही परमाणु भार का पता लगाऊं। लेड के मामले में मुझे यह जानकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि दक्ष रसायनविदों द्वारा निर्धारित इसके परमाणु भारों के बीच काफी अंतर था। इसलिए मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि ये अंतर मात्र प्रायोगिक गलतियों के कारण नहीं हो सकते। संभवतया इसकी वजह लेड के लवण में कुछ अन्य यौगिकों की सूक्ष्म, लेकिन विभिन्न मात्राओं की मौजूदगी है।

डॉ. फैजन्स : यह तो सचमुच बहुत दिलचस्प है। मुझे अफसोस है कि आप और आगे नहीं बढ़ सके। वैसे मुझे आपके यहां आने की उम्मीद थी।

यह कहते हुए उन्होंने अपनी मेज़ की दराज़ से एक छोटा शोध-निबंध बाहर निकाला। रेडियम-डी पर प्रकाशित यह शोध-निबंध अभी हाल

में ही छपा था। फिर उन्होंने मुझे बताया कि इस सवाल पर उन्होंने भी लगभग इसी दिशा में सोचा था। दरअसल रेडियम-डी वह पदार्थ है, जो लेड धातु के साथ विभिन्न मात्राओं में मिलकर गड़बड़ी पैदा कर रहा है। इसने रसायनशास्त्रियों की पूरी एक पीढ़ी को परेशान कर रखा है, जिसमें से दो व्यक्ति इसी प्रयोगशाला में बैठे साथ-साथ चर्चा कर रहे हैं।

इसके बाद डॉ. फैजन्स ने अगला सवाल बिस्मथ के संबंध में किया। मैंने उन्हें बताया कि मैं बिस्मथ के परमाणु भार के संबंध में भी ऐसी ही समस्या पर विचार कर चुका हूं, लेकिन मैंने इस दिशा में कोई प्रायोगिक कार्य नहीं किया है। डॉ. फैजन्स यह जानकर बड़ी हैरत में पड़ गये कि मैंने उन दो समस्याओं पर विचार कर रखा है, जिनमें से एक वह खुद हाल में ही सुलझा चुके हैं और दूसरी तरफ उन्होंने हाल में ही काम करना शुरु किया है। उन्होंने मुझसे दूसरी समस्या पर अपने साथ काम करने के लिए कहा। इस सुझाव पर मेरी कुछ बेरुखी देखकर उन्होंने कहा, "आप शायद इस काम को पूरी तरह से अकेले ही करना चाहेंगे।"

साहनी : "नहीं, डॉ. फैजन्स, इस विषय पर आपके साथ काम करने की मेरी हिचक की असली वजह यह नहीं है। किसी समस्या पर आपके साथ काम करने में मुझे बेहद प्रसन्नता होगी, लेकिन अब मुझे पता लग गया है कि बिस्मथ के परमाणु भार की समस्या मूल रूप से रसायन से संबंधित नहीं है। यह तो रेडियो धर्मिता से जुड़ी समस्या है। इसी तरह आपके द्वारा हाल में ही सुलझायी गयी लेड के परमाणु भार के निर्धारण की समस्या भी रेडियो धर्मिता की समस्या निकली, जबकि मैं इसे रसायन की समस्या समझता था। यह अभी आपने ही समझाया है। रेडियो धर्मिता के बारे में मेरी जो भी जानकारी है, वह कोरा किताबी ज्ञान है। मैंने रेडियो धर्मिता मापने के मामूली से मामूली उपकरण को हाथ भी नहीं लगाया है। इसलिए मैं आपके साथ

काम करके आपकी प्रगति में बाधा बनना नहीं चाहता।"

डॉ. फैजन्स : नहीं प्रोफेसर साहनी, आपको रेडियो धर्मिता की सारी तकनीकें सीखने में एक महीने से ज्यादा समय नहीं लगेगा। यह विज्ञान का एक नया विषय है और जहां तक रेडियो धर्मिता मापने का सवाल है, हमारी समस्या में इसे सीखने की ज्यादा जरूरत नहीं पड़ेगी । दूसरी ओर एक रसायनशास्त्री होने के नाते आप तरह-तरह की प्रारंभिक प्रक्रियाओं में मेरी बड़ी मदद करेंगे। दरअसल शुद्ध यौगिकों की एकदम सही रेडियो धर्मिता मापने से पहले उन्हें इन प्रक्रियाओं से गुज़ारना जरूरी होता है।

कुल मिलाकर नतीजा यह निकला कि मैंने बिस्मथ का सही परमाणु भार ज्ञात करने की समस्या पर डॉ. फैजन्स के साथ काम करने की हामी भर दी। संस्थान में कोई सात प्रोफेसर और प्राइवेट-डोसेंट थे, जबकि शोधकर्त्ताओं की तादाद इसकी लगभग दुगुनी थी। सभी शोधकर्त्ता अधेड़ उम्र के पुरुष थे, लेकिन मुझसे काफी छोटे थे । उनमें एक दिलचस्प शख्सियत थीं अंग्रेज महिला मिस जोन्स। वह अपने शोध कार्य में उतनी ही तेज थीं, जितनी संस्थान के कार्यकर्त्ताओं को चाय पिलाने का बंदोबस्त करने में । हिंदुस्तान छोड़ने से बहुत पहले ही मैं संस्थान के निदेशक डॉ. ब्रेडिग से उनकी ख्याति के कारण परिचित था। मैंने उनके उत्प्रेरण संबंधी शोध कार्य के आधार पर छह व्याख्यान दिये थे और एक पर्चा भी लिखा था। संस्थान के सारे पुरुषों में डॉ. ब्रेडिग ही सबसे फटे-पुराने कपड़े पहने प्रयोगशाला में दीखते थे। वह बहुत ढीले-ढाले रहते थे और उनका व्यक्तित्व जरा भी प्रभावशाली नहीं था। वह अकसर मेरे कमरे में आते और चंद मिनटों के लिए मेरे बगल में बैठ कर चर्चा करते कि मैं अपनी समस्या पर किस तरह काम कर रहा हूं। एक प्राइवेट-डोसेंट डॉ. रीस सबसे चुस्त व्यक्ति दीखते थे।

मेरा उनसे कोई संबंध नहीं था, फिर भी वह जब–तब मेरे पास आते और मुझे सलाह मश्विरा देते। एक बार वह मुझे अपने साथ पुस्तकालय ले गये और वहां उन्होंने लगभग दस पत्रिकाओं में मेरे शोध कार्य में सहायक होने वाले अनेक शोध निबंध दिखाये। उनकी इस प्रेरणा से मैं उत्साह से भर गया। जल्दी ही मैं प्रयोगशाला में एक उत्साही छात्र की तरह निश्चित समस्या पर कार्य करने लगा और मैं इस काम में इस तरह खो गया जैसे मैं सालों से यही काम कर रहा हूं। मुझे इस बात का बड़ा दु:ख है कि तेजी से काम आगे बढ़ने से पहले ही इसमें रुकावट आ गयी । इसका कारण युद्ध था जो पहले जर्मनी और रूस के बीच छिड़ा और बाद में दो गुटों के बीच हो गया। एक गुट में जर्मनी और आस्ट्रिया थे, जबकि दूसरे गुट में फ्रांस, इंग्लैंड वगैरह शामिल थे। मुझे इस बात का बेहद अफसोस रहा कि मैं डॉ. फैजन्स जैसे मशहूर वैज्ञानिक के साथ एक महत्त्वपूर्ण शोध करने के सुनहरे अवसर से वंचित रह गया। कार्लस्रू में मेरे संक्षिप्त प्रवास के दौरान कुछ दिलचस्प घटनाएं घटीं, जिनका मैं यहां उल्लेख करना चाहूंगा। कार्पफेन होटल में सादा-सा नाश्ता करने के बाद मैं सुबह लगभग नौ बजे प्रयोगशाला पहुंच जाता। नाश्ते में मैं आमतौर पर ब्रेड का एक छोटा टुकड़ा, थोड़ा-सा शहद, एक अंडा, एक कप कोको या दूध और कुछ फल लेता। दोपहर में लगभग एक बजे पड़ोस के एक रेस्तरां में खाना खाता। फिर डेढ़ बजे से साढ़े चार बजे तक प्रयोगशाला में अपने काम में व्यस्त रहता। इसके बाद मैं जाकर खुद अपने लिए थोड़ी-सी चाय बनाता और एक-दो बीकर चाय कुछ बिस्कुटों के साथ खाता। चाय का यह बंदोबस्त बहुत साधारण-सा था, लेकिन था दिलचस्प। इसके लिए मिस जोन्स, जिनका उल्लेख मैं पहले ही कर चुका हूं, बरामदे की एक खिड़की में बुंसेन बर्नर जला देतीं और उस पर एक बड़ी-सी चाय की केतली में पानी भरकर रख देतीं।

एक दिन होटल वापस जाते समय मैंने देखा कि सड़कों पर सेना का मार्च हो रहा था और कुछ जगहों पर तो आधा घंटे के लिए भी रुकना मुश्किल था। चंद घंटों में ही उस जगह का पूरा नज़ारा बदल गया और हर कोई युद्ध की बातें करने लगा। शायद उस समय तक युद्ध की घोषणा भी हो चुकी थी। हालांकि, मेरा विचार यह है कि कार्लस्रू में मैंने जो कुछ देखा, वह होने वाले युद्ध की तैयारी मात्र था। जब मैं होटल में पहुंचा तो होटल के मालिक जनाब कॉक ने मुझसे कहा कि अब यहां से जाने के लिए देर हो चुकी है। उन्होंने मुझे कार्लस्रू में ही रहने की सलाह दी। क्योंकि अब देश से बाहर जाना लगभग असंभव हो चुका था। उन्होंने बताया कि सिर्फ दो दिन की देरी हुई है। मैंने उनसे हीडेलबर्ग जाने के लिए कार का बंदोबस्त करने को कहा तो उन्होंने सिर हिला दिया और बोले कि यह नामुमकिन है। फिर उन्होंने मुझे चंद दिनों के लिए होटल से बाहर न जाने की सलाह दी। साथ ही यह भी बताया कि बड़े पैमाने पर युद्ध की तैयारियां शुरू हो गयी हैं और रेलगाड़ियों द्वारा सेना की आवाजाही चालू है। मैं कार्लस्रू में अकेले बहुत घबरा रहा था, इसलिए मैंने हीडेलबर्ग में अपने दोस्त डॉ. हुडलीकर को तार भेजा कि यहां आकर मुझे ले जाओ। चंद घंटों बाद डॉ. फैजन्स ने मुझे टेलीफोन किया। उन्होंने मुझे रोकने के लिए बेहद माफी मांगी। फिर उन्होंने कहा कि अब इंग्लैंड जाने के लिए काफ़ी देर हो चुकी है। उन्होंने मुझे युद्ध के दौरान कार्लस्रू में ही रहने की सलाह दी और यह भरोसा भी दिलाया कि उनकी पत्नी मेरी देखभाल करेंगी। हालांकि, वह खुद यह नहीं जानते कि वह उस समय कहां होंगे, क्योंकि वह सेना के रिज़र्व आफिसर थे और युद्ध की घोषणा होते ही रेजीमेंट से उनका बुलावा आना तय था। कॉक और फैजन्स, दोनों ने ही मुझसे यह वादा भी किया कि अगर मेरे रुपये नहीं आते तो वे रुपये - पैसे से भी मेरी मदद करते रहेंगे। मैंने उन्हें बताया कि कार्लस्रू

की बैंक में मेरे पास कुछ सौ पौंड की रकम है, जो एक साल से कुछ अधिक समय के लिए मेरा खर्च चला देगी। उस समय कार्लस्त्रू में जो उत्तेजना फैली हुई थी, उसे मैं कभी नहीं भुला सकूंगा।

चंद घंटों के इंतजार के बाद मुझे हुडलीकर से एक तार मिला, जिसमें लिखा था कि रेलवे स्टेशन पर पांच-छह घंटे धक्के खाने के बाद भी उन्हें कार्लस्त्रू जाने वाली किसी गाड़ी में जगह नहीं मिली। हालांकि, सेना को ले जाने वाली गड़ियां हर चंद मिनट पर जा रहीं थीं। अभी मैं यह तार पढ़ ही रहा था कि किसी ने मेरा दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खोलते ही मेरी खुशी का पारावार नहीं रहा। दरवाजे पर डॉ. हुडलीकर खुद मौजूद थे। उन्होंने बताया कि एक कुली ने घूस लेकर उन्हें गाड़ी छूटने से तुरंत पहले गार्ड के केबिन में धकेल दिया। मैं पहले ही जाने की सारी तैयारी कर चुका था। इसलिए हुडलीकर के होटल आने के आधा घंटे के भीतर ही हम टैक्सी पर सवार होकर रेलवे स्टेशन की ओर चल दिये। यहां भी हमने वही खुल जा सिमसिम जैसे जादुई जुमले का इस्तेमाल किया और गाड़ी के एक डिब्बे में सवार हो गये। हम देर रात हीडेलबेर्ग पहुंचे और फ्रॉ शेरेर की आरामदायक *पेन्शन* में टिक गये।

मैं हीडेलबर्ग में कुछ दिनों ही रहा और इस दौरान मैंने जर्मनी से इंग्लैंड जाने के लिए सारे जरूरी बंदोबस्त कर लिये। मैंने *पेन्शन* में रहने वाले हिंदुस्तानी छात्रों में से एक-दो को अपना साथी बनाने की कोशिश की। उस समय वहां कोई दर्जन भर छात्र थे, लेकिन सबने यही कहा कि उन्हें देश न छोड़ने की सलाह दी गई है, क्योंकि ऐसा करना खतरनाक हो सकता है। सेना की गाड़ियां हर दिशा में आ-जा रहीं थीं और पूरे देश में उत्तेजना फैली हुई थी। हर जगह बस एक ही चर्चा थी – रूस के साथ युद्ध और फ्रांस व इंग्लैंड के साथ युद्ध छिड़ने की संभावना। इन चर्चाओं में खासतौर से

इंग्लैंड की स्थिति की चर्चा की जाती थी। बजाय इसके कि मैं अन्य छात्रों को जर्मनी छोड़कर अपने साथ इंग्लैंड चलने के लिए उकसा पाता, हर कोई मुझे वहीं ठहरने के लिए उकसा रहा था। मुझसे कहा जाता कि अब बहुत देर हो गई है। हीडेलबर्ग से हॉलैंड जाने वाली आखिरी गाड़ी, जिससे मैं जा सकता था, दो अगस्त 1914 को दोपहर में छूटने वाली थी। जहां तक मुझे याद है, मैनहीन में मुझे गाड़ी बदलनी थी, जो हीडेलबर्ग से लगभग 25 मील की दूरी पर था। पूछताछ के लिए रेलवे स्टेशन जाते वक्त मैंने महसूस किया कि एक जर्मन व्यक्ति सड़कों पर मेरा पीछा कर रहा है। उस समय डॉ. हुडलीकर भी मेरे साथ थे। अपने अनुमान को परखने के लिए हम सड़क पर इकट्ठा एक भीड़ में शामिल हो गये। दरअसल अभी-अभी आसमान से एक हवाई जहाज गुज़र रहा था, जिसके बारे में लोग कह रहे थे कि वह सर्बिया का जासूसी जहाज था। भीड़ में इसी मुद्दे पर चर्चा हो रही थी। भीड़ से निकलने के बाद भी हमने देखा कि वह व्यक्ति हमारे पीछे लगा हुआ है। रेलवे स्टेशन पहुंचने पर मैं बाहर ही खड़ा रहा और मेरा दोस्त जरूरी पूछताछ के लिए अंदर चला गया। वह व्यक्ति, जो बाद में जासूस साबित हुआ, मुझसे कुछ दूरी पर ही खड़ा रहा। जब मेरा दोस्त स्टेशन से बाहर आ गया तो हम दोनों उसके पास गये और उससे कहा कि आप हमारा पीछा कर रहे हैं। उसने कहा, 'हाँ'। फिर हमने उससे पूछा कि क्या वह जानना चाहता है कि हम लोग कौन हैं और हीडेलबर्ग में क्या कर रहे हैं। थोड़े-से समय में हमने उसे अपने बारे में सब कुछ बता दिया। फिर उसने हमें बताया कि दरअसल हम लोगों पर सर्बिया के जासूस होने का शक था, इसलिए वह हमारा पीछा कर रहा था। उस समय सर्बिया जर्मनी के विरुद्ध था।

दो अगस्त को मैं हीडेलबर्ग से चल दिया। मेरे दोनों दोस्त डॉ.

हुडलीकर और रंजीत सिंह पंडित मुझे मैनहीन तक छोड़ने आये । ऐसा करना सचमुच साहस और सहृदयता का काम था। वे जानते थे कि उस दिन वापसी के लिए कोई गाड़ी नहीं मिलेगी, क्योंकि सेना की आवाजाही के लिए सारी यात्री-गाड़ियां रद्द कर दी गयीं थीं। आम लोगों में जबर्दस्त उत्तेजना भरी थी। यहां तक कि छोटे-छोटे बच्चे भी रूस पर जल्दी ही कब्जा किये जाने की चर्चा करते थे। इससे रूस के साथ छिड़े युद्ध के बारे में जर्मन बच्चों की भावनाओं का पता लगता है। मुझे याद है कि हीडेलबर्ग में एक जर्मन प्रोफेसर के छोटे-से लड़के ने हुडलीकर से चिल्लाकर कहा था: "हुडलीकर, हुडलीकर, *रसलैंड बादशा सीन* (रूस बेडेन का हिस्सा बन जाएगा)।" ऐसे और भी बहुत से वाकये थे, जिनसे इसी बात का पता लगता है। आम लोगों की तरह प्रोफेसरों में भी युद्ध को लेकर भारी उत्तेजना फैली थी। मुझे एक सभा में शामिल होने की याद है, जिसमें 10,000 से ज्यादा लोग मौजूद थे। वहां विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों के सारगर्भित व्याख्यान हुए, जिनमें जर्मनी व रूस के संबंधों के इतिहास पर विस्तार से रोशनी डाला गयी और मौजूदा हालात में रूस के खिलाफ युद्ध छेड़ने के औचित्य को सही ठहराया गया। लेकिन इंग्लैंड जाने के कुछ ही दिनों बाद एक घटना से मुझे एक बात शीशे की तरह साफ हो गयी–जर्मनी का इंग्लैंड से कोई मुकाबला नहीं है। वह घटना यों थी :

हीडेलबर्ग और कार्लस्रू की जर्मन बैंकों में मेरे पास 3,000 रुपयों के बराबर रकम जमा थी। कुछ ही घंटों में मैं अपना सारा धन ब्रिटिश स्वर्ण-मुद्राओं के रूप में निकालने में कामयाब हो गया । इसके लिए उन्होंने मुझसे थोड़ा क़मीशन लिया, लेकिन और कोई दिक्कत पेश नहीं आयी। उन्होंने स्वर्ण-मुद्राओं को जर्मनी से इंग्लैंड ले जाने की मंजूरी देने में भी कोई अड़चन नहीं डाली। इंग्लैंड पहुंचकर मैंने अपना सारा धन वहां की बैंक में जमा कर

दिया, लेकिन बाद में मुझे यह जानकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि मैं बैंक से एक भी स्वर्ण-मुद्रा नहीं निकाल सकता था। मुझे ज्यादातर रकम कागज़ी नोट के रूप में और कुछ चांदी या तांबे के सिक्कों के रूप में दी गयी । जब मैं इंग्लैंड से विदा लेकर हिंदुस्तान आने लगा तो मैंने बैंक मैनेजर से सिर्फ पांच स्वर्ण-मुद्राएं देने की काफी गुजारिश की। कहा कि मुझे ये स्वर्ण-मुद्राएं बंबई में खर्च करने या लाहौर जाते वक्त रास्ते में खर्च करने के लिए चाहिए, पर उसने एक न सुनी।

मैं शायद मुख्य मुद्दे से भटक गया। जैसा मैं पहले बता चुका हूं, दो अगस्त 1914 की दोपहर को मैं हीडेलबर्ग से हॉलैंड की ओर रवाना हो गया। हुडलीकर और पंडित भी उसी गाड़ी में मेरे साथ चढ़े । वे जर्बदस्ती मेरे साथ मैनहीन तक आये, ताकि मुझे अगली गाड़ी में सुरक्षित बैठा सकें। उस दोपहर उन्हें हीडेलबर्ग तक का पूरा रास्ता जरूर पैदल तय करना पड़ा होगा। सचमुच साहसी थे वे ।

अध्याय - 4

पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट

पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट और इससे जुड़ी कार्यशाला की देखरेख में मेरा बहुत समय खपता था। इसलिए मैं अपनी जिंदगी की कहानी में इसका जिक्र करना जरूरी समझता हूं। इस इंस्टीट्यूट का विचार गवर्नमेंट कॉलेज के प्रोफेसर जे.सी. ओमन के निकट संपर्क से तभी पनपा था, जब मैं कॉलेज में एम.ए. की पढ़ाई कर रहा था। कलकत्ता जाने से पहले हम अकसर इस इंस्टीट्यूट की जरूरत और काम-काज के बारे में चर्चा करते रहते थे। जब सन् 1885 की गर्मियों में मैं कलकत्ता से वापस आया तो मैंने प्रोफेसर ओमन को सरकार महोदय की संस्था के बारे में बताया। फिर हमने *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* के नाम से संस्था स्थापित की। प्रोफेसर ओमन इसके मानद सचिव बने और मैं संयुक्त सचिव। इस इंस्टीट्यूट के जरिये हम प्रांत भर में वैज्ञानिक जानकारी का प्रचार-प्रसार करना चाहते थे। हमने सोचा कि इसके लिए अंग्रेजी और पंजाबी भाषा में जगह-जगह लोकप्रिय व्याख्यान आयोजित किये जाएं। व्याख्यानों के साथ प्रयोग करके दिखाये जाएं और स्लाइडों से चित्र भी दिखाये जाएं। साथ ही पुस्तिकाएं प्रकाशित करने की योजना भी बनी। कुछ साल बाद हमने तकनीकी शिक्षा को प्रोत्साहित करने की योजना भी बनायी। इसमें रासायनिक उद्योगों को खास जगह दी गयी। म्यानी (भेड़ा के पास) के मशहूर मालिक ज्वाला सहाय ने साबुन, नील वगैरह बनाने की तकनीक पर लिखे गये छोटे पर्चों को नकद इनाम देना शुरू किया। इससे तकनीकी शिक्षा के प्रसार को बहुत बढ़ावा मिला।

हमारी पहली योजना के तहत प्रोफेसर ओमन ने बिजली और चुंबक से जुड़े अनेक रोचक विषयों पर लोकप्रिय व्याख्यान दिये। मेडिकल कॉलेज के डॉ. सी. सी. कैलब के शरीर-रचना से संबंधित कुछ चुने हुए विषयों पर व्याख्यान हुए। उनके दो व्याख्यान जनता के बीच इतने लोकप्रिय हुए कि उन्हें दुबारा आयोजित करवाना पड़ा। यहां मैं बता दूं कि इस जनता में आम लोग बहुत कम थे, ज्यादातर विद्यार्थी और शिक्षक थे। कैलब के जिन दो व्याख्यानों का मैं जिक्र कर रहा हूं, उनके विषय थे – मानव में भय और जहरीला व गैर-जहरीला धुआं। इसके बाद और भी बहुत से लोग इंस्टीट्यूट की गतिविधियों में हिस्सा लेने आगे आने लगे। इनमें से ज्यादातर कॉलेज के प्रोफेसर थे। इनमें से एक प्रोफेसर साहब को अपना व्याख्यान दिलचस्प और लोकप्रिय बनाने में खास महारत हासिल थी। उनका नाम था डॉ. ग्रांट। इसके लिए वह प्रयोगों की तैयारी में बहुत समय लगाते थे। लेकिन उनके ज्यादातर व्याख्यान इंग्लैंड के फैराडे इंस्टीट्यूट या किसी अन्य संस्था में दिये गये व्याख्यानों की नकल होते थे। वह इन व्याख्यानों की प्रकाशित प्रति से अपना व्याख्यान तैयार कर लेते थे। उन्होंने *रोमांस ऑफ साइंस* शृंखला के तहत प्रकाशित बहुत से लोकप्रिय व्याख्यानों से अपने व्याख्यान तैयार किये, जो बेहद कामयाब रहे। इनमें प्रमुख थे - सी. वी. ब्वायज का *सोप बबल्स* (साबुन के बुलबुले), फैराडे का *केमिकल हिस्ट्री ऑफ द कैंडिल* (मोमबत्ती का रासायनिक इतिहास), पेरी का *स्पिनिंग टॉप्स* (घूमते लट्टू), *द स्टोरी ऑफ टेंडर बॉक्स* (टेंडर बॉक्स की कहानी) वगैरह। अकसर वह इन पुस्तिकाओं से भाषा और कहानी जैसी की तैसी उड़ा लेते और व्याख्यान में इनके लिए आभार का एक शब्द भी नहीं कहते ।

मैं इंस्टीट्यूट की स्थापना के समय से ही इसका संयुक्त सचिव था, लेकिन शुरू के दो साल मुझे शिमला में गुज़ारने पड़े। जैसा मैं पहले भी

लिख चुका हूं, मैंने सरकारी नौकरी की शुरुआत भारत सरकार के *सेकंड असिस्टेंट मीटियोरोलॉजिकल रिपोर्टर* के रूप में शिमला में की थी। जनाब डब्ल्यू.एल.डलास फर्स्ट रिपोर्टर थे। जब मैं मौसम विभाग में था, तो मैंने *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* में तीन व्याख्यान दिये और तीनों ही हिंदुस्तान के मौसम के बारे में थे। इनमें से दो में महादेव गोविंद रानाडे [22] ने अध्यक्षता की थी। वह सन् 1886 में किसी कमेटी का सदस्य बनकर शिमला आये थे। मुझे याद पड़ता है कि यह कमेटी दकन में ग्रामीण कर्ज़दारी के कारण हुए दंगों के सिलसिले में बनायी गई थी। कमेटी के काम से रानाडे महोदय कई महीनों तक शिमला में रहे। लोगों ने इस मौके का फायदा उठाते हुए उनसे खूब मुलाकातें की और उनके विचारों को सुना। वेदों के महान अध्येता शंकर पांडुरंग पंडित भी उनके साथ रहते थे। इसलिए लोगों को दुहरा फायदा होता था। शंकर पांडुरंग पंडित यशस्वी नेहरू परिवार से जुड़े जनाब एस. पंडित के चाचा थे। मौसम पर दिये गये मेरे तीनों व्याख्यान गवर्नमेंट कॉलेज के हॉल में हुए थे। उस समय यह माल के थोड़ा नीचे हुआ करता था। मुझे यह देखकर बड़ा ताज्जुब होता था और खुशी भी होती थी कि व्याख्यान में बताये गये तथ्यों और समस्याओं की जनाब रानाडे को बहुत अच्छी जानकारी थी। शंकर पांडुरंग पंडित भी व्याख्यानों में मौजूद रहते थे। वे दोनों ही व्याख्यान में भरपूर दिलचस्पी लेते थे और हर व्याख्यान के आखिर में कुछ सवाल भी पूछते थे। व्याख्यान के साथ दिखाने के लिए मैं अपने दफ्तर से कुछ चार्ट भी लाता था। व्याख्यान में दिखाने के लिए मैंने खासतौर से एक बड़ा चार्ट बनवाया था, जिसमें मानसून और चक्रवाती तूफानों के आने का रास्ता दिखाया गया था। व्याख्यानों को सुनने के लिए बहुत से हिंदुस्तानी और युरोपीय साहब लोग आते थे और दिलचस्पी से व्याख्यान सुनते थे। लेकिन श्रोताओं में सबसे ज्यादा तादाद बंगाली बाबुओं

की रहती थी, क्योंकि उन दिनों भारत सरकार के सभी दफ्तरों में इनकी भरमार थी। मुझे उस वाकये की अच्छी तरह याद है, जब एक व्याख्यान के दौरान बंगाली बाबुओं ने अपने ज़ोरदार ठहाकों से हॉल सिर पर उठा लिया था। हुआ यह कि व्याख्यान के दौरान मैंने कहा कि हो सकता है भारत सरकार बिना बंगाली बाबुओं के शिमला में दफ्तर चला ले, पर उत्तरी भारत उस मानसूनी बरसात के बिना गुज़ारा नहीं कर सकता, जो पूरी की पूरी बंगाल से आती है। बंबई से चली ज्यादातर मानसूनी हवाएं रास्ते में ही बरस जाती हैं और जो कुछ बचती हैं उन्हें अरावली की पर्वत शृंखला रोक लेती है। मैंने बताया कि पंजाब के हरे-भरे उत्तरी जिलों और रूखे-सूखे दक्षिण-पूर्वी जिलों के बीच खेती-बाड़ी में जो अंतर है वह इसी बंगाल और बंबई की मानसूनी हवाओं के कारण है। सभा के अध्यक्ष की हैसियत से रानाडे महोदय ने हमारे प्रांत की अर्थव्यवस्था में बंबई के योगदान के बारे में कई नई बातें बतायीं, क्योंकि वह खुद पश्चिमी प्रेसिडेंसी के रहने वाले थे। इसी तरह मेरे मुस्लिम दोस्तों को यह जानकर खुशी होगी कि सर्दियों में होने वाली बरसात के लिए हम फारस के आभारी हैं। यह बरसात प्रति-चक्रवात से आती है। उस समय तक इनकी फारस से उत्पत्ति लगभग स्थापित हो चुकी थी। तीन व्याख्यानों में से एक व्याख्यान में मैंने यह बताया था कि सर्दी से गर्मी और गर्मी से सर्दी का मौसम बदलने के दौरान कौन-कौन सी मौसमी घटनाएं घटती हैं। इसमें मैंने धूल भरी आंधी, तूफान, ओले गिरने जैसी मौसमी घटनाओं की मौसम के बदलाव में भूमिका भी समझायी थी।

लालटेन स्लाइड

मैं बता चुका हूं कि व्याख्यानों में चार्ट दिखाने के अलावा लालटेन स्लाइडों से चित्र भी दिखाये जाते थे। लेकिन उन दिनों लालटेन स्लाइडें बनवाना आसान नहीं था। यहां तक कि आज भी लोकप्रिय व्याख्यानों के लिए

साज-सामान मिलना बहुत मुश्किल है और लालटेन स्लाइड की व्यावसायिक सुविधा तो सिर्फ कुछ महानगरों में ही मिल पाती है । मैं अध्यापकों को बताना चाहूंगा कि इपीडायस्कोप जैसी आधुनिक सुविधा के बिना भी लोकप्रिय व्याख्यानों के लिए स्लाइडें बनायी जा सकती हैं। शिमला में व्याख्यान देने के लिए मैंने इसी तरह स्लाइडें बनायीं थीं । इसके लिए मैंने पहले लालटेन स्लाइड की नाप के कांच के कुछ टुकड़ों पर मोमबती की लौ से कालिख जमा दी और फिर उन पर पिन की नोक से तीर, रेखाएं वगैरह खींच दीं । इसी तरह तूफान जैसे विषयों के व्याख्यानों में तीरों से हवा की दिशा दिखाकर व्याख्यान को दिलचस्प बनाया जा सकता है। इस पर अलग से कुछ खर्च भी नहीं करना पड़ता। मेरे व्याख्यानों में स्लाइडें खूब जमीं। कुछ समय बाद जब मैं लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज में पढ़ाने लगा तो मैंने फिर से ये व्याख्यान दिये। प्रोफेसर ओमन की सलाह पर मैंने इनमें से एक व्याख्यान को पूरा लिखा और पैम्फलेट के रूप में छपवाया भी। मुझे दु:ख है कि अब इसकी एक भी प्रति उपलब्ध नहीं है। यह व्याख्यानों की दूसरी शृंखला थी, जिसे मैंने शिमला के बाद लाहौर में कुछ विस्तार करके दोहराया था। ये व्याख्यान मानसूनी बरसात और तूफानों के बारे में थे।

लाहौर में व्याख्यानों को दुहराते समय मैंने अपनी स्लाइडों को एक नया रूप दिया। इससे वे पर्दे पर और भी साफ़ दिखाई देने लगीं। मोमबती की लौ से कांच के टुकड़ों पर कालिख जमाने की जगह, अब मैं उन्हें गोंद के घोल में डुबो देता था और फिर धूप में सुखा लेता था। इसका मकसद यह था कि कांच की सतह थोड़ी खुरदरी हो जाय ताकि उस पर हिंदुस्तान का नक्शा, तीर वगैरह आसानी से बनाये जा सकें। चित्र बनाने के लिए छापेखाने की स्याही बहुत बढ़िया रहती है। अपने लोकप्रिय व्याख्यानों के लिए

मैं फोटोग्राफी से तैयार स्लाइडों की जगह इन साधारण स्लाइडों का इस्तेमाल करना बेहतर समझता था। इसकी वजह सिर्फ यह नहीं थी कि इसमें पैसा नहीं खर्च होता था। दरअसल इसमें समय बहुत कम लगता था। फोटोग्राफर को चिट्ठी लिखकर स्लाइडें तैयार करवाने का झंझट भी मोल नहीं लेना पड़ता था। इसका सबसे बड़ा फायदा यह था कि व्याख्यान सुनने वाले बहुत से लोगों के मन में अपने व्याख्यान के लिए इसी तरह स्लाइडें तैयार करने का विचार जम जाता था। हां, इतना अवश्य है कि कुछ खास कामों के लिए फोटोग्राफिक स्लाइडों का इस्तेमाल करना जरूरी होता है।

मैं अध्यापकों को स्लाइड बनाने के कुछ और आसान तरीके भी बताना चाहूंगा। अपने व्याख्यानों के लिए मैं इनमें से कई का इस्तेमाल कर चुका हूं (अध्यापक खुद ही यह तय कर सकेंगे कि उनके लिए कब, कौन-स तरीका ठीक रहेगा)।

1. ट्रेसिंग पेपर पर किसी नुकीले ड्राइंग पेन से चित्र या नक्शे को उतार लें। फिर उसे कांच के टुकड़े पर चिपका दें। ज्यादातर मामलों में सिर्फ कोने चिपकाना ही काफी होगा। अगर कांच के टुकड़े पतले हों और चित्र चटक काली स्याही से बनाया गया हो तो ट्रेसिंग पेपर को दो कांच के टुकड़ों के बीच दबाया भी जा सकता है। कांच के टुकड़ों को पतले, पर मज़बूत सूती धागे से बांध दें। मैं रबर बैंड लगाने की सलाह नहीं दूंगा। ट्रेसिंग पेपर को बहुत थोड़ा-सा तेलिया देने से चित्र और भी साफ़ दिखाई देता है।

2. ऊपर बताये गये तरीके से कई रंगों वाला चित्र भी आसानी से बनाया जा सकता है।

3. अगर चित्र को सिर्फ रेखाओं से बनाना मुमकिन हो तो इसे कागज़

पर बनाकर सीधे काटा जा सकता है। इसके लिए मोटे व भूरे कागज़ का इस्तेमाल करना चाहिए, ताकि इसमें से रोशनी न गुज़र सके। इससे अंधेरी पृष्ठभूमि में रोशनीदार चित्र दिखाई देगा।

4. कुछ मामलों में मैंने चित्र को काटकर सीधे कांच के टुकड़े पर चिपका देना या दो कांच के टुकड़ों के बीच रखना ज्यादा सुविधाजनक पाया है।

मुझे यह देखकर बड़ा दु:ख होता है कि अब विज्ञान को दिलचस्प तरीके से समझाने के लिए मैजिक लैंटर्न (चित्रदर्शी) का इस्तेमाल बिलकुल बंद हो गया है। यहां तक कि पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट द्वारा आयोजित किये जाने वाले लोकप्रिय वैज्ञानिक व्याख्यानों जैसे क्रिया-कलापों का चलन भी खत्म ही हो गया है। अब इनके बारे में शायद ही कभी सुनाई देता हो।

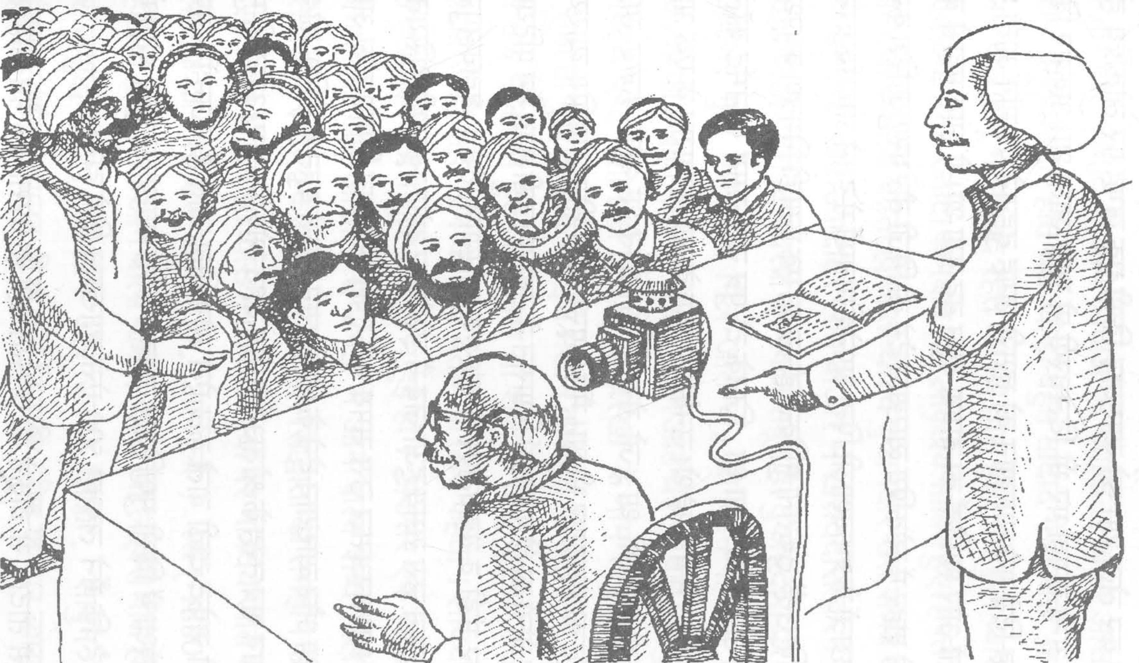
हमारे प्रांत में वैज्ञानिक जानकारी के प्रचार-प्रसार के प्रति उदासीनता आ गई है। इसकी वजहें मैं अभी नहीं बताऊंगा। मैं हमारे प्रांत शब्द का प्रयोग जानबूझकर कर रहा हूं क्योंकि मुझे देश के अन्य हिस्सों की दशा के बारे में जानकारी नहीं है। जैसा मैं पहले भी बता चुका हूं, सन् 1885 में जब मैं कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज का छात्र था तो मैंने डॉ. महेंद्र लाल के संस्थान में कई बेहद प्रेरणादायक लोकप्रिय व्याख्यानों को सुना था। कलकत्ता से लौटकर आने के तुरंत बाद जब हमने लाहौर में *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* की स्थापना की तो महेंद्र लाल का संस्थान ही हमारा मॉडल था। मैं यह भी पहले बता चुका हूं कि वैज्ञानिक जानकारी के प्रचार-प्रसार के मकसद से एक सोसाइटी की स्थापना करने का विचार कुछ महीने पहले प्रोफेसर जे.सी. ओमन के दिमाग में पनपा था। कलकत्ता से लौटकर जब मैंने उन्हें सेंट ज़ेवियर कॉलेज के फादर लैफोंट द्वारा दिये गये लोकप्रिय

व्याख्यानों के बारे में बताया तो वह बिना कोई समय गंवाये सोसाइटी की स्थापना में जुट गये। इस तरह वह कल्पना साकार हुई, जिस पर हम पहले सिर्फ चर्चा किया करते थे।

लोकप्रिय व्याख्यान

पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट के लोकप्रिय व्याख्यानों ने पूरे प्रांत के लोगों के मन में जो दिलचस्पी और उत्साह पैदा किया उसका वर्णन करना बेहद मुश्किल है। यह उत्साह देशी रियासतों, यहां तक कि क्वेटा में भी देखा गया। चारों ओर से हमारे व्याख्यानों की मांग होने लगी। कुछ ही समय बाद हमने मुफस्सिल जगहों पर व्याख्यान देने के लिए मामूली-सी फीस लेना भी शुरू कर दिया, ताकि व्याख्याता और आमतौर पर उसके साथ जाने वाले प्रयोगशाला सहायक के सफ़र पर खर्च होने वाली रकम का कुछ हिस्सा मिल सके। गौरतलब है कि उनके साथ व्याख्यान के लिए जरुरी उपकरण वगैरह भेजने पर भी कुछ रकम खर्च होती थी। मुफस्सिल जगहों पर मैजिक लैंटर्न की मदद से दिये जाने वाले व्याख्यानों की फीस के बारे में मुझे कुछ ठीक से याद नहीं आता, लेकिन सन् 1896 के बाद मुफस्सिल जगहों पर दिये जाने वाले लोकप्रिय व्याख्यानों के लिए यह फीस एक से दो आने के बीच होती थी। अगर व्याख्याता वहीं का स्थानीय विद्वान हो तो भी यह फीस ली जाती थी। कारण कि ऐसे मामलों में भी अकसर उपकरणों और प्रयोगशाला सहायक को मुख्यालय से ही भेजना पड़ता था।

वैसे मैं यह बता दूं कि दस में से नौ जगहों पर व्याख्यान देने के लिए मुझे ही जाना पड़ता था। कुछ अन्य हालातों के अलावा इसकी कुछ खास वजहें भी थीं। दयाल सिंह विल प्रोबेट मामले में उलझने से पहले यानी सन् 1890 से 1898 के बीच मैंने लाहौर और पंजाब के अन्य शहरों में इतने व्याख्यान दिये कि मुझे अपने व्याख्यान के लिए विषय खोजने में कभी कोई



“दुकानदारों की बातचीत में अकसर मुझे ऐसे शब्द मिल जाते थे, जो जाने-पहचाने वैज्ञानिक उपकरणों को पंजाबी नाम देने में बहुत काम आते थे ।”

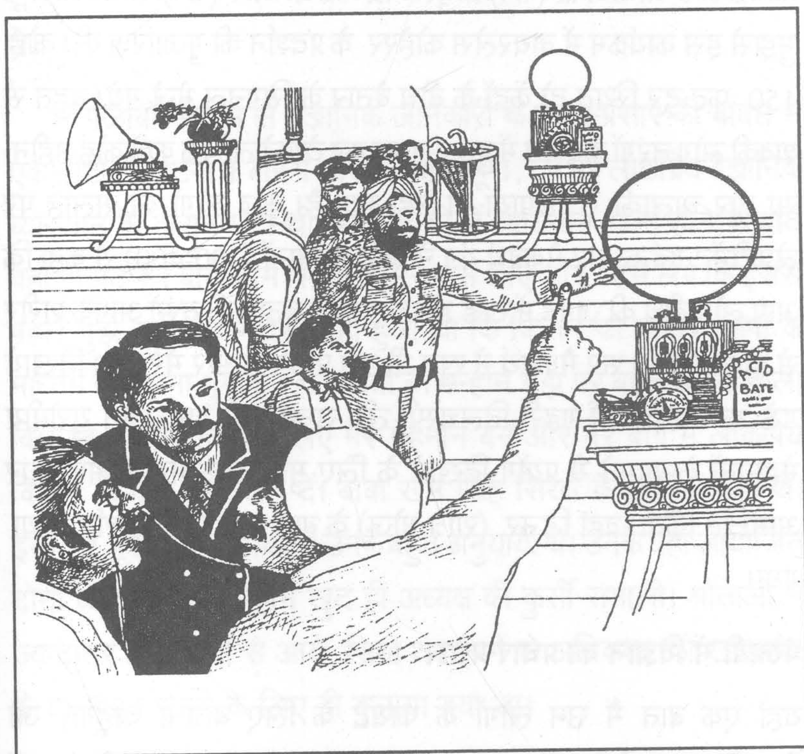
दिक्कत नहीं आयी। मैं विषय के हिसाब से जरूरी उपकरण भी आसानी से तैयार कर लेता था। जो व्याख्यान किसी एक जगह पर लोकप्रिय होता था, वह अन्य जगहों पर भी दिलचस्पी से सुना जाता था। अकसर किसी एक जगह दिये गये व्याख्यान को दूसरी जगह दुहराने की मांग आती थी। मेरे दोस्तों और शागिर्दों का दायरा बहुत बढ़ गया था। ये लोग मुझसे बार-बार अपने शहर में लोकप्रिय व्याख्यान देने की निजी तौर पर गुज़ारिश करते। मेरे कुछ छात्रों के प्रभावशाली पिता अपने निमंत्रणों में इतने आकर्षक प्रस्ताव रख देते कि उन्हें ठुकराना मुश्किल हो जाता। एक ऐसा ही निमंत्रण कपूरथला के वज़ीरे आज़म ने भेजा था, जिनके दो पुत्र उस समय गवर्नमेंट कॉलेज में इंटमीडिएट में पढ़ रहे थे। उनके निमंत्रण के साथ रियासत के एक आला अफसर का खत भी था, जो मेरा निजी दोस्त था और *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* का मददगार भी था। मैंने कपूरथला में तीन लोकप्रिय व्याख्यान दिये और तीनों का ही पूरा खर्च रियासत ने उठाया। इसी तरह मैंने पटियाला में दो और मंडी व बहावलपुर में एक-एक व्याख्यान दिये। बहावलपुर में मेरा व्याख्यान उस समय हुआ जब मैं *इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल* की हैसियत से वहां गया था। दरअसल उस समय मेरा एक सिख छात्र रियासत का आला अफसर था और व्याख्यान देने के लिए उसने मुझसे बहुत गुज़ारिश की थी। ये व्याख्यान सब तरह के श्रोताओं के बीच बेहद लोकप्रिय हुए। आज भी मुझे कभी-कभी सफ़ेद दाढ़ी वाले कुछ ऐसे लोग मिल जाते हैं, जिन्होंने अपनी किशोरावस्था में किसी मुफस्सिल जगह पर मेरा व्याख्यान सुना था। मेरा अनुमान है कि मैंने लगभग 500 ऐसे व्याख्यान दिये होंगे।

इस तादाद से चौंकने की जरूरत नहीं है। बरसों तक मैंने लाहौर के बावली साहब के अहाते में (सुनहरी मस्जिद के पास) हर साल पंजाबी भाषा में कोई 20 व्याख्यान दिये। सभी व्याख्यानों को आसान प्रयोगों से

समझाया जाता था। इसके उपकरण इतने मामूली होते थे कि लोग खुद बना लें। भारी तादाद में आये श्रोताओं में ज्यादातर श्रोता आस-पास के बाज़ारों के दुकानदार होते थे । थोड़ी-बहुत तादाद में दफ्तरों के अंग्रेज़ी जानने वाले बाबू भी मौजूद रहते थे। मेरे द्वारा दिये गये कुल व्याख्यानों में ये व्याख्यान सबसे ज्यादा कामयाब और लोकप्रिय साबित हुए। हफ्ते दर हफ्ते दुकानदारों की भीड़ बढ़ती ही जाती थी। ये दुकानदार उस समय व्याख्यान सुनने आते थे, जब ज्यादातर लोग बाज़ार में खरीददारी करने निकलते हैं। यह उनकी गहरी दिलचस्पी का पक्का सबूत है। दुकानदारों की बातचीत में अकसर मुझे ऐसे शब्द मिल जाते थे, जो जाने-पहचाने वैज्ञानिक उपकरणों को पंजाबी नाम देने में बहुत काम आते थे। एक बार एक दुकानदार इलेक्ट्रिक प्लेट मशीन को बिजली दा चरखा के नाम से पुकार रहा था। मैंने सुना तो मुझे लगा कि यह इस मशीन का बहुत ही सटीक नाम है। कभी-कभी जब मैं बोलते हुए किसी नाम या शब्द के लिए अटक जाता, तो मैं श्रोताओं से ही सही नाम या शब्द बताने के लिए कहता । शायद ही कभी ऐसा हुआ हो कि मेरी मुश्किल दूर न हुई हो । अकसर एक बेहद सटीक, बोलचाल का और आसानी से समझ में आने वाला शब्द मिल जाता । भौतिकी और रसायन के आसान तथ्यों और सिद्धांतों को समझने के आलावा हर साल कम से कम 10 व्याख्यान आम विषयों पर भी दिये जाते थे , जैसे 'टेलीग्राफ का तार कैसे बोलता है', 'आम लौ', 'सन् 1880 से पहले लाहौरियों द्वारा पिया जाने वाला पानी', 'पानी जो लाहौरी पीते हैं', 'शुद्ध और अशुद्ध हवा', 'खिलौने और उनकी शिक्षा', 'साबुन बनाना', 'इलेक्ट्रोप्लेटिंग', 'मानव की सेवा में बिजली' (तीन या चार व्याख्यानों की शृंखला),'कांच बनाना', 'पंजाब और उसकी नदियां', (इसके साथ चिकनी मिट्टी में बना एक नक्शा भी दिखाया जाता था) वगैरह। यह कुछ

विषय मैंने सिर्फ इसलिए बताए हैं कि आप यह जान लें कि बावली साहब में हर महीने दिये जाने वाले व्याख्यानों के विषय आमतौर पर कैसे होते थे। इनमें से कई व्याख्यान मुफस्सिल जगहों पर या लाहौर में अन्य जगहों पर दोहराये जाते थे। खासतौर से वे व्याख्यान जरूर दोहराये जाते थे, जिनका विषय कुछ ऊंचा होता था। यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि उस समय पूरे प्रांत में वैज्ञानिक अध्ययन के लिए जर्बदस्त उत्साह पैदा हो गया था। यहां मैं एक और तथ्य बताना चाहूंगा, जिसे पूछताछ करके मैंने पक्का भी कर लिया है – उस समय पंजाब में हिंदुस्तान के किसी भी प्रांत की तुलना में सबसे ज्यादा स्कूलों में विज्ञान की एक नियमित विषय के रूप में पढ़ाई हो रही थी और पंजाब में ही सबसे ज्यादा छात्र प्रारंभिक भौतिकी और रसायन की पढ़ाई कर रहे थे।

इन लोकप्रिय व्याख्यानों के बारे में दो शब्द और कहना चाहूंगा। वैज्ञानिक विषयों के प्रति व्यापक दिलचस्पी पैदा करने और आम आदमी तक उपयोगी जानकारी पहुंचाने के लिए मैं अकसर नयी और दिलचस्प वैज्ञानिक खोजों को भी अपने लोकप्रिय व्याख्यानों का विषय बना लिया करता था। ये व्याख्यान मेरी कल्पना से कहीं ज्यादा लोकप्रिय साबित हुए। नयी खोजों जैसे एक्स-रे, एडिसन का फोनोग्राफ और बेतार का टेलीग्राफ के प्रदर्शनों में लोगों ने इतनी गहरी दिलचस्पी दिखाई कि एक ही जगह पर इसे दुबारा, तिबारा और बार-बार दिखाये जाने की मांग होने लगी। इन व्याख्यानों का सारा खर्च फीस से ही पूरा किया जाता था। बेतार का पहला प्रदर्शन मूल हर्टजियन बिजली की तरंगों और प्रायोगिक लौह-निकेल कोहेरर की मदद से दिखाया गया। फिर भी लोगों ने इसमें जो गहरी दिलचस्पी ली, वह तारीफे काबिल थी। इस विषय पर हिंदुस्तान में दुहराये गये ये शायद पहले प्रयोग थे। एक दिलचस्प बात और बताना चाहूंगा। कुछ



वैज्ञानिक प्रयोग का आम जनता के सामने प्रदर्शन

समय बाद जब राजा जयकिशन कौल, डॉ. बालकिशन कौल और राजा सर दया किशन कौल के पिता पंडित सूरज कौल को राजा की पदवी प्रदान की गई तो उनके सम्मान में सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम के आयोजकों (सर) प्रोतुल चंद्र चटर्जी और (सर) शादी लाल ने मुझसे इस कार्यक्रम में वायरलेस कोहेरर के प्रदर्शन की गुजारिश की। कोई 150 फुट दूर स्थित दो केंद्रों के बीच बेतार के सिगनल भेजे गये। बहुत से शक्की लोग तरंगों के रास्ते में गुज़र-गुज़र कर देखने लगे कि कहीं कोई महीन-सा तार चालाकी से छिपाया तो नहीं गया है। कुछ लोगों की सलाह पर लेफ्टीनेंट गर्वनर सर मैकवर्थ यंग ने सभी मेहमानों (300-400) से कहा कि आप लोग बीच की जगह में खड़े हो जाएं ताकि बेतार की तरंगें आपके शरीर से होकर गुज़रें। सर मैकवर्थ ने खुद भी इस प्रयोग में और मेरे द्वारा दिखाये गये अन्य प्रयोगों में गहरी दिलचस्पी ली। उन्होंने दो बार अपने युरोपीय मेहमानों के सामने ये प्रयोग दिखाने के लिए मुझे खासतौर से अपने घर आमंत्रित किया। वहां डिनर (रात्रि-भोज) के बाद प्रयोगों का प्रदर्शन किया गया।

पंजाबी में विज्ञान का प्रचार-प्रसार

यहां एक बात मैं उन लोगों के फायदे के लिए बताना चाहूंगा, जो विश्वविद्यालय की बैठकों या अन्य जगहों पर पंजाबी और अन्य देशी भाषाओं के माध्यम से कॉलेज की पढ़ाई का विरोध करते हैं। ऊपर बतायी गयी गार्डन पार्टी में मैंने पहले सभी मेहमानों को बेतार के फायदे की जानकारी अंग्रेजी में दी। लेकिन वहां कुछ बड़े रईस भी मौजूद थे, जो अंग्रेज़ी नहीं समझते थे। इसलिए सर मैकवर्थ ने मुझसे कहा कि क्या आप यह बात पंजाबी में भी बता सकते हैं। मैंने तुरंत सारी बातें पंजाबी में समझा दीं। तब लेफ्टीनेंट गर्वनर साहब ने उस समय के माने हुए वकील जनाब मदन गोपाल, एम.ए.,

बार-एट-लॉ, से पूछा कि क्या यह जनाब बुजर्गों को अपनी बात समझाने में कामयाब रहे हैं। इस पर जनाब मदन गोपाल ने कहा, "योर ऑनर, दरअसल मैं खुद अंग्रेज़ी के बजाय पंजाबी में ज्यादा बेहतर समझ पाया हूं।" जबकि जनाब मदन गोपाल पंजाबी नहीं थे। वह दिल्ली के रहने वाले थे।

पंजाबी माध्यम से वैज्ञानिक जानकारी के प्रचार-प्रसार की बाबत मैं एक छोटी-सी घटना के बारे में और बताना चाहूंगा, जो मेरे लोकप्रिय वैज्ञानिक व्याख्यान के दौरान घटी थी। रावलपिंडी में व्याख्यान खत्म होने के बाद वहां मौजूद सर बाबा खेम सिंह बेदी मेरे पास आए और कहने लगे कि इससे पहले मुझे कभी यह भरोसा नहीं हुआ था कि विज्ञान को पंजाबी भाषा के माध्यम से पढ़ाना मुमकिन हो सकता है। उन्होंने मुझ पर बहुत दबाव डाला कि आप दो-तीन दिन के लिए मेरे मेहमान बनें और मेरे बाग में लोकप्रिय विज्ञान के कुछ व्याख्यान दें। बाबा खेम सिंह सिखों के धार्मिक नेता थे। इसलिए पूरे धानी पाठोवर में उनके बहुत अनुयायी थे। उनके यहां आयोजित दोनों व्याख्यानों में उन्होंने खुद ही अध्यक्ष की कुर्सी संभाली। श्रोताओं में ज्यादातर लोग गांवों से आये सिख थे। इनमें से अधिकतर को खासतौर से व्याख्यान सुनने के लिए ही बुलाया गया था।

संस्थान के अंतिम दिन

पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट के व्याख्यानों की व्यापक लोकप्रियता की वजह से संस्था के लिए विशाल धन राशि जुटाना बहुत आसान हो गया। हमने कुछ धन वैज्ञानिक उपकरणों और विज्ञान पुस्तकालय के लिए किताबों की खरीद पर खर्च कर दिया। इसके अलावा जब हमने संस्थान बंद करने का फैसला लिया तो हमारे पास 3000 रुपये नकद थे। दरअसल कुछ ऐसे

हालात बन गये कि हमें मजबूरन संस्था को बंद करना पड़ा। वैसे हमारी योजना यह थी कि लाहौर में एक लेक्चर हॉल बनवाया जाए, ताकि इंस्टीट्यूट को स्थायी जगह मिल जाये। पर ऐसा नहीं हो सका। सन् 1905 या उसके आस-पास लाहौर मैडिकल कॉलेज के कुछ छात्रों ने मिलकर एक छोटी-सी संस्था बनायी और उसे नाम दिया–*सोसाइटी फॉर द प्रमोशन ऑफ साइंटिफिक नॉलेज* (एस.पी.एस.के.)। इसके उद्देश्य भी लगभग *पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट* जैसे ही थे। उन्होंने डॉ.सी.सी. कैलब को संस्था का स्थायी अध्यक्ष बना दिया। इस समय तक प्रोफेसर ओमन हिंदुस्तान से वापस जा चुके थे और मैं दयाल सिंह विल वाले गंभीर और टेढ़े मुकदमे में बुरी तरह उलझ गया था। यह मुकदमा कोई दस साल तक चला। डॉ.सी.सी. कैलब और संस्था के कुछ अन्य प्रभावशाली कार्यकर्ता नयी सोसाइटी के कार्यकलापों में ज्यादा दिलचस्पी लेने लगे थे। एक जैसे उद्देश्यों वाली दो संस्थाओं का साथ-साथ काम करना मुमकिन नहीं था।

गवर्नमेंट कॉलेज में जनाब ए.एस.हेम विज्ञान विभाग के अध्यक्ष बन कर आ चुके थे। उन्होंने भी हमारे रास्ते में रोड़े अटकाना शुरू कर दिया था। ऐसे हालातों में तय किया गया कि इंस्टीट्यूट की सारी संपत्ति को डा. सी. सी. कैलब की अध्यक्षता वाली नई संस्था को सौंप दिया जाए। वैसे भी डा. कैलब हमारे इंस्टीट्यूट के बेहद सक्रिय सदस्यों में से एक थे। इस तरह नकद धनराशि समेत इंस्टीट्यूट की किताबें, उपकरण वगैरह एस. पी.एस.के. को सौंप दिये गये। डॉ. कैलब एक बड़े वैज्ञानिक विभाग के अध्यक्ष थे, इसलिए उन्होंने एस.पी.एस.के. का कामकाज आसानी से संभाल लिया और आगे बढ़ाया।

अध्याय - 5

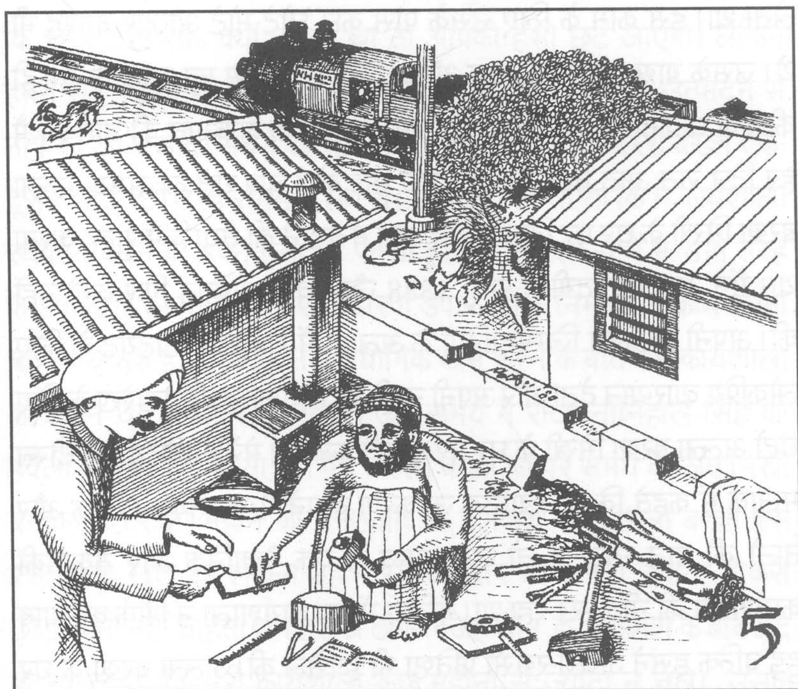
पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट की कार्यशाला

अब मैं कई साल पीछे जाकर उस वैज्ञानिक कार्यशाला के बारे में बताऊंगा, जिसकी स्थापना मैंने सन् 1888 में की थी। यहां मैं इसके जन्म, शुरुआती दिक्कतों और बाद में मिली कामयाबी का जिक्र करूंगा। मार्च 1887 में मैं लाहौर गवर्नमेंट कॉलेज में अध्यापक के पद पर नियुक्त हुआ। कुछ ही समय बाद प्रोफेसर जे. सी. ओमन दो साल की छुट्टी लेकर अध्ययन के लिए इंग्लैंड चले गये। नतीजवन इंटरमीडिएट से लेकर एम. ए. तक की कक्षाओं में रसायन पढ़ाने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर आ गयी। इसके अलावा मेरे कंधों पर पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट के मानद सचिव पद की जिम्मेदारी भी थी। लोकप्रिय व्याख्यानों से गहरे जुड़ाव के कारण मुझे जल्दी ही यह आभास हो गया कि स्कूलों के मामूली उपकरणों की मरम्मत की सहूलियत मुहैया कराये बिना प्रांत में विज्ञान की पढ़ाई कामयाब नहीं हो सकती। मेरे साथ काम करने वाले अन्य लोगों की भी यही राय थी। लेकिन हमारे पास छोटी-सी कार्यशाला की स्थापना के लिए भी धन नहीं था। एक बड़ी दिक्कत और थी। इंस्टीट्यूट के किसी भी अन्य सदस्य को मैं यह भरोसा नहीं दिला पा रहा था कि अगर हम छोटी-सी कार्यशाला की स्थापना के लिए धन जुटा लें तो हम वैज्ञानिक उपकरणों की मरम्मत का काम ले सकते हैं। दरअसल उन दिनों हम सब तरह-तरह की दिक्कतों की आशंका से बुरी तरह भयभीत रहते थे। हम उपकरणों की मरम्मत के बारे में ही सोचकर परेशान रहते थे। नये उपकरण बनाने का तो हमें ख्याल भी नहीं आता था। गौरतलब है कि कॉलेज के विज्ञान विभाग के साथ कार्यशाला

की स्थापना करने का विचार काफी बाद में पनपा। हर किसी ने मेरी योजना पर पानी फेर दिया। लेकिन न जाने क्यों मुझे खुद पर भरोसा था। मुझे विश्वास था कि शुरुआती नाकामियों के बाद मेरी मेहनत रंग लाएगी और मुझे कामयाबी मिलेगी। दरअसल मैंने अपनी शुरुआती जिंदगी में बहुत बुरे दिन झेले हैं, इसलिए मुझमें साहस और विश्वास कूट-कूट कर भरा है। जबकि इंस्टीट्यूट के अन्य साथियों में इसकी कमी थी। हां, कभी -कभी मुझे भी इस प्रयोग की कामयाबी पर शक होने लगता था। मैं अपनी जिंदगी की शुरुआत कर रहा था और मेरे पास इस योजना में लगाने के लिए धन नहीं था। मेरा भरोसा ही एकमात्र पूंजी थी, जिसे मैं इस योजना में लगा सकता था। मुझे पूरा विश्वास था कि अगर मैंने अपना भरोसा कायम रखा तो कामयाबी जरूर मिलेगी। एक पंजाबी कहावत भी यही कहती है, "जब भगवान देता है तो छप्पर फाड़ के भी देता है"। कौन कहता है विश्वास अंधा होता है? आत्म-विश्वास रखने वाला व्यक्ति कभी अंधा नहीं होता। अंधे वही होते हैं, जिनमें आत्म-विश्वास नहीं होता और जिन्होंने कभी जोखिम उठाकर सिर्फ आत्म-विश्वास की दम पर कामयाबी हासिल नहीं की होती। विश्वास कभी अंधा नहीं होता। आत्म-विश्वासी व्यक्ति सब कुछ चीरकर साफ़ देखता है। उसमें पैनी दूर-दृष्टि होती है, जबकि जिन व्यक्तियों में विश्वास नहीं होता, वे भविष्य का कुछ भी नहीं देख पाते। सच ही कहा गया है: "विश्वास में चमत्कारिक शक्ति होती है"।

हेड मिस्त्री अल्ला बख्श

मेरे पास छोटी-सी कार्यशाला की स्थापना के लिए भी धन नहीं था और इंस्टीट्यूट के अन्य सदस्य मेरी इस अनोखी योजना का विरोध कर रहे थे, सो मैंने अपने मकसद को पूरा करने के लिए एक दूसरी तरकीब लगायी। मैंने रेलवे वर्कशॉप में काम करने वाले एक मिस्त्री से कुछ मामूली उपकरणों



पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट की कार्यशाला का कलाकार द्वारा बनाया काल्पनिक चित्र

को बनवाना शुरू किया। वह यह काम अपने घर पर करता था। बाद में यही व्यक्ति मेरी कार्यशाला का हेड मिस्त्री बना। अल्ला बख्श को रेलवे वर्कशॉप से हर महीने 25 रुपये मिलते थे। वह पड़ोसियों का ताला ठीक करके, चाबियां बना के और छोटे-मोटे कई काम करके हर महीने 10 रुपये और कमा लेता था। इस काम के लिए उसके पास कुछ छोटे-मोटे औजार वगैरह भी थे। उसके पास कोयले की एक अंगीठी भी थी, जिस पर बकरे के चमड़ी की एक धौंकनी भी लगी थी। यह सन् 1888 के शुरूआत की बात है। मैं हर दिन रात आठ बजे से आधी रात तक कोई चार घंटे का समय अल्ला बख्श मिस्त्री के घर पर बिताता था। कक्षा में पढ़ाने की तैयारी मैं सुबह करता था। मैंने अपनी जिंदगी में सन् 1888 जैसी कड़ी मेहनत फिर कभी नहीं की। अपनी सरकारी जिम्मेदारियों के अलावा मैं साइंस इंस्टीट्यूट के लिए लोकप्रिय व्याख्यान देता और अपनी नन्ही-सी कार्यशाला की देखरेख के लिए घंटों अल्ला बख्श मिस्त्री के घर पर ड्यूटी बजाता। मेरे इंस्टीट्यूट के दोस्त मज़ाक में कहते कि मैं वैज्ञानिक उपकरण बनाने में व्यस्त हूं। मज़ाक और तानों की बात छोड़ दें तो उस समय मैं एक वैज्ञानिक और तकनीकी कार्यशाला की नींव रख रहा था। भविष्य में यह कार्यशाला न सिर्फ कामयाब हुई बल्कि इसने अच्छी-खासी प्रतिष्ठा भी हासिल की। अल्ला बख्श के घर पर बनाये गये कुछ साधारण उपकरणों को मैंने लागत पर या उससे भी कम कीमत पर स्कूलों में बेच दिया। हां, इनकी लागत में मेरी घंटों की मेहनत का कोई मूल्य शामिल नहीं किया गया था। मेरी मेहनत की कीमत वह खुशी थी, जो मुझे इन्हें बनाने में मिलती थी। अल्ला बख्श का घर एक बेहद संकरी गली के छोर पर था। उसमें दो व्यक्तियों का एक साथ गुजरना मुश्किल था। आज मैं उस गली के बारे में सोचकर भी कांप उठता हूं, पर उस समय अपने शौक के पीछे मैं इतना दीवाना था कि उस गली से गुज़रने में मुझे

बड़ा मज़ा आता था। मैं उस गंदे और अंधेरे घर के छोटे-से आंगन में कई घंटे बड़े मज़े से गुज़ार देता था।

इस तरह एक साल गुज़र गया। मैं और अल्ला बख्श दोनों ही वैज्ञानिक उपकरणों के अपने उत्पादन पर संतुष्ट थे। पर अगर मैं यह बताऊं कि हमने दरअसल क्या बनाया था तो आपकी हंसी छूट जाएगी। लेकिन हमने सन् 1888 में जो बनाया, उसकी तुलना सन् 1942 के उत्पादन से नहीं की जा सकती। सबसे खास बात यह थी कि मैं और अल्ला बख्श एक-दूसरे को अच्छी तरह समझने लगे थे। उसे पूरा भरोसा था कि मैं कार्यशाला स्थापित करने के अपने इरादे में पक्का हूं। इस कार्यशाला में मैं सभी तरह के उपकरणों की मरम्मत और साधारण उपकरणों के निर्माण का काम करना चाहता था। कोई एक साल तक प्रायोगिक काम करने के बाद मैंने कार्यशाला को अपने घर ले जाने की सोची। उस समय मैं राजा नौनिहाल सिंह की हवेली के पास रहा करता था। मैंने अल्ला बख्श को पूरे समय के लिए मिस्त्री बनाकर 45 रुपये महीने की तनख्वाह की पेशकश की। अल्ला बख्श इस प्रस्ताव से खुश था लेकिन वह रेलवे वर्कशॉप की अपनी स्थायी नौकरी छोड़ना भी नहीं चाहता था। इसकी ठोस वजह थी। हर कोशिश के बावजूद हो सकता था कि मेरी कार्यशाला कुछ महीनों से ज्यादा न चले। उसके हर शक और डर को दूर करने के लिए आखिर में मैंने उससे स्टाम्प्ड पेपर पर कम से कम दो साल की नौकरी का पक्का करार कर लिया। पैंतालिस रूपये महीने की तनख्वाह पर इसका मतलब था कि उसकी रेलवे वर्कशॉप की लगभग चार साल की तनख्वाह पक्की हो गयी। बाद में अल्ला बख्श ने मेरी कार्यशाला में अपनी जिंदगी के आखिरी दिन तक हेड मिस्त्री की तरह काम किया। अपने अंतिम दिनों में वह छह-सात महीने के लिए गंभीर रूप से बीमार हो गया। पर उसे हर महीने पूरी तनख्वाह यानी 60 रूपये दिये

जाते थे। उसके इंतकाल के बाद उसकी विधवा को पेंशन दी गयी। पर कुछ महीने पेंशन लेने के बाद उसने किसी दूसरे व्यक्ति से शादी कर ली। इस तरह उसने वर्कशॉप से पेंशन लेने का हक खो दिया।

जब अल्ला बख्श ने मेरे घर में कार्यशाला की जिम्मेदारी संभाली तो वही अकेला मिस्त्री था। साथ में सिर्फ कुछ मजदूर थे। लेकिन जैसे - जैसे काम बढ़ने लगा, वैसे - वैसे उसने कई लोगों को काम सिखाकर तैयार कर लिया। वह बड़े लोगों को काम पर लगाने के हक में नहीं था। वह 12 से 15 साल की उम्र के लड़कों को लेकर काम सिखाया करता था। उससे वे हमेशा के लिए अल्ला बख्श के साथ जुड़ जाते थे और उन्हें विज्ञान के प्रारंभिक सिद्धांतों की जानकारी भी हो जाती थी। अल्ला बख्श ने खुद यह जानकारी उसी समय हासिल कर ली थी, जब मैं उसके घर पर घंटों बैठकर काम किया करता था। मेरा खुद का तजुर्बा भी यही क़हता है कि अल्ला बख्श बड़े लोगों की जगह लड़कों को लेकर बिलकुल ठीक करता था। दरअसल बड़े लोगों के काम करने की आदतें पक्की पड़ जाती हैं। उन्हें काम करने के नये तौर-तरीके सिखाना आसान नहीं होता। मैं 20 साल की उम्र के ऐसे कई लड़कों को जानता हूं; जिन्होंने हमारी कार्यशाला में छह-सात साल तक अल्ला बख्श से काम सीखा और जिनकी तनख्वाह 10 या 15 रुपये महीने से बढ़ते-बढ़ते 35 या 40 रुपये हो गयी थी। उन्हें तुरंत कलकत्ता की *बामर लॉरी एंड कंपनी* या अपने प्रांत की उत्तर-पश्चिमी रेलवे में 150 से 200 रुपये महीने की तनख्वाह पर नौकरी मिल गई। मेरे यहां के ऐसे दो लड़कों को बिजली का पंखा ठीक करने की नौकरी मिल गई। वे कई ऐसे काम भी करते थे, जिनमें दिमाग और कुशलता की जरूरत पड़ती है। छोटे लड़कों को अगर ठीक से काम सिखाया जाय तो वे बिजली के पंखे और मोटर इंजन को शुरू से लेकर आखिर तक बना सकते हैं। हां, इतना जरूर है

कि उस विभाग के इंचार्ज को अपने काम में दक्ष होना चाहिए और उसमें लड़कों को काम सिखाने की दिलचस्पी भी होनी चाहिए। बड़े पैमाने पर उत्पादन कोई कठिन काम नहीं है। इसकी कामयाबी की पहली शर्त यह है कि उस वस्तु की बड़े पैमाने पर खपत भी होनी चाहिए।

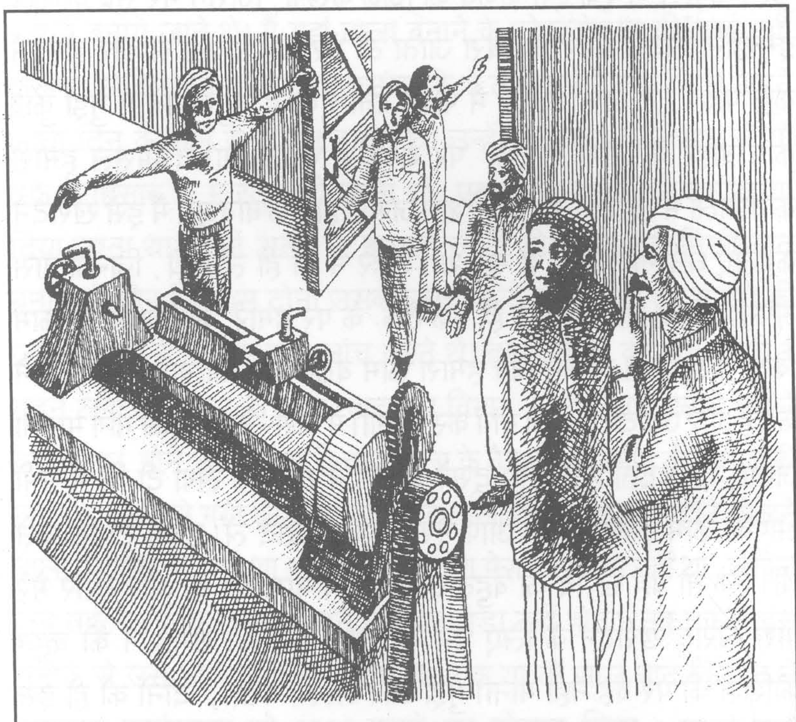
ताला और तिजोरी विभाग

मैंने गवर्नमेंट कॉलेज में प्रोफेसर की तनख्वाह से जो कुछ बचाया था, उसे ही कार्यशाला की स्थापना में लगा दिया । यह रकम लगभग 1500 रुपये थी। जब अल्ला बख्श मेरी कार्यशाला में पूरे समय काम करने लगा, तो कार्यशाला का कामकाज दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ने लगा। पहले पीतल की ढलाई वगैरह का सारा काम प्रति पीस की दर पर बाहर से कराया जाता था। पर जैसे-जैसे काम बढ़ने लगा, इस बंदोबस्त से दिक्कतें भी बढ़ने लगीं। बाहर के लोग ज्यादा पैसा मांगने लगे। कभी-कभी वे इतनी ऊंची दर की मांग करते थे कि हमारे लिए भुगतान करना नामुमकिन होता था। इसलिए कार्यशाला में ढलाई का एक छोटा विभाग खोला गया। कार्यशाला में काम करने वाले सारे लोगों को व्यस्त रखने के लिए मेरे पास पर्याप्त काम नहीं था। इसलिए मैंने हैड मिस्त्री को बाहर का काम लेने की इजाजत दे दी। कुछ साल बाद ताला बनाने का एक विभाग भी खोला गया । इसका असल मकसद हमारे प्रशिक्षित मिस्त्रियों की बढ़ती तादाद को आधादिन के लिए ताला बनाने में व्यस्त रखना था। मेरे पास मिस्त्रियों की भारी तादाद को हर महीने तनख्वाह देने के लिए धन नहीं था। इसलिए मैंने ताला बनाने के विभाग में प्रति ताला मजदूरी देने का फैसला किया। इस बीच इस विभाग का नाम बदलकर ताला और तिजोरी विभाग कर दिया गया। मैंने और अल्ला बख्श ने मिलकर कोई एक महीने तक तरह-तरह के ताले और चाबियों को बनाया, आजमाया और परखा। आखिर में हम दो तरह के ऐसे ताले बनाने में कामयाब

हुए, जिनमें कोई और चाबी नहीं लग सकती थी। इन्हें सिर्फ तोड़कर ही खोला जा सकता था। इनकी चाबियां हेड मिस्त्री बनाते थे और मैं चाबियों को संभालकर अपने पास रखता था। हर ताले के साथ दो चाबियां दी जाती थीं। सभी ताले हमारी कार्यशाला में मेरे और अल्ला बख्श की निजी देख-रेख में बनाये जाते थे। मैं यहां ताला बनाने के पूरे बंदोबस्त की चर्चा नहीं करूंगा, लेकिन इतना जरूर बताऊंगा कि ये ताले हमारे कुछ मिस्त्री अपने आधा दिन के काम के दौरान बनाते थे। उन्हें प्रति ताले के हिसाब से यो ठेके के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी। एक ताला बनाने पर एक रुपया दिया जाता था। चाबी अलग से बनवाई जाती थी। चाबी हेड मिस्त्री खुद बनाते थे और फिर हम दोनों उसकी जांच करते थे। शायद यह बताने की जरूरत नहीं है कि हम क्या जांच करते थे। हमारे तालों की मांग तेज़ी से बढ़ने लगी और कुछ ही समय बाद इस विभाग से हमें 100 रूपये महीने का मुनाफ़ा होने लगा। हमारी कार्यशाला के वैज्ञानिक विभाग की कामयाबी लगभग पक्की हो गयी थी। इसकी वजह ताला विभाग से हर महीने मिलने वाला नियमित मुनाफ़ा था। वैसे ताला बनाना मेरा कोई धंधा नहीं था, लेकिन जब तक वैज्ञानिक विभाग अपने पैरों पर खड़ा नहीं होता, तब तक मैं इस मुनाफे से उसे भी सहारा दे सकता था। एक या दो साल बाद किस्मत ने अचानक कार्यशाला को 3000 रुपये का तोहफा दिया। इससे मुझे कार्यशाला की कामयाबी का पूरा भरोसा हो गया। कुछ समय बाद आर. बी. लबधा राम और राय मुल राज के दोस्ताना आग्रह पर ताला विभाग बंद कर दिया गया। दरअसल ये महानुभाव बड़े पैमाने पर ताला बनाने का कारोबार करना चाहते थे। नतीजन ताला बनाने की बड़ी कार्यशाला स्थापित की गयी, जो लगभग तीन-चार साल तक चली। बाद में सही देख-रेख न होने के कारण तालों की क्वालिटी गिर गई, जिससे कंपनी की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई। भारी नुकसान उठाकर कंपनी बंद करनी पड़ी।

खराद

जिस व्यक्ति में खुद पर और अपने मकसद पर भरोसा होता है, कामयाबी उसके पीछे - पीछे परछाई की तरह चलती है। इस कथन की सच्चाई साबित करने के लिए मैं एक ऐसे वाकये का जिक्र करूंगा, जिसने मेरे सब्र का खूब इम्तहान लिया। अगर मैं घबरा जाता तो मेरा यह सपना साकार होने से कहीं पहले टूट जाता। जैसा मैं पहले बता चुका हूं, शुरूआत में मुझे कुछ काम बाहर के लोगों से ठेके पर करवाना पड़ता था। दरअसल हमारी कार्यशाला में खराद (लेथ) नहीं था। जरूरी होने के बावजूद मैं इसे खरीदने के लिए धन नहीं जुटा पा रहा था। शहर में दो ही लोग थे, जिनके पास अपना खराद था। इनमें से ही एक ठेके के पर हमारी कार्यशाला का काम किया करता था। लेकिन जब हमारा काम बढ़ने लगा तो बजाय कम करने के वह और ज्यादा पैसों की मांग करने लगा। मैं जैसे-जैसे उसकी मांग मानता जाता, वह बढ़ता ही जाता। दूसरे व्यक्ति ने यह शर्त लगा दी कि मैं तभी आपका काम करूंगा, जब आप मेरा खराद खरीद लें। इसमें दो दिक्कते थीं। एक तो वह खराद का बहुत ज्यादा दाम मांग रहा था और दूसरे मेरे पास खराद खरीदने के लिए धन नहीं था। मैंने उसे समझाने की बहुत कोशिश की पर वह नहीं माना। मुझे और अल्ला बख्श, दोनों को ही इस मुश्किल से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। हमें कई सवाल परेशान कर रहे थे। अगर मैं बैंक से कर्ज लेकर किसी तरह नया खराद खरीद भी लूं, तो क्या वह हमारे काम के लिए सही होगा। बिना किसी निजी तजुर्बे के क्या कलकत्ता या बंबई की किसी कंपनी से खराद खरीदना ठीक होगा। पूरी उम्मीद थी कि कंपनी मेरी जरूरत के मुताबिक खराद नहीं भेज पाएगी। यह भी उम्मीद थी कि वे मेरा आर्डर बुक कर लेते और फिर इंग्लैंड से खराद आने तक तीन-चार महीने के लिए इंतजार करने को कहते । लाहौर के दोनों



' खराद लगी देखकर वे हैरत में पड गये '

खराद मालिकों को शायद इन दिक्कतों की पूरी जानकारी थी। अगर ऐसा न होता तो मेरे साथ टेढ़ा बर्ताव करने से पहले वे कई बार सोचते। एक दिन बहुत हताश होकर मैंने अल्ला बख्श से पूछा कि मान लो हम खराद खरीद लें तो क्या उस पर काम करने के लिए हमें कोई अच्छा मिस्त्री मिल जाएगा। उन दोनों में से किसी एक को काम पर रखना कोरी बेवकूफी होती। वे मेरे लिए हर रोज कोई न कोई नई परेशानी खड़ी करते और मेरे साथ काम करने वाले और लोगों को भी काम न करने के लिए बरगलाते। अल्ला बख्श ने बताया कि वह खराद पर अच्छा काम करने वाले तीन-चार लोगों को जानता है। मैंने उससे उन्हें एक-एक करके भेजने को कहा। जब वे मेरे पास आये तो मैंने शुरुआती पूछताछ के बाद हर से एक सवाल पूछा - " क्या आपकी जानकारी में कोई पुरानी खराद बिक्री के लिए उपलब्ध है "[11] । मैंने उनसे कहा कि जो भी मुझे सबसे पहले पुरानी खराद दिलवा देगा, उसे ही मैं बढ़िया तनख्वाह पर अपने यहां रख लूंगा। फिर संयोग से पता चला कि एक बढ़िया खराद कुसुर में बिक्री के लिए उपलब्ध है और उसका मालिक ठीक दाम पर इसे बेचने के लिए तैयार भी है। ऐसे संयोग उन्हीं लोगों के साथ घटते हैं, जो कामयाबी के हकदार होते हैं। मैं तुरंत इसे खरीदने के लिए तैयार हो गया। किस्मत की बात देखिए कि जिस आदमी ने मुझे यह खबर दी वह बेरोजगार था और नौकरी की तलाश कर रहा था। वह सिर्फ एक अच्छा खरादी ही नहीं था, बल्कि *फिटिंग* का काम भी कर सकता था। मैंने तुरंत उसकी माहवार तनख्वाह खराद खरीदने की शर्त के साथ तय कर दी। कोई एक महीने से ज्यादा समय से छाये अंधकार और हताशा के माहौल में रोशनी की एक किरण फूट पड़ी थी। मेरी कार्यशाला खत्म होने से बच सकती थी। पहली छुट्टी पर ही मैं और मेरा नया खरादी कुसुर से 16 मील दूर फिरोजपुर की ओर चल दिये। वहां मेरे कुछ अच्छे दोस्त रहते थे। मैंने

उनसे किसी ऐसे व्यक्ति को मेरे साथ भेजने के लिए कहा, जो कुसुर में खराद के मालिक को जानता हो। सब कुछ बहुत बढ़िया चल रहा था। कोई एक-दो घंटे में एक घड़ीसाज़ मेरे साथ कर दिया गया। वह खराद के मालिक को बहुत अच्छी तरह से जानता था। इसलिए सौदा तय कराने में हमारी मदद कर सकता था। हम तुरंत कुसुर की ओर रवाना हो गये। खराद का मालिक मुझे जानता था। यहां तक कि वह एक बार लाहौर में मेरी कार्यशाला में मिस्त्री से किसी मशीन का पुर्जा भी बनवाने आया था। वह खराद तुरंत बेचना चाहता था, इसलिए उसने नयी खराद की खरीद की रसीद मेरे सामने रख दी। उसने खराद लगभग 1000 रुपयों में खरीदी थी और इसे दो-तीन साल इस्तेमाल कर चुका था। उसमें पुल्ली, ब्रेकेट वगैरह सब लगे थे। मेरे खरादी ने उसे चलाकर देखा तो एकदम चालू हालत में पाया। सबसे खास बात यह थी कि वह इसके सिर्फ 350 रुपये मांग रहा था। इससे अच्छा सौदा और क्या हो सकता था। उसने मोल-भाव की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी थी। कीमत ठीक थी और मेरी जेब के माफिक भी थी। मैंने तुरंत वहीं चेक काट दिया, जिसे उसने खुशी-खुशी कबूल भी कर लिया। अब मैं सारे साज-सामान समेत एक अच्छे खराद का मालिक था। ऐसे में मैं वहां रुककर समय गंवाना नहीं चाहता था। आप मेरी खुशी का अंदाजा इस बात से लगायें कि मैंने वहीं खड़े रहकर मशीन और उसके सारे साज-सामान को अपने सामने बैलगाड़ी में लदवाया और रेलवे स्टेशन की ओर चल दिया। मैंने खुशी के मारे मशीन को अपने साथ ही लाहौर जाने वाली सवारी गाड़ी में ही चढ़वा लिया। गाड़ी रात में कोई दस बजे लाहौर पहुंची। जैसे ही मशीन और उसके सारे साज-सामान के डिब्बे गाड़ी से उतारे गये, वैसे ही मैंने अपने खरादी को बैलगाड़ी लाने के लिए भेज दिया। मैं खराद को घर पहुंचाकर अपनी कार्यशाला में लगवाने के लिए उतावला हो रहा था। मैंने खरादी को एक दिन

की छुट्टी इनाम में देने का लालच देकर नौकरों की मदद से तुरंत खराद लगाने के लिए राजी कर लिया। आधी रात में कोई दो बजे तक खराद पूरी तरह से बैठ गयी। मैंने एक *एयर-पंप* की नली का काम करवाकर उसे परख भी लिया। यही *एयर-पंप* पुराने खरादियों के साथ मेरे झंझट की जड़ था।

अगली सुबह जब कार्यशाला खुली तो सारे मिस्त्री वहां खराद लगा देखकर हैरत में पड़ गये। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि एकाएक यह खराद यहां कैसे आ गया। यह कब कार्यशाला लाया गया और इसे कब लगाया गया। इस समय तो ऐसा लग रहा था, जैसे वहां न जाने कब से खराद लगा रहा हो। कल शाम जब वे यहां से गये थे तो इसका नामो-निशान भी नहीं था, लेकिन अब जैसे जादू के ज़ोर से खराद एकाएक वहां प्रकट हो गया हो। जल्दी ही यह खबर न सिर्फ उन दोनों खराद मालिकों तक पहुंच गयी, बल्कि मिस्त्रियों के मोहल्ले मोची गेट क्वार्टर्स में भी फैल गयी। कहने की जरूरत नहीं कि फिर मेरा उन दोनों खरादियों से कभी कोई झंझट नहीं हुआ। बल्कि वे दोनों खरादी मेरे मिस्त्री से बाहर का कोई काम न लेने की प्रार्थना करने लगे। उन्हें डर था कि इससे उनके धंधे को धक्का पहुंचेगा।

नाजुक उपकरणों की मरम्मत

सन् 1889 की गर्मियों में प्रोफेसर ओमन इंग्लैंड से वापस आ गये। उन्हें अपनी गैर-मौजूदगी में मेरा कार्यशाला खोलने का काम ज्यादा पसंद नहीं आया। उन्होंने हमारे काम को सिर्फ स्कूली उपकरणों की मरम्मत तक सीमित रखने पर बहुत ज़ोर दिया। ऐसी हालत में कार्यशाला के काम को आगे बढ़ाने की रफ्तार थोड़ी कम करने में ही मेरी समझदारी थी। पर दिक्कत यह थी कि हमारे पास मरम्मत का ज्यादा काम नहीं था। जो कुछ थोड़े-बहुत मिस्त्री हमारे पास थे, उन्हें काम में लगाये रखने के लिए साधारण वैज्ञानिक उपकरणों का कार्यशाला में बनाना बहुत जरूरी था। मैं बाहर का बहुत-सा काम अच्छी

दरों पर इकट्ठा कर सकता था, पर इससे मेरी कार्यशाला का वैज्ञानिक स्वरूप बिगड़ जाता, जो मैं कई कारणों से नहीं चाहता था। इसलिए इस विचार को मैंने दिमाग से बाहर निकाल दिया।

अपने रोजाना बढ़ते तजुर्बे की वजह से हम जल्दी ही जटिल उपकरणों की मरम्मत करने के काबिल भी हो गये। इंस्टीट्यूट के लोकप्रिय व्याख्यानों की वजह से हमारी कार्यशाला की प्रसिद्धि प्रांत भर में फैल गई थी। यहां तक कि पी. डब्ल्यू. डी. के कुछ अफसर मरम्मत के लिए अपने उपकरण हमारे यहां भेजने लगे। तरह-तरह के नाजुक उपकरणों की मरम्मत का मौका मिलने के कारण हमारे मिस्त्रियों में खूब आत्म-विश्वास भर गया था। इससे उनमें स्कूल-कॉलेज के जटिल उपकरणों को बनाने की हिम्मत भी पैदा हो गयी थी।

केंद्रीय प्रांत के हीरा लाल से संपर्क

पिछली शताब्दी के आखिरी दशक की शुरुआत होते-होते मेरी कार्यशाला एक छोटी, पर सम्मानित संस्था के रूप में स्थापित हो चुकी थी। ऊंचे दर्जे के वैज्ञानिक उपकरण बनाने के लिए हमारी संस्था का नाम था। यह सब तब हुआ, जबकि मैंने खुद इसके प्रसार पर लगाम रखी थी। इसकी असाधारण प्रगति से हर कोई चकित था। खुद मैं भी हैरान था। सबसे ज्यादा मदद उन जगहों से मिली, जहां से उम्मीद नहीं थी। लाहौर के बाजार में पीतल, जस्ता आदि धातुओं की चादरें और पीतल व तांबे के सही मोटाई के तार खरीदने में बहुत दिक्कत होती थी। इसलिए मैंने गर्मियों की छुट्टी में खुद बंबई जाने की सोची। मैंने किसी तरह बचत करके 1000 रुपये जमा कर रखे थे। मैंने यह सोचकर सारे रुपये अपने पास रख लिये कि वहां कोई ऐसी चीज़ खरीद लूंगा, जिससे मेरे सफर का कुछ खर्च वसूल हो सके। बंबई पहुंचकर मैंने पाया कि वहां हर गली

स्वागत कर रही थी। मैं इसके पहले भी कई बार बंबई आ चुका था, पर कारोबार के इरादे से पहली बार आया था। अपनी जरूरत के कुछ सामान खरीदने के बाद मैं वैज्ञानिक उपकरण बनाने वाली एक ब्रिटिश कंपनी के स्थानीय दफ्तर में गया। हमने इसे कुछ ग्लास ट्यूब, रॉड वगैरह बनाने का छोटा-सा ऑर्डर दे रखा था। मैंने सोचा कि अगर यह सामान मिल जाए तो मैं इसे अपने साथ ही लेता चलूं। उस समय दुकान पर बैठा व्यक्ति हमारे ऑर्डर के बारे में नहीं जानता था। इसलिए वह एक बड़े रजिस्टर के पन्ने पलटने लगा, जिसमें वैज्ञानिक उपकरणों के सभी ऑर्डर दर्ज थे। तभी मेरी निगाह एक पन्ने पर पड़ी, जिसमें *टेटे एयर-पंप* का आर्डर किसी जनाब हीरा लाल के नाम पर दर्ज था। उनका पता था - साइंस इंस्ट्रक्टर, होशंगाबाद, सेंट्रल प्रॉविंस। यह जानकारी मेरे लिए महत्त्वपूर्ण थी। वहां का काम खत्म करके घर वापस आते ही मैंने अपना छोटा-सा कैटेलॉग एक लंबे खत के साथ जनाब हीरा लाल को भेज दिया। मैंने खत में पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट और इससे जु ड़ी कार्यशाला के इतिहास की संक्षिप्त जानकारी भी दे दी। एयर-पंप के ऑर्डर का जिक्र करते हुए मैंने लिखा कि हम उनकी जरूरत के किसी भी उपकरण के साथ एक एयर-पंप भेज सकते हैं। साथ ही मैंने यह भी लिख दिया कि हम ऑर्डर मिलने पर आपकी जरूरत का हर उपकरण भेज देंगे। अगर किसी वजह से आपको उपकरण पसंद न आये तो उसे आप हमारे खर्च पर वापस भेज सकते हैं। ब्रिटिश कंपनी की तुलना में हमारे उपकरणों की कीमत आधी थी। इतनी लुभावनी शर्तों की पेशकश के जवाब में किसी हिंदुस्तानी ग्राहक से एक ही उम्मीद क़ी जा सकती थी। लाहौर लौटने पर मुझे हीरालाल का एक बहुत उत्साह बढ़ाने वाला खत मिला। कहने की जरूरत नहीं कि हमें लंबे समय तक जनाब हीरालाल के ऑर्डर मिलते रहे। इसका मतलब था पूरे केंद्रीय प्रांत के ऑर्डर मिलना।

जनाब हीरालाल केंद्रीय प्रांत के सभी स्कूलों के लिए इंस्ट्रक्टर थे। वह कभी एक जिले में रहते तो कभी दूसरे में। वह एक बहुत ही कुशल और उत्साही सज्जन थे। इसीलिए वह अपने प्रांत में कार्यकारी डिप्टी कमिश्नर के ऊंचे पद तक पहुंचे। बाद के सालों में मेरी उनसे कई बार मुलाकात हुई। अच्छे दोस्तों की तरह हमारे बीच लंबे समय तक खत-किताबत चलती रही।

कार्यशाला को किस्मत का तोहफ़ा

मैं बंबई में घटी एक और अनोखी घटना का जिक्र करना चाहूंगा। इससे बैठे बिठाये 3000 रुपये मेरी झोली में आ गिरे। जब मैं किसी नई जगह जाता हूं, तो एक-दो दिन सिर्फ वहां यूं ही घूमने के लिए बचा कर रखता हूं। यह मेरी पुरानी आदत है। बंबई जैसे बड़े शहर में जब मैं अपना काम-काज खत्म कर लेता हूं, तो मेरा मन करता है कि सुबह से लेकर रात तक यूं ही सड़कों पर घूमता रहूं। ऐसे में मुझे ढंग से खाने-पीने की भी कोई परवाह नहीं रहती। जहां भी, जो भी मिलता है, वही खाने में मज़ा आता है। कभी मैं सड़क के किनारे स्थित आर्मेनियन रेस्तरां में धुस जाता हूं और एक प्याला चाय के साथ केक खा लेता हूं या फिर अंडा और डबलरोटी-मक्खन मंगा लेता हूं। अगर बहुत ज्यादा मन हुआ तो एक भुना मुर्गा मंगाया और पूरा का पूरा डकार लिया। एक दिन मैं ऐसे ही बंबई की सड़कों पर घूम रहा था कि ज़ोर से बारिश होने लगी। तभी मैंने देखा कि एक दुकान में बहुत भीड़ लगी है। मैंने सोचा चलो इसी दुकान में घुसकर भीगने से बचा जाय। अंदर कुछ वैज्ञानिक उपकरणों की नीलामी हो रही थी। दरअसल वैज्ञानिक उपकरण बनाने वाली एक कंपनी अपना काम-काज समेटकर दुकान बंद कर रही थी। इसलिए दुकान का सारा माल नीलामी से बेचा जा रहा था। एक पारसी व्यक्ति चांदी जैसी चमकती तीन प्यालियों को हाथ में लाये आखिरी बोली की आवाज लगा रहा था "चार रुपये... चार रुपये...."। मैंने उससे पूछा

कि क्या मैं इन्हें देख सकता हूं। प्यालियों को हाथ में लेते ही उनके एक रंग-रूप और लचीलेपन से मुझे पता लग गया कि दरअसल वे किस धातु से बनी हैं। कोई बेवकूफ ही उनकी असलियत समझने में गलती कर सकता था। प्यालियों को वापस करके मैंने छह रुपये की बोली लगा दी। मेरे बगल में खड़ा व्यक्ति इस एकाएक उछाल से हैरान हो गया। उसने धीरे से कहा ``अगर आप यह समझ रहे हो कि ये चांदी की हैं तो आप गलती कर रहे हो "। इस पर मैंने कहा, "नहीं, ये चांदी की नहीं, सोने की हैं।`` पारसी ने कहा कि आप नकद पैसा जमा करा दो, तभी आपकी बोली मंजूर की जाएगी। मैंने अपनी बास्कट की भीतरी जेब से सौ-सौ रुपये के सात नोट बाहर निकाले और एक नोंट उसे पकड़ाते हुए कहा, "इसे रख लो, हो सकता है अभी मैं कुछ और भी खरीदूं। "मेरी इस हरकत पर वहां मौजूद लोग हैरान हो गये। फिर मैंने कहा कि मेरे पास इस समय जितना पैसा है, सब मैं यहीं खर्च करके जाऊंगा। इस पर लोग फुसफुसाने लगे `पागल है...,पागल है..."। मेरे हक में यह बहुत अच्छा हुआ। पागल आदमी के सामने कौन बोली लगाता ! प्लेटिनम की वे तीनों प्यालियां मुझे सिर्फ छह रुपये में मिल गयीं। जी हां, वे प्यालियां प्लेटिनम की थीं। मैंने उन्हें बास्कट की जेब में रख लिया। इसके बाद और भी बहुत से वैज्ञानिक उपकरणों व सामानों की नीलामी हुई, जैसे ग्रोव बैटरी सेल की 20 प्लेटें, तीन-चार विम्बसर्ट मशीनें, ढेर सारी कार्बन प्लेटें, सूत और रेशम चढ़े बिजली के तार, बिजली की घंटियां, बैटरियां वगैरह। नीलामी के सामान की पूरी जानकारी देने से कोई फायदा नहीं है। मेरा यूं ही घूमना इससे ज्यादा फायदेमंद कभी साबित नहीं हुआ। मैंने ज्यादातर सामान कुल 124 रुपये में खरीद लिया फिर मैंने सारा सामान खुद ठीक से डिब्बे में पैक करवाया और रेलवे स्टेशन से अपने लाहौर के पते पर बुक करवा दिया। हां, प्लेटिनम की चीजें मैंने अपने पास ही रख

लीं।

लाहौर वापस आने पर मैंने ब्रिटिश कंपनी की कीमतों से आधी कीमत पर लगभग सारा सामान बेच दिया। सिर्फ प्लेटिनम की चीजों, बिजली के तारों और कार्बन की प्लेटों को अपने पास रख लिया। बाद में प्लेटिनम की प्लेटों और प्यालियों को भी बाजार से 25 फीसदी कम दर पर बेच दिया गया। मेरा अनुमान है कि इस तरह एक पागल आदमी ने कम से कम 3000 रुपये का शुद्ध मुनाफ़ा कमा लिया। यह सारा पैसा मैंने कार्यशाला के खाते में जमा करा दिया। इससे संस्थान की कुल पूंजी काफी बढ़ गई। किस्मत के इस खूबसूरत तोहफे से उत्साहित होकर मैंने अपना 700 रुपया भी कार्यशाला के लिए कुछ जरूरी औज़ार और सामान खरीदने में खर्च कर दिया। इस तरह कार्यशाला का काम-काज और ज्यादा फैलाने में मदद मिली।

इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल मास्टर प्यारे लाल

अब कार्यशाला की माली हालत ठीक हो गयी थी। किस्मत के तोहफे को मैंने एक खास मकसद के लिए इस्तेमाल किया। मैंने कुछ स्कूलों को कुछ साधारण वैज्ञानिक उपकरण भेंट कर दिये। इनकी कीमत चार से सात रुपये के बीच थी। इस तरह कुछ सौ रुपये खर्च हो गये। इसके अलावा मैंने प्रांत के सभी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल को एक चिट्ठी लिखी। इसमें मैंने उन्हें कार्यशाला की संतोषजनक प्रगति की जानकारी दी और कोई एक दर्जन चुने हुए उपकरण भेजने की पेशकश भी की। मैंने लिखा कि उपकरणों के साथ हमारा एक मिस्त्री भी जाएगा, जो उपकरण को वहीं चलाकर दिखाएगा। इसका मकसद हमारे उपकरणों में उनकी दिलचस्पी पैदा करना था। मुझे उम्मीद थी कि अगर वे हमारे उपकरणों से संतुष्ट हुए, तो अपने स्कूलों में हमारे उपकरणों की खरीद का बंदोबस्त करवा देंगे। प्रांत के पांच वरिष्ठ इंस्पेक्टरों में से चार ने चिट्ठी का जवाब देने की तो दूर, चिट्ठी मिलने की सूचना भी

नहीं दी। मुझे सिर्फ प्रांत के पांचवे इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल मास्टर प्यारे लाल का जवाब मिला। वह जालंधर र्सकल के इंचार्ज थे। उन्होंने लिखा कि वह संस्थान की कामयाबी के बारे में सुन चुके हैं और हमारे उपकरणों को देखना चाहते हैं। पर इसके लिए वह हमें उपकरणों को जालंधर भेजने की परेशानी व खर्च से मुक्त रखना चाहते थे। उन्होंने लिखा कि वह खुद जल्दी से जल्दी कार्यशाला आकर उपकरणों को बनता हुआ देखेंगे। कुछ समय बाद उन्होंने मुझे सूचना दी कि वह थोड़े समय के लिए लाहौर आ रहे हैं और फलां-फलां तारीख को अपने छोटे भाई जनाब मदन गोपाल, बार- एट-लॉर के पास ठहरेंगे । नियत समय पर मैं जनाब मदन गोपाल के घर गया और उन्हें कार्यशाला ले आया। उन्होंने कोई तीन घंटे कार्यशाला में बिताये। हर उपकरण को अपनी आंखों के सामने बनते देखा और बहुत-से उपकरणों की बाबत छोटी-छोटी बातों की जानकारी ली। उन्होंने इस दौरे के बाद कार्यशाला की प्रगति में लगातार जो दिलचस्पी ली, उसके लिए मैं उनका तहे दिल से शुक्रगुज़ार हूं। संघर्ष के उन शुरुआती दिनों में अगर मास्टर प्यारे लाल और जनाब हीरा लाल मुझे बढ़ावा नहीं देते तो कार्यशाला शायद ही कामयाबी की मंजिल की ओर बढ़ती। उसकी दशा हमेशा दयनीय बनी रहती। एक युरोपियन आला अफसर ने एक बार मुझसे कहा था कि वह कार्यशाला जैसी औद्योगिक गतिविधि को बढ़ावा देकर अपने भाइयों का गला काटना नहीं चाहते। हालांकि , बाद में उन्होंने अपनी इस टिप्पणी पर पछतावा भी जाहिर किया था। बाद में इंस्ट्रक्शन विभाग के अध्यक्ष ने प्रांत के स्कूलों में विज्ञान पढ़ाने की सुविधाओं को बढ़ाने के लिए अधिकारिक तौर पर कार्यशला के प्रति आभार प्रकट किया था।

पूना में औद्योगिक सम्मेलन

लगभग इसी समय कुछ ऐसे हालात बने कि हमारी छोटी-सी कार्यशाला

में बने उपकरण विदेशों से मंगाये गये उपकरणों की तुलना में बेहतर साबित हुए। सन् 1893 की गर्मियों में मुझे अपने पूना के दोस्त जनाब माधवराव नामजोशी [22] से सर्दियों में वहां आयोजित होने वाले एक औद्योगिक सम्मेलन में भाग लेने का न्यौता मिला। जनाब नामजोशी देश के औद्योगिक विकास के लिए काम करने वाली जानी-मानी हस्ती थे। इसीलिए सम्मेलन के आयोजकों ने उन्हें सम्मेलन का मानद सचिव बनाया था। मुझे याद पड़ता है कि उन्होंने महाराष्ट्र के उत्पादों की एक छोटी-सी नुमाइश भी लगायी थी। कार्यशाला के काम को ज्यादा से ज्यादा लोगों की निगाह में लाने का यह मौका छोड़ने का क़ोई सवाल ही नहीं था। खासतौर से इसलिए कि इस सम्मेलन में नई औद्योगिक गतिविधियों पर ज़ोर दिया जाना था, मैंने न्यौता कबूल कर लिया और अपने हेड मिस्त्री के साथ पूना पहुंच गया। मैं अपनी कार्यशाला में बने वैज्ञानिक उपकरणों के कई डिब्बे भी अपने साथ ले गया था।

जनाब नामजोशी ने अपने घर पर ही मेरे रहने का बंदोबस्त किया था। लेकिन पहले ही दिन एक ऐसी दिलचस्प घटना घटी, जिसका मैं यहां सरसरी तौर पर जिक्र करना चाहता हूं। सम्मेलन की कार्रवाही पूरे ज़ोर पर थी कि महादेव गोविंद रानाडे वहां पधारे और ठीक मेरे सामने वाली कुर्सी पर बैठ गये। पर मेरे और उनके दरमयान पांच-छह फुट का फासला था। मैंने सिर झुकाकर उनका अभिवादन किया। मुझे देखते ही वह अपनी कुर्सी से उठकर मेरे पास आये और अपने किसी बिछुड़े हुए बच्चे की तरह मुझे सीने से लगा लिया। मुझसे कुछ भी कहे बिना वह लोगों की तरफ मुखातिब होकर बोले, "साहबानों, मैं आपको अपने दोस्त लाहौरवाला से मिलवाना चाहता हूं। हो सकता है उस समय उन्हें मेरा नाम याद न आया हो। पर मुझे लगता है कि उन्होंने लाहौरवाला नाम का इस्तेमाल


महादेव गोविंद रानाडे

होकर बोले, "साहबानों, मैं आपको अपने दोस्त लाहौरवाला से मिलवाना चाहता हूं।" हो सकता है उस समय उन्हें मेरा नाम याद न आया हो। पर मुझे लगता है कि उन्होंने लाहौरवाला नाम का इस्तेमाल जानबूझकर मेरे प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करने के लिए किया था। यहां मैं पाठकों का ध्यान रानाडे की एक खास आदत की ओर दिलाना चाहता हूं। छोटी-छोटी बातों के लिए भी सम्मेलन की कार्रवाई के बीच में हस्तक्षेप करने की उनकी आदत थी। मसलन सिर्फ मेरा परिचय करवाने के लिए ही उन्होंने सम्मेलन की कार्रवाई में हस्तक्षेप किया था। समाज की परम्पराओं की परवाह न करने के लिए रानाडे मशहूर थे। आखिर वह पूना के "ग्रैंड ओल्ड मैन" कहलाते थे। फिर भी उन्हें हर जगह बेहद श्रद्धा और सम्मान की निगाह से देखा जाता था, क्योंकि वह सबके साथ पिता जैसा प्रेम भरा व्यवहार करते थे। सुबह की कार्रवाई खत्म होने पर उन्होंने नामजोशी से मेरा सामान अपने घर भेजने के लिए कहा। उनसे न कहने की कोई गुंजाइश नहीं थी। इस तरह मुझे पांच -छह दिन रानाडे के साथ एक ही छत के नीचे गुज़ारने का सम्मानजनक मौका मिला। इस प्रकांड विद्वान और नेता की बाकी सात सालों की जिंदगी में मुझे ऐसा सुनहरा मौका एक बार और मिला। सम्मेलन के बारे में बताने से पहले मैं रानाडे के बारे में कुछ कहना जरूरी समझता हूं। मैं यहां सिर्फ उन एक-दो बातों का ही जिक्र करूंगा, जो मुझे ज्यादा दिलचस्प लगीं। वह हर सुबह लंबी सैर को जाते थे और उनके साथ

का फायदा उठाने के लिए मैं भी उनके साथ हो लेता था। रास्ते में वह कभी किसी, तो कभी किसी दोस्त को भी अपने साथ ले लेते। मैंने उनकी आज़ाद तबियत के बारे में काफी कुछ सुन रखा था। फिर भी मुझे यह देखकर बड़ा ताज्जुब होता कि वह दोस्तों को बुलाने के लिए बीच सड़क से ही नाम लेकर ज़ोर से पुकारते। जबकि कभी-कभी वे दोस्त गर्वनर कौंसिल के सदस्य जैसे प्रतिष्ठित पद पर होते थे। मेरे जैसे पंजाबी के लिए यह एक अनोखा और नया अनुभव था, क्योंकि हिंदुस्तान के किसी भी प्रांत की तुलना में हमारे प्रांत में दिखावा कहीं ज्यादा है। शिमला और लाहौर, दोनों ही जगहों पर मैंने रानाडे की असाधारण सादगी देखी है। एक बार मेरे एक दोस्त ने बताया कि उसने रानाडे को लाहौर में इक्का चलाते देखा है। सिर्फ रानाडे से ही ऐसे अनोखे कामों की उम्मीद की जा सकती थी। आधी शताब्दी से ज्यादा समय बीत चुका है, पर रानाडे के साथ बिताये उन दिनों की याद आज भी मेरे मन में उतनी ही ताज़ा है।

रास्ते में ज्यादातर समय रानाडे ही बोलते रहते थे। वह मुझे ऐतिहासिक महत्त्व के उन पहाड़ों, घरों और जगहों के बारे में जरूर बताते जिनका रिश्ता शिवाजी [23] के कारनामों या महान मराठा साम्राज्य से था। उनकी जानकारी और वर्णन करने की प्रभावशाली शैली देखकर मैंने उन्हें महाराष्ट्र का इतिहास लिखने की सलाह दी। इस पर उन्होंने साफ़-साफ़ कुछ नहीं कहा। उस समय मुझे यह जरा भी आभास नहीं था कि वह यह काम पहले ही शुरू कर चुके हैं।

सम्मेलन के बारे में मुझे ज्यादा कुछ नहीं कहना। जैसी उम्मीद थी, वहां कुछ बेहद व्यावहारिक और उपयोगी पर्चे पढ़े गये। लेकिन मेरे उपकरणों का क्या हुआ? वे सम्मेलन के दौरान एक मेज़ पर रखे लोगों की निगाहों का निशाना बनते रहे। जनाब नामजोशी की सलाह पर सम्मेलन ने मेरे

उपकरणों की जांच करके रिपोर्ट देने के लिए तीन लोगों की एक छोटी-सी कमेटी बना दी। मुझे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि कमेटी ने सम्मेलन को गोपनीय रिपोर्ट सौंपी है। आखिर ऐसा क्या था रिपोर्ट में ? मैंने जिससे भी यह सवाल पूछा, उसे या तो रिपोर्ट की जानकारी नहीं थी या वह कुछ निजी कारणों से इसके बारे में मुझे बताना नहीं चाहता था। आखिर में मेरे दोस्त नामजोशी ने मुझे इसके बारे में बताया। कमेटी के विचार से उनकी रिपोर्ट निजी तौर पर मुझे और मेरी कार्यशाला की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का पहुंचा सकती थी। लेकिन मेरे विचार से कमेटी शायद ही इससे बेहतर कोई रिपोर्ट दे सकती थी। मैंने अध्यक्ष महोदय से अपनी कार्यशाला और सम्मेलन में प्रदर्शित उपकरणों के बारे में दस मिनट बोलने के लिए इजाजत मांग ली। मैंने कमेटी की रिपोर्ट की गोपनीयता को भंग कर दिया, क्योंकि मेरी भावनाओं को ठोस न पहुंचाने के लिए ही गोपनीय रखी गई थी। फिर मैंने पूरी बेबाकी और साफ़गोई से अपने विचार सम्मेलन के सामने रखे। मैंने कहा कि सचिव महोदय की कृपा से मुझे अपने उपकरणों के बारे में दी गयी रिपोर्ट का पता चला है। रिपोर्ट में कहा गया था कि कमेटी को यह विश्वास नहीं है कि ये उपकरण लाहौर या हिंदुस्तान में किसी भी और जगह बनाये जा सकते हैं। उन्होंने मेरे ऊपर साफ़ - साफ़ एक आरोप भी लगाया था । उनका कहना था कि सम्मेलन में प्रदर्शित उपकरण दरअसल इंग्लैंड में बने हैं। मेरी कार्यशाला में इनकी पुरानी बढ़िया वार्निश हटाकर नयी घटिया वार्निश लगा दी गयी है, ताकि ये दिखने में हिंदुस्तान में बने लगें। सबूत के तौर वे कहते थे कि सारी सुविधाओं और कुशलता के बावजूद हम बंबई या अन्य जगहों पर ऐसे उपकरण नहीं बना पाये। मैंने कहा कि कमेटी मेरे हक में इससे अच्छी रिपोर्ट नहीं दे सकती थी। कारण कि इस रिपोर्ट के सिर्फ दो मतलब निकलते हैं :

पहली बात तो यह है कि अगर वार्निश की बात छोड़ दें तो हमारे उपकरण काम करने में इंग्लैंड में बने उपकरणों की बराबरी के पाये गये थे। सिर्फ हमारी वार्निश बढ़िया क्वालिटी की नहीं थी और इससे उपकरण के काम पर कोई फर्क नहीं पड़ता।

दूसरी बात यह कि हमने वह कामयाबी हासिल की थी जो तमाम सुविधाओं और साधनों के बावजूद वे लोग बंबई में हासिल नहीं कर पाये थे। यह साबित करने के लिए कि सभी उपकरण लाहौर में मेरी निजी देख-रेख में बनाये गये थे, मैंने उनके सामने तीन प्रस्ताव रखे। वे कोई भी एक प्रस्ताव चुन सकते थे :

i) सम्मेलन चाहे जितने लोगों को लाहौर में हमारी कार्यशाला में उपकरण बनते देखने के लिए भेज दे। अगर वे फिर भी संतुष्ट नहीं होते हैं कि यहां प्रदर्शित उपकरण हमारी कार्यशाला के बने हैं तो उनके आने-जाने का दूसरे दर्जे का रेल-किराया मैं चुकता कर दूंगा।

ii) सम्मेलन किसी भी उपकरण की सप्लाई का बड़ा ऑर्डर हमारी कार्यशाला को दे दे। हमारी कीमतें इंग्लैंड की कीमतों से आधी थीं, इसलिए उन्हें हमारे नुकसान पर फायदा होता। शायद ही कोई ऐसा होगा जो दस रुपये में कोई सामान खरीदे और फिर उसे आधी कीमत पर बेच दे। अगर कोई धोखेबाज़ अपने किसी फायदे के लिए ऐसा करता है, तो कोई बेवकूफ ही होगा जो इस मौके का फायदा न उठाये।

iii) अपने आखिरी प्रस्ताव में मैंने यह पेशकश की कि मैं अपने हेड मिस्त्री को पूना या जहां भी आप कहें वहां छोड़ दूंगा। आप उसे सारी जरूरी सुविधाएं मुहैया करा दें, वह यही उपकरण आपकी

> आंखों के सामने बना देगा। उन्हें बस मिस्त्री की उतने दिनों की तनख्वाह देनी थी। पर मैं मिस्त्री को एक महीने से ज्यादा समय के लिए लाहौर से बाहर छोड़ने के लिए तैयार नहीं था।

यह कहकर मैं बैठ गया। इसके बाद वहां इतनी ज़ोरदार तालियां बजीं कि मैं बता नहीं सकता। फिर बड़ौदा के प्रोफेसर मोटक उठकर मेरे पास आये और मुझे गले लगा लिया। वह शायद रिपोर्टिंग कमेटी के अध्यक्ष भी थे। बाद में उन्होंने दोस्ती के तोहफे के रूप में अपनी मराठी भाषा में लिखी इंटरमीडिएट की भौतिकी की एक किताब भी मुझे बड़ौदा से भेजी।

कार्यशाला का इसके बाद का इतिहास लगातार आगे बढ़ते कदमों की कहानी कहता है। यह बात मैं कार्यशाला के लगातार बढ़ते कारोबार के सिलसिले में कह रहा हूं। कार्यशाला में लगातार उपकरणों का उत्पादन और बिक्री जारी रही। इसलिए कार्यशाला का कारोबार साल दर साल बढ़ता ही गया। हमारा उत्पादन बढ़ा, बिक्री बढ़ी और कार्यशाला की ख्याति आस-पड़ोस के प्रांतों तक फैल गयी। हमें देश के दूरदराज के हिस्सों से भी ऑर्डर मिलने लगे। कुछ सालों बाद जब *इंडियन नेशनल कांग्रेस* के वार्षिक अधिवेशनों में नियमित रूप से औद्योगिकी प्रदर्शनी भी लगने लगी, तो हमारी कार्यशाला के उपकरण बड़ी तादाद में लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने लगे। कई जगह निर्णायक मंडल ने हमारे उपकरणों को स्वर्ण या रजत पदक देने की सिफारिश भी की। निर्णायक मंडल के सदस्य हमेशा उस प्रांत के चोटी के वैज्ञानिक होते थे, जहां अधिवेशन होता था। उदाहरण के तौर पर सन् 1906 में कलकत्ता में लगी प्रदर्शनी में सर जगदीश चंद्र बोस वैज्ञानिक उपकरणों के लिए गठित निर्णायक मंडल के सदस्य थे। उन्होंने प्रदर्शनी में हमारे योगदान की जबर्दस्त सराहना की। बहुत-सी अन्य जगहों की तरह कलकत्ता में हमारी कार्यशाला को स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। जैसे-जैसे समय

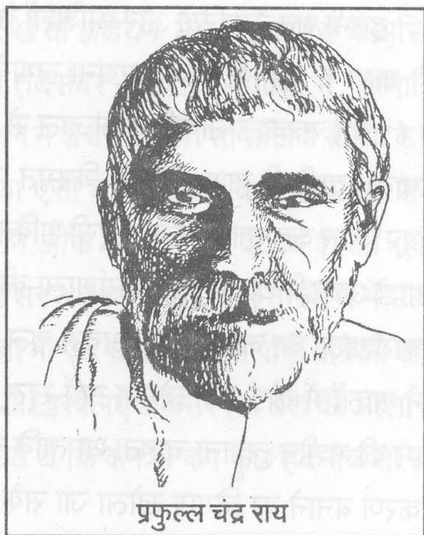

जगदीश चंद्र बोस

गुज़रा और हमारे काम को बढ़ावा मिलता गया, वैसे-वैसे हमारे उपकरणों की क्वालिटी भी सुधरती गयी। हम रेसिस्टेंट बॉक्स, केमिकल बैलेंस जैसे उन्नत और नाज़ुक उपकरण भी बनाने लगे। जहां तक उपकरणों पर अंकित पैमाने की शुद्धता का सवाल है, हमारे उपकरण विदेशी उपकरणों की टक्कर के होते थे। लेकिन इसे कार्यशाला का अपमान नहीं समझना चाहिए कि हम खोज कार्यों में इस्तेमाल होने वाले बढ़िया उपकरणों की क्वालिटी के पास नहीं पहुंच सके। हम जो नाज़ुक उपकरण बनाते थे, उनकी मांग भी बहुत सीमित थी। इसलिए उपकरणों पर पैमाने के अंकन और विश्वसनीय परीक्षण के लिए उपयुक्त बंदोबस्त करना बहुत कठिन साबित हो रहा था। अगर मैं अपनी नौकरी और अन्य कार्यों से मुक्त होता तो शायद मेरे लिए अन्य प्रांतों में खुद जाकर ऑर्डर इकट्ठे करना मुमकिन होता। उस समय देश में ऐसे हालात नहीं थे कि सिर्फ चिट्ठी-पत्री लिखकर किसी अनजान व्यक्ति के मन में ऑर्डर देने लायक भरोसा पैदा किया जा सके। वैसे भी पूना में हुआ अनुभव इतना अच्छा नहीं था कि बहुत ज्यादा उत्साह या आशा पैदा हो।

कलकत्ता के सलफ्यूरिक अम्ल के कारखानों का दौरा

शताब्दी के आखिर में मेरी सरकारी नौकरी में कुछ ऐसे हालात बन गये कि मैं नौकरी छोड़कर कोई कारखाना लगाने की सोचने लगा। वैज्ञानिक कार्यशाला इस योजना का एक हिस्सा जरूर थी, पर मैं पूरी तरह इस पर

निर्भर होना नहीं चाहता था। मैं मुख्य रूप से लाहौर में रसायन बनाने का कोई बड़ा कारखाना लगाना चाहता था। सन् 1898 की गर्मियों की छुट्टियां मैंने इस योजना से जुड़े विभिन्न व्यावहारिक पहलुओं की पड़ताल करने में खर्च कर दी। इस दौरान कई काम करने के अलावा मैं कलकत्ता भी गया और सारी बातें डॉ. (अब सर) पी. सी. राय को बतायीं। रासायनिक कारखानों के बारे में सोचने पर सबसे पहले सलफ्यूरिक अम्ल का नाम आता है। इसलिए मैंने अपने दोस्त से अम्ल बनाने के कुछ कारखाने दिखाने को कहा। ऐसे कई कारखानों में डॉ. राय की जान-पहचान थी। लेकिन डॉ. राय का कहना था कि वे किसी बाहरी आदमी को कारखाने में नहीं घुसने देंगे। खुद उनके जाने से कोई शक नहीं होता था, क्योंकि उन्हें वहां सब लोग रसायन के प्रोफेसर और एक ग्राहक के रूप में जानते-पहचानते थे। इसके अलावा कोई दिक्कत होने पर वे लोग उनसे सलाह लेने भी आते थे। लेकिन इस समस्या का बड़ा आसान हल निकाल लिया गया। मैंने धोती-कमीज़ पहन कर पैरों में काले बंगाली स्लिपर डाल लिये और सिर पर पगड़ी वगैरह कुछ नहीं बांधी। यह पहनावा हमारे मकसद के लिए कामयाब साबित हुआ। हम सलफ्यूरिक अम्ल के दो कारखाने देखने गये। वहां मैंने अम्ल बनाने की प्रक्रिया खुद अपनी आंखों से देखी। डॉ.पी.सी.राय ने अम्ल के 30-40 जारों का ऑर्डर भी



प्रफुल्ल चंद्र राय

दिया। यह ऑर्डर दरअसल मेरे लिए ही था। बाद में मैंने इन्हें लाहौर भेज दिया। कलकत्ता में मैंने कुछ अन्य कारखानों का काम-काज भी देखा। रासायनिक उर्वरक का कारखाना इनमें से एक था।

इतनी सब तैयारियों और कोशिशों के बावजूद मैं अपना रास्ता बदल नहीं पाया। रासायनिक कारखाना लगाने का मेरा सपना अधूरा ही रह गया। * मैंने सरकारी नौकरी के जंजाल से निकलने की बहुत कोशिश की, पर नाकामयाबी ही हाथ लगी। मैं किस्मत पर भरोसा नहीं करता, फिर भी मजबूर होकर कह रहा हूं कि कोई ऐसी शक्ति थी, जो बार-बार मेरी कामयाबी के आड़े आ रही थी। मैं फिर कार्यशाला की कहानी की ओर वापस लौटता हूं। कार्यशाला का कारोबार तो अच्छा चल रहा था, पर मुझे दु:ख था कि इतने सालों में कोई नया विभाग नहीं खुल पाया था। मैं कार्यशाला में लेंस बनाने की मशीन लगाना चाहता था ताकि बाइनोकुलर, माइक्रोस्कोप जैसे उपकरण बनाने का विभाग खोला जा सके। उस समय तक इन उपकरणों की अच्छी-खासी मांग बन गयी थी। इस बारे में पूछताछ करने पर जो जवाब मिले उनसे मैं संतुष्ट नहीं हो पाया। कुछ इस वजह से और कुछ अन्य कारणों से सन् 1914 की शुरुआत तक कोई भी नया काम आगे नहीं बढ़ पाया। तभी मैं रेडियो धर्मिता पर खोज कार्य करने के लिए जर्मनी चला गया। मैं अपने साथ काफी धन भी ले गया था, ताकि विशेषज्ञों की सलाह और मदद से जरूरी उपकरण वगैरह खरीदे जा सकें। लेकिन दुर्भाग्य मेरा पीछा कर रहा था। विश्व युद्ध छिड़ गया और इंग्लैंड में कोई एक साल बिताने के बाद मैं खाली हाथ वापस आ गया। कार्यशाला के लिए कुछ भी नही ला सका।

---

* बाद में रुचि राम ने सलफ्यूरिक अम्ल बनाने का कारखाना लगाया, जो कई सालों तक भली प्रकार चला भी। - संपादक

अध्याय - 6

मेरे सामाजिक कार्य

आज की निगाह से देखें तो *इंडियन नेशनल कांग्रेस* के अस्तित्व में आने से पहले (दिसंबर, 1885) पंजाब में सामाजिक गतिविधियां लगभग न के बराबर थीं। सामाजिक संस्था के नाम पर पंजाब में सिर्फ एक ही संस्था ऐसी थी, जिसका नाम लिया जा सकता है। यह थी *इंडियन एसोसिएशन ऑफ कलकत्ता* की पंजाब शाखा। कभी - कभी जब सुरेद्र नाथ बनर्जी या सर अहमद पंजाब आते तो लोगों में उत्साह पैदा होता। पर जल्दी ही यह ठंडा भी पड़ जाता। हमारी पीढ़ी अंग्रेजी जानने वाले पंजाबियों की पहली पीढ़ी थी। इसलिए अकसर हमें देश की आशा कहा जाता था। हम खुद भी यह सोचते थे कि कम से कम कुछ हद तक तो लोगों की उम्मीदों पर खरे उतरें।

स्थानीय स्वराज्य

जहां तक मुझे याद पड़ता है लॉर्ड रिपन के स्थानीय स्वराज्य (लोकल सेल्फ -गवर्नमेंट) प्रस्ताव [25] के सिलसिले में प्रांत भर में हुए आंदोलन में मैंने सक्रिय हिस्सेदारी की थी। यही मेरी पहली सामाजिक गतिविधि थी। आज हम इसे मामूली सुधार कहते हैं, पर उस समय इसकी घोषणा पर जो उत्तेजना फैली थी उसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता। सन् 1882 में जब लॉर्ड रिपन की सरकार ने पहले -पहल यह प्रस्ताव पारित किया था तो पूरे प्रांत में एक छोर से दूसरे छोर तक जैसे आग लग गयी थी। तभी मेरे साथ एक छोटी-सी घटना घटी, जिससे उस समय प्रांत के बिगड़े हुए सामाजिक और राजनीतिक माहौल का अंदाज़ लगाया जा सकता है। तब

मैं 47, कोर्ट स्ट्रीट पर *सिविल एंड मिलीटरी गजट* के दफ्तर के पास कॉलेज बोर्डिंग हाउस में रहा करता था। यह दफ्तर कुछ साल पहले ही लाहौर में खुला था। एक दिन जब मैं हॉस्टल से बाहर आया तो गजट के संपादकीय विभाग का एक कर्मचारी मेरे बगल में साथ-साथ चलने लगा। वह बार-बार मेरी तरफ देखता और कहता, "लोकल स्लो... लोकल स्लो...।" यह कहते हुए वह मेरी ओर देखकर तरह-तरह के मुंह बनाता और जमीन पर थूकता भी रहता। यह हरकत करते हुए वह मेरे साथ काफी दूर तक चलता रहा। कुछ समय बाद मुझे यह अहसास हुआ कि रिपन का प्रस्ताव आधुनिक नागरिक बनने और लोकतंत्र का आधार बनाने के लिए एक जरूरी प्रशिक्षण की तरह था। हम इस मुद्दे पर *सी.एंड.एम.गजट* और *ट्रिब्यून* में परस्पर विरोधी चर्चाएं पढ़ते रहते थे। पंजाबी अखबारों "कोहिनूर" और "आफताबे पंजाब" का कोई महत्त्व नहीं था।

प्रस्ताव के पक्ष में हुई कई आम सभाओं में भी हमने हिस्सेदारी की। हमने बोर्डिंग हाउस में खुद अपनी बैठक में तय किया कि गर्मियों की छुट्टियों में हम आस-पास के कस्बों-गांवों में जाकर आम सभाएं करेंगे और लोगों को इस सुधार के उद्देश्य व महत्त्व की जानकारी देंगे। किसी जन-आंदोलन में सक्रिय हिस्सेदारी करने का यह मेरा पहला अनुभव था। * जब मैं छुट्टियों में अपने घर भेड़ा गया तो मैंने दुकानदारों और स्कूल के कुछ शिक्षकों के साथ तीन-चार बैठकें की और उन्हें इस नये सुधार के उद्देश्यों व फायदों की जानकारी दी। मैं अड़ोस-पड़ोस के कुछ गांवों में भी गया और वहां भी ऐसी ही बैठकें की। यह मेरे और गांव वालों, दोनों के लिए ही एक नया अनुभव था।

---

* कुछ महीने पहले जनगणना के सिलसिले में मैंने कुछ काम किया था। पर मैं इसे ज्यादा महत्त्व नहीं देता क्योंकि यह काम मैंने अपने प्रोफेसर के निर्देश पर किया था।

मूर्ति का मामला

सन् 1883 की शुरूआत में कलकत्ता हाई कोर्ट में चल रहे एक मुकदमे ने पूरे बंगाल में जनाक्रोश का तूफान खड़ा कर दिया। इसके थपेड़े पूरे हिंदुस्तान में महसूस किये गये। यह मुकदमा *आइडॉल कंटेम्प्ट केस* के नाम से मशहूर है। हुआ यह कि एक मुकदमे के दौरान अदालत के जज जनाब नौरिस ने हिंदुओं की एक मूर्ति को पहचान के लिए अदालत में मंगाने की धृष्टता की थी। देशबंधु सी. आर. दास [26] के पिता जनाब भुवन दास द्वारा संपादित साप्ताहिक अखबार 'ब्रह्मो पब्लिक ओपिनियन' में जनाब नौरिस की इस हरकत की खूब भर्त्सना की गई। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी [27] ने भी इस मसले को पूरे ज़ोर-शोर से उठाया और अपने अखबार बंगाली में इसकी कड़ी आलोचना की। उन पर तुरंत अदालत की अवमानना का मुकदमा ठोंक दिया गया। उनके वकील जनाब डब्ल्यू.सी.बनर्जी [28] ने अपने मुवक्किल की ओर से माफ़ीनामा भी दायर किया, पर उसे मंजूर नहीं किया गया। इस तरह *यंग इंडिया* के प्रतिष्ठित नेता को दो महीने की साधारण कैद हो गयी।

इस घटना से देश भर में उदासी के साथ-साथ गुस्से की जबर्दस्त लहर भी दौड़ गयी।

देश के कोने-कोने में आम सभाएं होने लगीं। जनाब सुरेन्द्र नाथ बनर्जी पूरे देश में बेहद लोकप्रिय थे। इसके अलावा उन्हें देश के नौजवानों का आदर्श भी माना जाता था। इसलिए हर जगह कॉलेज के छात्रों ने जनाब नौरिस के फैसले के खिलाफ प्रदर्शन शुरू कर दिये।

जनाब बनर्जी के जेल जाने के कुछ ही दिनों बाद मुझे एक खत मिला, जिसे लाहौर गवर्नमेंट कॉलेज के बी.ए. के छात्रों के नाम लिखा गया था। इसमें हमसे इस मसले पर आम सभा करने की अपील की गयी थी। हमने

तुरंत बोर्डिंग हाउस में एक बैठक बुलाकर अगले दिन ही आम सभा करने का फैसला किया। ज्यादा से ज्यादा लोगों तक आम सभा की सूचना पहुंचाने के लिए हमने एक अनोखा तरीका अख्तियार किया। बैठक में ही हमने एक छोटी-सी सूचना तैयार कर ली। फिर हर छात्र ने इसकी 15-20 प्रतियां बना लीं। इसके बाद हर छात्र शहर के अलग-अलग हिस्सों में चला गया। हमने मोहल्लों में वही हाथ से लिखी सूचनाएं चिपका दीं। इस नये तरीके ने बहुत ज्यादा लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। लाहौर के ट्रिब्यून प्रेस के अहाते में हुई इस बैठक में कॉलेज के छात्रों के अलावा शहर के बहुत से लोगों ने भी हिस्सा लिया। जब सभा की कार्रवाई की खबर अखबारों में छपी तो मेरे प्रोफेसरों को इस प्रदर्शन में मेरी हिस्सेदारी का पता लग गया। खासतौर से प्रोफेसर जे.सी. ओमन मुझसे इस बात पर बहुत नाराज हो गये कि हमने एक बर्खास्त सरकारी नौकर की तरफदारी में प्रस्ताव पारित किया था। दरअसल सभी लोग जानते थे कि जनाब सुरेन्द्र नाथ बनर्जी *इंडियन सिविल सर्विस* के अफसर थे, लेकिन उन्हें नौकरी की शुरुआत में ही किसी मामूली गलती पर बर्खास्त कर दिया गया था। कुछ सालों बाद मैंने खुद एक समय में बंगाल के लेफ्टीनेंट गवर्नर रह चुके जनाब बोर्डिलियन का खत देखा, जिसमें लिखा था कि अगर सरकार को जरा भी आभास होता कि सुरेन्द्र नाथ बनर्जी जबर्दस्त वक्ता और आंदोलनकर्ता बन जाएंगे तो उन्हें नौकरी से निकालने से पहले कई बार सोचा जाता। मुझे यह खत *ट्रिब्यून* के संपादक जनाब एन. गुप्ता ने दिखाया था, लेकिन मुझे नहीं पता कि यह उनके पास कैसे आया।

द हिंदू फैमिली म्यूचुअल रिलीफ फंड

मार्च 1887 मैं गवर्नमेंट कॉलेज का असिस्टेंट प्रोफेसर बन कर लाहौर वापस आया तो पंजाब में सार्वजनिक संस्थाओं की तादाद न के बराबर थी। जो

कुछ संस्थाएं थीं भी, उनके सदस्य ज्यादातर नौजवान ही थे, क्योंकि बुजुर्ग लोग न तो अंग्रेज़ी जानते थे और न ही उन्हें पश्चिमी मॉडल पर गठित इन संस्थाओं के फायदों और महत्त्व की जानकारी थी। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि गवर्नमेंट कॉलेज में आने से लेकर शताब्दी के आखिर तक लाहौर में जितनी भी संस्थाएं बनीं, उनमें से कम से कम दो-तिहाई के नियम-कानून मैंने और लाला हरकिशन लाल ने ही बनाये थे। यह और बात है कि जल्दी ही ये संस्थाएं ठप भी हो गईं । ज्यादातर हम यह काम साथ-साथ ही करते थे, पर यदा-कदा हमने इस काम को अलग-अलग भी किया।

लाला हरकिशन लाल इंग्लैंड में अध्ययन करने के बाद नौवें दशक की शुरुआत में लाहौर वापस आये थे। इससे कोई एक-दो साल पहले *द हिंदू फैमिली म्यूचुअल फंड* की स्थापना की गयी थी। इसका संविधान मैंने बनाया था, जिसे पांच-छह लोगों की कमेटी में कुछ मामूली सुधारों के बाद अपना लिया गया था। इस फंड की स्थापना का मूल विचार रेलवे में काम करने वाले एक बाबू का था, जो शायद आर. बी. बिशन दास की मातहती में काम करता था। दरअसल रेलवे में काम करने वाले एक बाबू की इतनी गरीबी की दशा में मौत हुई थी कि उसकी विधवा के लिए बाबुओं को आपस में चंदा उगाहना पड़ा। लेकिन हिंदुओं की धार्मिक प्रवृत्ति इसका गंवारा नहीं करती । इसलिए बाबुओं के मन में विचार आया कि क्यों न हिंदुओं की नेंद्र पद्धति के आधार पर दुर्घटनाग्रस्त लोगों के परिवार के कल्याण के लिए एक नियमित फंड बनाया जाये। एक बाबू ने यह प्रस्ताव आर. बी. बिशन दास के सामने रखा । वह काफी लंबे समय से उत्तर-पश्चिमी रेलवे के प्रबंधक के निजी सहायक थे। जब मैं अक्तूबर 1879 में पहले-पहल एक छात्र की हैसियत से लाहौर आया था, तो रेलवे के इस हिस्से को सिंध, पंजाब और

दिल्ली रेलवे कहा जाता था। बाद में इसे उत्तर-पश्चिमी रेलवे का नाम दिया गया।

खैर, मैं मुख्य बात पर वापस आता हूं। आर.बी. बिशन दास ने पांच-छह लोगों को अपने घर बुलाकर बाबुओं के प्रस्ताव को उनके सामने रखा और चर्चा की। मैं भी इस छोटी-सी कमेटी में शामिल था और शुरूआत से ही मुझे यह विचार पसंद आ रहा था। मेरे चचेरे भाई आर.बी.लधा राम साहनी भी उस समय लाहौर में ही नौकरी में थे या इसके तुरंत बाद लाहौर आये थे। जहां तक मुझे याद पड़ता है, वह इस कमेटी में शामिल नहीं थे। हम लोगों ने प्रस्ताव पर चर्चा करके इसे कारगर रूप देने के लिए एक योजना बना ली। जब सारे नियम-कानून बन गये और कमेटी ने उन्हें मान लिया तो हमने फंड के औपचारिक उद्घाटन के लिए शिक्षा सभा हॉल में एक बड़ी बैठक बुलायी। बैठक इस भवन के लंबे बरामदे में हुई थी। पिछले 40 सालों से मैं वहां नहीं गया हूं। इसलिए मुझे नहीं पता कि इस दौरान उस इमारत में क्या-क्या बदलाव आ गये हैं। जहां तक मुझे याद है, शहर के कम से कम 60 प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठक में मौजूद थे। इस बैठक में फंड के संविधान पर व्यापक चर्चा हुई और बाद में इसे अपना लिया गया। एक औपचारिक प्रस्ताव पारित करके फंड का उद्घाटन भी कर दिया गया। बैठक में मौजूद ज्यादातर लोग फंड के मूल संस्थापक बन गये और उन्होंने वहीं, उसी समय, सदस्यता फार्म भी भर दिया। मेरी सदस्यता संख्या 31 थी। आज इन मूल संस्थापकों में से कौन-कौन जीवित है, मैं कह नहीं सकता, लेकिन कुछ लोग तो जीवित होंगे ही। आर.बी.लधा राम साहनी फंड के पहले अध्यक्ष बने और आर.बी.बिशन दास ने मानद सचिव का कार्यभार संभाला। दोनों ने ही फंड के काम-काज में खूब दिलचस्पी ली और इसे लोकप्रिय बनाया। मेरे भाई लधा राम के देहांत के बाद आर.बी.बिशन दास फंड के

अध्यक्ष बन गये। वह एक बहुत ही भले और धार्मिक स्वभाव के सज्जन पुरुष थे। वह अपनी सरकारी और गैर-सरकारी, दोनों ही तरह की जिम्मेदारियों का निर्वाह पूरी निष्ठा से करते थे। वह हिंदू समाज के गौरव थे। उनके भाई एल.माधो राम भी उन्हीं की तरह हीरा आदमी थे और रेलवे में काम करते थे। ये दोनों सज्जन व्यक्ति समाज में बेहद लोकप्रिय थे। मुझे लगता है समाज में शायद ही कोई उनका दुश्मन हो ! वे हर अच्छे काम में मदद करने के लिए तुरंत तैयार हो जाते थे। उनके व्यक्तिगत चरित्र और काम-काज पर किसी भी तरह का शक करना मुमकिन नहीं था। बाद में इन दोनों भाइयों के कई पुत्र मेरे शार्गिद और दोस्त बने। उनमें सबसे प्रतिभाशाली थे बालक राम, आई.सी.एस., जिनकी कुछ साल पहले एक भयंकर दुर्घटना में मौत हो गयी। उस समय वह बंबई के हाई कोर्ट में जज थे।

द हिमालयन यूनियन क्लब

शिमला में पद भार संभालने के तुरंत बाद सौभाग्य से मेरी मुलाकात जनाब (बाद में नवाब) मौला बख्श से हुई। जल्दी ही हम दोनों अच्छे दोस्त बन गये। दरअसल मेरा घर जनाब मौला बख्श के घर से लगा हुआ था। बहुत मुश्किल से इतने भले पड़ोसी मिलते हैं। वह उस समय पी.डब्ल्यू.डी. में काम करते थे, लेकिन मुझे लगता है शिमला में रहने वाला हर हिंदुस्तानी उन्हें जानता-पहचानता था। उन्होंने अपनी जिंदगी की शुरूआत डाकखाने में बहुत कम तनख्वाह पर की थी। लेकिन अपनी काबिलियत, कड़ी मेहनत और ईमानदारी के कारण वह जल्दी ही सीनियर क्लर्क के मौजूदा ऊंचे पद पर पहुंच गये। वह चतुर होने के साथ ही बेहद मिलनसार स्वभाव के भी थे। वह दोस्त हो या अजनबी, हर किसी की मदद करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। मेरे लाहौर जाने से पहले उन्हें राजनीतिक विभाग में फारसी भाषा के दुभाषिये की जगह मिल गयी। बख्श साहब उर्दू के अच्छे लेखक

थे और मेरठ से छपने वाले साप्ता[illegible]क अखबार *तूती-ए-हिंद* में अकसर उनकी लिखी खबरें, लेख वगैरह छपते रहते थे। उन्हें फारसी भाषा बोलने में काफी महारत हासिल थी। फारसी जानने के कारण ही उनकी काफ़ी पूछ थी। उन्होंने भूतपूर्व अमीर अयूब खान को हिंदुस्तानी सरकार की मेहमान-नवाज़ी कबूल करवाने के लिए खान बहादुर अल्ला बख्श की काफी मदद की थी। वह जल्दी ही अटैची के ऊंचे पद पर पहुंच गये। हिंदु[illegible] वापस लौटने पर सबसे पहले उन्हें *एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिशनर* बनाया गया, पर जल्दी ही उनका तबादला दिल्ली के राजनीतिक विभाग में कर दिया गया। वहां से रिटायर होने से पहले उन्हें नवाब़ की पदवी से सम्मानित किया गया।

अब मैं फिर उन सुनहरे दिनों की ओर वापस लौटता हूं, जो मैंने और मौला बख्श ने शिमला में साथ-साथ बिताये थे। हमने जल्दी ही शिमला में हिमालयन यूनियन क्लब के नाम से एक संस्था बनायी। मैं इस क्लब का मानद सचिव बन गया और मेरे दोस्त ने मानद खजांची की जिम्मेदारी संभाल ली। वैसे काम का यह बंटवारा सिर्फ कागज़ों तक ही सीमित था। असलियत में तो हम क्लब के अलावा और भी बहुत से काम दिलो-जान एक करके करते थे। हमने क्लब के लिए एक बड़ा कार्यक्रम बनाया था, लेकिन फिलहाल हमने अपना सारा ध्यान शिमला में एक पब्लिक लाइब्रेरी स्थापित करने और आम जनता के लिए सभी विषयों पर व्याख्यान आयोजित करने की ओर लगा रखा था। उस समय शिमला में सिर्फ एक छोटा-सा पुस्तकालय था, जिसमें ज्यादातर किताबें युनाइटेड सर्विस क्लब के सदस्यों द्वारा भेंट दी गयी थीं। यह कार्ट रोड से थोड़े ऊपर स्थित असेंबली हॉल में था, जिसे आमतौर पर लोग नाच घर के नाम से जानते थे। बाद में इसे माल पर बनी नयी इमारत में स्थानांतरित कर दिया गया। इस इमारत में

नगरपालिका का दफ्तर है और ए. डी. सी. वगैरह सबसे ऊपरी मंजिल पर बने हॉल व अन्य कमरों का इस्तेमाल करते हैं। पूरी इमारत आमतौर पर गेटी थियेटर के नाम से जानी जाती है। गेटी थियेटर के पुस्तकालय में आम लोग नहीं जा सकते।

हिमालयन यूनियन क्लब के पुस्तकालय में हमारे पास अच्छी किताबें काफी बड़ी तादाद में मौजूद थीं। इनमें से कुछ युरोपीय लोगों और हिंदुस्तानियों द्वारा भेंट की गयी थीं, जबकि कुछ किताबें दोस्तों से मिले चंदे से खरीदी गयी थीं। हम पुस्तकालय के लिए कोई स्थायी जगह भी तलाश कर रहे थे। इस सिलसिले में तीन-चार उपयुक्त जगहों के मालिकों से हमारी बातचीत चल रही थी। लेकिन दुर्भाग्य से मैं और मौला बख्श, दोनों ही जल्दी शिमला से बाहर चले गये और हमारे बाद के संचालक पुस्तकालय का काम-काज ठीक से संभाल नहीं पाये। नतीजतन उन्होंने पुस्तकालय की सारी किताबों और संपत्ति को शिमला नगरपालिका को सौंप दिया। इसकी वजह यह थी कि नगरपालिका द्वारा कार्ट रोड पर एक पुस्तकालय चलाया जाता था। कई सालों बाद जब मैं कार्ट रोड पर स्थित उस पुस्तकालय में गया तो वहां की दयनीय हालत देखकर मुझे बहुत अफसोस हुआ।

हिमालयन यूनियन क्लब द्वारा आयोजित किये जाने वाले व्याख्यानों का सिलसिला भी खूब जमकर चल रहा था। पर यह उन दो सालों ही चला, जब तक मैं और मौला बख्श इसके इंचार्ज थे। हमने प्रताप चंद्र मजूमदार, शंकर पांडुरंग पंडित और महादेव गोविंद रानाडे के व्याख्यान भी आयोजित करवाये। मैंने खुद भी कई व्याख्यान दिये, जिनमें से तीन मौसम से संबंधित थे और एक किसी अन्य विषय पर था। गवर्नमेंट स्कूल के हॉल में मौसम पर दिये गये व्याख्यान में महादेव गोविंद रानाडे ने अध्यक्षता की थी।

द इंडियन नेशनल कांग्रेस


ए. ओ. ह्यूम

सब जानते हैं कि सन् 1885 के आखिर में बंबई में आयोजित *इंडियन नेशनल कांग्रेस* के वार्षिक अधिवेशन ने देश भर में हलचल मचा दी थी। नेशनल असेंबली के पहले चार-पांच अधिवेशनों ने देश में एकाएक व्यापक राजनीतिक चेतना जगा दी थी। इस बारे में मैंने विस्तार से कहीं और लिखा है। कांग्रेस के संस्थापक ए. ओ. ह्यूम [29] इस नये आंदोलन में दिलो-जान से जुटे हुए थे । उन्होंने सन् 1886 में बेहद ओजस्वी और भावुक भाषा में तीन पर्चे लिखे। इसे पढ़ने से मन में आशा और साहस की अदम्य भावना पैदा होती थी। कहा जाता है कि उस समय इनकी कम से कम 50,000 प्रतियां बांटी गई थीं। हमने भी कोई आधा दर्जन पर्चे यह कह कर मांग लिये थे कि हम इन्हें दोस्तों को भेजेंगे।

मैं इस बात से बहुत प्रभावित था कि वायसराय की कौंसिल के सदस्य की हैसियत रखने वाला एक अंग्रेज़ हिंदुस्तान के हक में संघर्ष कर रहा था। मैं ह्यूम से मिलकर खुद उनके मुंह से सुनना चाहता था कि उन्होंने यह कदम क्यों उठाया है। उन दिनों सरकारी नौकरों पर राजनीतिक संगठनों में शामिल होने या राजनीतिक सवालों पर होने वाली जन-चर्चाओं में हिस्सा लेने पर कोई पाबंदी नहीं थी। लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज में प्रोफेसर होते हुए भी मैं *इंडियन ऐसोसिएशन* का सदस्य था और यह बात कॉलेज के प्रिंसिपल को भी अच्छी तरह मालूम थी। एक बार जब *इंडियन ऐसोसिएशन*

ने कॉलेज के हॉल में ही जनाब डब्ल्यू.एस.केन,एम.पी., का अभिनंदन किया तो प्रिंसिपल साहब ने खुद जलसे की अध्यक्षता की थी। जनाब केन को हिंदुस्तानी मामलों में दिलचस्पी लेने और खासतौर से *टेम्परेंस मूवमेंट* को बढ़ावा देने के लिए सम्मानित किया गया था।

सरकारी नौकर होने के कारण अप्रैल, 1918 में रिटायर होने से पहले तक मैं कांग्रेस की गतिविधियों में सक्रिय हिस्सा नहीं ले पाया। लेकिन एक श्रोता की हैसियत से मैंने नेशनल असेंबली की कुछ महत्त्वपूर्ण वार्षिक आम सभाओं में हिस्सा जरूर लिया था। मुझे स्थानीय भाषा में छपे उन दो-तीन पर्चों की अच्छी तरह याद है, जिनके बंटने से लोगों में उत्तेजना की लहर दौड़ गयी थी। ये पर्चे देश की सारी प्रांतीय भाषाओं में छपे थे और इन्हें आम जनता के बीच बड़े पैमाने पर बांटा गया था। इस व्यापक राजनीतिक आंदोलन ने सरकार के कान में खतरे की घंटी बजा दी थी। नतीजतन जिस कांग्रेस के जन्म पर लॉर्ड डफरिन ने आशीर्वाद दिया था, दूसरी सालगिरह के बाद वही कांग्रेस सरकार की आंखों में खटकने लगी। इसीलिए कलकत्ता के मशहूर व्यापारी सर ऐंड्रयू यूल की अध्यक्षता में इलाहाबाद में होने वाले तीसरे वार्षिक अधिवेशन के आयोजन में सरकार तरह-तरह के रोड़े अटकाने लगी। प्रांत के लेफ्टीनेंट गर्वनर सर ऑकलैंड सेल्विन ने कांग्रेस के आंदोलन को राजद्रोही करार दे दिया। इस तरह इलाहाबाद के अधिवेशन के बाद सरकार और कांग्रेस के बीच हमेशा के लिए जबर्दस्त दरार पैदा हो गई।

जल्दी ही उत्तरी भारत के सभी प्रमुख शहरों में कांग्रेस का विरोध करने के मकसद से *पैट्रियाटिक ऐसोसिएशन* और *लॉयलिस्ट ऐसोसिएशन* बन गईं। सभी स्थानीय सरकारों को गोपनीय खत भेजे गये कि सरकारी नौकरी में जहां तक मुमकिन हो ज्यादा से ज्यादा मुसलमानों को ही भर्ती किया जाए।

युनाइटेड प्रॉविंसेस में सरकारी संरक्षण की बदौलत ऐसी कई ऐसोसिएशन पनप गईं। पंजाब में भी ऐसी ही एक ऐसोसिएशन बनी थी, पर वह जल्दी ही ठप भी हो गई। इस *पैट्रियाटिक ऐसोसिएशन* की जगह एक साप्ताहिक अखबार ने ले ली, जिसका नाम था '*पंजाब पैट्रियट*'। उस समय दैनिक हिंदुस्तानी अखबार निकालने के लिए हालात ठीक नहीं थे। लाहौर का मशहूर *ट्रिब्यून* भी साप्ताहिक अखबार ही था। बहुत लंबे समय तक कोई हिंदुस्तानी सज्जन इसका संपादन करते रहे। इसके मालिक का नाम कभी भी सामने नहीं आया, लेकिन ज्यादातर लोग जानते थे कि इसके पीछे कुछ प्रभावशाली अंग्रेज़ हैं। ये वही अंग्रेज़ थे, जिनकी स्थानीय ऐंग्लो-इंडियन *सिविल एंड मिलीटरी गजट* में भी दिलचस्पी थी। एक दिन बातचीत के दौरान किताबों की मशहूर दुकान मेसर्स राम कृष्ण एंड संस, बुकसेलर्स के मालिक जनाब राम कृष्ण ने भी इस विचार की पुष्टि की थी। उन्होंने बताया कि अखबार के मौजूदा संपादक से पहले उनके सामने ही संपादक बनने की पेशकश की गयी थी।

जाहिर है अखबार का खास मकसद कांग्रेस की गतिविधियों का विरोध करना था। लगभग इसी समय मुस्लिमों की आवाज़ के रूप में लाहौर से एक और अखबार निकलना शुरू हुआ। इसका नाम था *द ऑब्जर्वर*। *पंजाब पैट्रियट* और *द ऑब्जर्वर*, दोनों ही अखबारों में कांग्रेस के खिलाफ खूब प्रचार किया जाता था। इस काम में सरकार भी उनकी मदद करती थी। सरकारी संस्थानों में इन अखबारों की प्रतियां भारी तादाद में खरीदी जाती थीं। लेकिन पंजाब में ये अखबार अपने मकसद में ज्यादा कामयाब नहीं हो पाये। वजह यह थी कि पंजाब में अन्य प्रांतों से कांग्रेस के हिंदू और मुस्लिम, दोनों ही नेता अकसर आते रहते थे, जिससे खासतौर से छात्रों में उत्साह बना रहता था। आम जनता की राय को कांग्रेस के हक में करने में कांग्रेस

के दो नेताओं ने खास भूमिका निभायी। ये थे राजा राम पाल सिंह और जनाब अली मोहम्मद भीम जी। ये दोनों नेता अकसर पंजाब आते रहते थे। ये दोनों ही पंजाबी भाषा में अच्छी तरह नहीं बोल पाते थे, लेकिन यह कमी उनके उत्साह और भाषण देने के प्रभावशाली ढंग से पूरी हो जाती थी। राजा रामपाल सिंह का अनोखा पहनावा भी काफी भीड़ खींचता था। वह हमेशा हैट पहने रहते थे और भाषण देते वक्त भी इसे नहीं उतारते थे, लेकिन उनका बाकी पहनावा मुगल दरबार के दरबारियों जैसा होता था। दरअसल वह पड़ोस की एक उत्तर-पश्चिमी रियासत (अब यू. पी. में) के तालुकदार थे। वह व्याकरण और मुहावरों की तमाम गलतियों के बावजूद हमेशा अंग्रेजी में बोलते थे, लेकिन भाषण देने के अपने अनोखे अंदाज़ के कारण श्रोताओं पर जर्बदस्त प्रभाव जमा लेते थे। जनाब अली मोहम्मद भीम जी उर्दू में भाषण देते थे, लेकिन बंबई के खोजा होने के कारण उनकी उर्दू की वैसी ही हालत थी, जैसी राजा साहब की अंग्रेज़ी की। फिर भी वह इतने प्रभावशाली वक्ता थे कि उनके जैसा ज़ोरदार भाषण मैंने फिर कभी नहीं सुना। आने वाले कई सालों तक ये दोनों नेता नियमित रूप से हर साल लाहौर आते रहे।

मैं फिर से *पंजाब पैट्रियट* की ओर वापस आता हूं। एक बार अखबार के संपादक ने एक संपादकीय लिखा, जिसका शीर्षक था–हम कांग्रेस का विरोध क्यों करते हैं? कॉलेज के रीडिंग रूम में किसी ने इसके नीचे लिख दिया, "क्योंकि इसी के लिए आपको तनख्वाह मिलती है।" एक बार किसी छात्र ने अंग्रेज़ी में लिखे *पैट्रियट* के हिज्जों में हेर-फेर करके इसे *ट्रेटर* (यानी गद्दार) बना दिया। जल्दी ही यह बात एक मुंह से दूसरे मुंह होती हुई पूरे प्रांत भर में फैल गयी और यह अखबार *पंजाब ट्रेटर* के नाम से मशहूर हो गया। आज अखबार बंद हुए 25 साल से ज्यादा बीत चुके हैं, फिर भी 40 साल से ज्यादा उम्र का हर पंजाबी आपको *पंजाब ट्रेटर* के बारे में

बता सकता है।

शुरुआत में मैंने जिन आम सभाओं में हिस्सा लिया, उनमें मुझे दूसरे बंबई अधिवेशन की अच्छी तरह याद है। यह ज़ोरदार अधिवेशन सन् 1889 में आयोजित किया गया था और बाद में ब्रेडलॉ अधिवेशन के नाम से मशहूर हुआ। सबसे खास बात यह थी कि इस अधिवेशन में ठीक 1889 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया था। वैसे अधिवेशन में आने वाले आम श्रोताओं की तादाद इससे कहीं ज्यादा थी। इस अधिवेशन की अध्यक्षता सर विलियम वेडरबर्न [30] ने की थी, जो उन थोड़े से अंग्रेज़ों में से थे जिन्हें हिंदुस्तान का दोस्त माना जाता था। चार्ल्स ब्रेडलॉ [31] की मौजूदगी के कारण पंजाब से बहुत से प्रतिनिधि और श्रोता आये थे। मुझे याद है कि पहले सत्र में प्रोफेसर गोखले [32] ने उन दिनों चर्चित विषय बाइ-मेटलिज्म पर एक छोटा-सा भाषण दिया था। अब मैं वहां के एक खास नज़ारे के बारे में बताना चाहूंगा। जब नेताओं ने आम जनता से कांग्रेस को चंदा देने की अपील की तो जैसे नोटों, चेक, वगैरह की बरसात होने लगी। मैं यह अद्भुत नज़ारा कभी भूल नहीं सकता। चंदे के लिए जितने हैट लोगों के बीच घुमाये गये थे, सारे के सारे लबालब भर गये थे, फिर भी नोटों वगैरह की बारिश थम ही नहीं रही थी। फिर नेताओं ने खुद चंदा बंद करने की अपील की, क्योंकि जनाब ब्रेडलॉ की तबियत ठीक नहीं थी। जनाब ब्रेडलॉ उन दिनों बीमार चल रहे थे और स्वास्थ्य लाभ के लिए ही हिंदुस्तान आये थे। लेकिन मौत की काली छाया उनके सिर पर मंडरा रही थी। घर लौटने के कुछ समय बाद ही उनकी मौत हो गयी। इसी वजह से वह बंबई में सिर्फ कुछ दिनों ही रह पाये। उन्हें वहीं विभिन्न प्रांतों से आये मान-पत्र भेंट किये गये। उनका खुद का भाषण इतना ओजस्वी था कि मैंने आज तक वैसा भाषण नहीं सुना। मेरे यह कहने का असल मतलब आप इस बात से लगायें कि मैंने सुरेंद्र नाथ

बनर्जी [27], श्रीमती सरोजिनी नायडू [33], आनंद मोहन बोस, प्रताप चंद्र मजूमदार, स्वामी विवेकानंद [35] और श्रीमती ऐनी बेसेंट [36] जैसे भाषण के जादूगरों को एक बार नहीं, बल्कि कई-कई बार सुना है। मैंने ऐनी बेसेंट को सन् 1893 में लाहौर में *पैंथीज्म* यानी सर्वेश्वरवाद पर बोलते सुना था। मैं इस पर विश्वास नहीं करता, लेकिन उनके भाषण के प्रवाह में मैं भी बह गया था। इस अधिवेशन में मैं जिन प्रतिष्ठित व्यक्तियों से पहली बार मिला, उनमें पंडित हृदय नाथ कुंजरू के पिता पंडित अयोध्या नाथ [37] भी थे। अधिवेशन में एक पक्के कांग्रेसी जनाब ब्रेडले नॉर्टन ने बताया कि जब वह और उनके साथी मद्रास से आ रहे थे तो एक पुलिस पार्टी उनके पीछे लगी थी। इस पर पंडित अयोध्या नाथ ने भी अधिवेशन में ऐलान किया कि ऐसा सिर्फ मद्रास से आने वाले कांग्रेसी नेताओं के साथ ही नहीं हुआ। वह जब अपने साथियों के साथ यू. पी. से आ रहे थे, तो उनके पीछे भी एक पुलिस पार्टी लगी थी। खास बात यह थी कि इस पार्टी का मुखिया पुलिस का एक युरोपियन आला अफसर था। पंडित आयोध्या नाथ ने उसका नाम भी बताया।

यहां मैं बंबई में ही घटी एक और घटना का जिक्र करना चाहूंगा। यह घटना मिजी तौर पर मेरे साथ कांग्रेस के इसी अधिवेशन में या शायद बाद के किसी अधिवेशन में घटी थी। जनाब रानाडे प्रतिष्ठित मेहमानों के साथ मंच पर बैठे थे। उन्हें मुझसे किसी सामाजिक सम्मेलन के मसले पर बात करनी थी, सो उन्होंने मुझे वहीं मंच पर बुला लिया। फिर मुझे मंच पर वहीं बैठा छोड़कर वह किसी काम से कुछ मिनटों के लिए कहीं चले गये। तभी कांग्रेस का कोई पदाधिकारी लकदक पोशाक में वहां आया और बहुत नागवार लहज़े में मुझसे कहने लगा : "आप कौन हैं ?" "यहां क्यों बैठे हैं ?" वगैरह.. वगैरह..। मुझे यह सुनकर बहुत मजा आया और मैं भी उससे ठीक

यही सवाल पूछने लगा। मंच पर एक छोटा-सा तमाशा खड़ा हो गया। तभी मेरे बगल में बैठे शिकारपुर के जनाब दया राम छिद्दूमल, आई.सी.एस. ने उस बदमिजाज कांग्रेसी को सारी बात बतायी। यह भी बताया कि मैं कौन हूं और मंच पर किसके बुलावे पर आया हूं। फिर वह माफी मांगकर चला गया।

द पंजाब इनक्वायरी कमेटी

एक मायने में वे मेरी जिंदगी के बेहद बेहतरीन दिन थे। मुझे मालवीय जी[38], मोतीलाल जी [26], सी. आर. दास [40] और अब्बास तैयब जी [39] जैसे महान लोगों के करीब रहकर उनका भरोसा जीतने का मौका मिला। मैं खुद अपनी आंखों से देख सका कि ये नेता कितनी कुशलता से जांच संबंधी काम करते है और कितनी चतुराई से सरकार से निपटते भी हैं। पंडित मदन मोहन मालवीय ने सेंट्रल जेल और लाला हरकिशन लाल के घर के बीच इतने चक्कर काटे कि मैं बता नहीं सकता। दरअसल पंडित मालवीय को यह पता लगाने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी कि लाला हरकिशन लाल और उनके साथी किन शर्तों पर हंटर इन्क्वायरी कमेटी के सामने बतौर गवाह पेश होना चाहते हैं। इसी समय जनाब ऐंड्रूज[41] लाला हरकिशन लाल के घर और गवर्नमेंट



मदन मोहन मालवीय

हाउस के बीच यह जानने के लिए चक्कर काटते रहते थे कि वे शर्तें सरकार को मंजूर हैं या नहीं। इस बातचीत का टूटना ही सरकार के साथ असहयोग की शुरूआत का संकेत था। अंतिम फैसला कुछ चुनिंदा नेताओं की दो लंबी बैठकों के बाद लिया गया। ये बैठकें लाला हरकिशन लाल के घर के पीछे स्थित मालिक गिरधारी लाल के घर पर हुईं थीं। इनमें से एक बैठक लगातार नौ घंटे तक चलती रही। बैठक के दौरान कुछ फल और नाश्ते का सामान साथ के कमरे में रख दिया गया था। जिसे भूख लगती वह उठ कर जाता और खुद कुछ खाकर फिर बैठक में शामिल हो जाता। दूसरे दिन भी इसी तरह कोई आठ घंटे तक बैठक चली। इन दोनों बैठकों के आखिर में यह फैसला हुआ कि अगर सरकार लाला हरकिशन लाल, लाला दुनीचंद, पंडित राम भाई भट्ट और एक-दो अन्य लोगों को जांच-कक्ष में लाने की इजाजत नहीं देती, तो कांग्रेस द्वारा सरकारी जांच कमेटी का बहिष्कार किया जायेगा। कांग्रेस चाहती थी कि जब इनके खिलाफ गवाहों से जिरह की जा रही हो, तो ये लोग जांच-कक्ष में मौजूद रहें। सरकार को समझाया गया कि अगर गवाहों से जिरह के समय मुलजिम मौजूद नहीं होंगे तो संतोषजनक जांच नहीं हो सकती, क्योंकि फिर वे अपने वकीलों को बचाव के लिए कुछ भी बता पाने की स्थिति में नहीं होंगे। यह भी बताया गया कि जिन अधिकारियों ने इन पर इतना गंभीर आरोप लगाया है वे तो जांच-कक्ष में मौजूद रहेंगे, जबकि मुलजिमों के वकीलों को अपने मुवक्किलों से बात करने के लिए बार-बार जेल जाना होगा। मुलजिमों को यह सुनने ही नहीं दिया जा रहा था कि गवाह उन पर क्या-क्या आरोप लगाते हैं। बिना यह सुने वे अपने वकीलों को गवाहों से जिरह के लिए क्या निर्देश दे सकते थे। इन हालातों में जांच महज एक तमाशा बन कर रह गई थी। महात्मा गांधी[42], सी. आर. दास और मोतीलाल ने साफ-साफ कह दिया था कि इन हालातों में निष्पक्ष जांच


महात्मा गांधी

नहीं हो सकती। बैठक के दूसरे दिन के आखिरी दो घंटे बहुत तनाव भरे थे। आखिरी फैसला बहुत बोझिल मन से लिया गया। कोई नहीं जानता था कि अब क्या होगा। हर एक के मन में किसी गंभीर नतीजे की आशंका बैठ गयी थी। सबने यह सोचकर आखिरी फैसला लिया था कि लोगों के आत्म-सम्मान की रक्षा करने के लिए शायद इससे बेहतर और कोई रास्ता नहीं है। जैसा मैंने अभी बताया, बैठक के आखिरी दो घंटों के दौरान सभी नेताओं के बीच जबर्दस्त बहस हुई। पर यह बहस उन लोगों के बीच हुई थी, जो जानते थे कि यह रास्ता अख्तियार करने पर कितने बड़े खतरों का सामना करना पड़ सकता है। उन्होंने यह फैसला सिर्फ इसलिए लिया, ताकि लोगों के आत्म-सम्मान और प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलने से बचाया जा सके। अगले कुछ महीनों तक मेरे दिमाग में लगातार वे बातें घूमती रहीं, जो उन दो घंटों के दौरान इन नेताओं ने कही थीं। आखिरी फैसला उन बहादुर नेताओं का था, जो अपने आत्म-सम्मान के अलावा और सब कुछ दांव पर लगा सकते थे। फिर भी उन्होंने हालातों से बहुत समझौता करते हुए अपनी शर्तें बेहद उदार कर दीं थीं। अब वे सिर्फ इतना चाहते थे कि जांच के दौरान कम से कम उन्हे जांच-कक्ष में रहने की इजाजत दी जाए, ताकि वे मुलजिमों के खिलाफ लगाये गये आरोपों को सुनकर वकीलों को गवाहों से जरूरी सवालात पूछने का

निर्देश दे सकें। इसके लिए वे जांच-कक्ष में हथकड़ी-बेड़ी लगवाकर बैठने के लिए भी तैयार थे। उन्होंने तय कर लिया था कि अगर उनकी यह मामूली-सी मांग भी नहीं मानी जाती, तो वे सब कुछ खतरे में डालकर अलग से अपनी स्वतंत्र जांच करेंगे और उसकी रिपोर्ट भी छपवाएंगे। मैंने उसी शाम सर जॉन मेनीनोर्ड से मिलकर उन्हें सारी बातें बतायीं। मैंने कहा कि अब आखिरी घड़ी आ गयी है। सरकार को मालवीय जी और सी.एफ.ऐंड्रूज की बात मान लेनी चाहिए। कल आखिरी फैसला ले लिया जाएगा और फिर मांग मानने पर सरकार की इज्जत नहीं रह जाएगी। सर मेनीनोर्ड यह खबर सुनकर घबरा गये। वह अधिकारिक तौर पर पक्का करना चाहते कि अगर इस अवस्था में भी उनकी मांग मान ली जाये तो क्या सारी मुसीबत खत्म हो जाएगी। मैंने बताया कि यह खबर पक्की है, पर मैं सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ले सकता। मैंने उनसे कहा कि अगर आप मुझे यह लिखकर दे दें कि यह मांग आप गर्वनर के पास ले जाएंगे और उसे मनवाने में कांग्रेस की मदद करेंगे तो मैं कांग्रेस की मांग को किसी अधिकारी नेता से लिखवाकर ले आऊंगा। उन्होंने अपनी मदद का वादा करते हुए खत लिख दिया, पर यह शर्त भी जोड़ दी कि पहले कोई कांग्रेसी नेता यह लिखित आश्वासन दे कि अगर मांग मान ली गयी तो वे शांत हो जाएंगे और जांच कमेटी के काम में पूरा सहयोग देंगे। मैं यह खत लेकर पंडित मदन मोहन मालवीय के पास गया। वह और पंडित मोती लाल नेहरू, दोनों ही इस आखिरी घड़ी में समझौते के लिए आशा की यह किरण देखकर बहुत खुश हुए। मालवीय जी ने पंडित नेहरू से सलाह-मश्विरा करके तुरंत खत लिख दिया, जिसे मैंने उसी समय सर जॉन मेनीनोर्ड के पास पहुंचा दिया। वह तुरंत खत लेकर गवर्नमेंट हाउस चले गये और उन्होंने कांग्रेस की मांग मानने के लिए सरकार पर बहुत ज़ोर डाला। दुर्भाग्य से उस समय सर एडवर्ड मैकलेगन पर जनाब

(अब सर) जॉन थाम्सन का जबर्दस्त प्रभाव था और जनाब थाम्सन कांग्रेस पार्टी को कोई भी रियायत देने के हक में नहीं थे। सर जॉन मेनीनोर्ड की कोशिश बेकार गई। कांग्रेस पार्टी ने सर माइकेल ओ. डायर के मार्शल लॉ शासन के दौरान लोगों पर हुए अत्याचार की जांच के लिए अपनी एक जांच कमेटी बैठा दी।

सिर्फ यह ब्यौरा पढ़कर अंदाज़ नहीं लगाया जा सकता कि उस एक हफ्ते के दौरान पंजाब के लोग कितने आतंकित थे। अब उस यादगार हफ्ते को राष्ट्रीय सप्ताह का सम्मान दिया गया है। इस हफ्ते के बाद पंजाब के लोगों को दो महीने तक मार्शल लॉ का कहर भी झेलना पड़ा। मैं यहां एक-दो ऐसी घटनाएं बताना चाहूंगा, जिनसे पंजाब के लोगों की असहाय अवस्था का अनुमान लगाया जा सकता है। पंजाबी हिंदू पंडित मालवीय को देवता जैसा मानते थे, लेकिन अकसर उन्हें अमृतसर की सड़कों पर मामूली टम-टम में बैठे भटकता देखा जा सकता था। वह आम लोगों से उन पर हुए अत्याचार की बाबत पूछताछ करना चाहते थे। पर इस डर से कोई उनके पास नहीं फटकता था कि कहीं सरकारी अफसर नाराज़ न हो जाएं। कोई बड़ा आदमी भी उन्हें अपनी गाड़ी इसीलिए नहीं देता था कि कहीं उसे किसी आला अफसर की नाराज़गी का कहर न झेलना पड़े। यहां तक कि टांगे वाले भी पंडित मालवीय को अपने टांगे में बैठाना नहीं चाहते थे। उन्हें डर था कि ऐसा करने से नगरपालिका वाले किसी न किसी बहाने से उनका लाइसेंस जब्त कर लेंगे। एक बार पंडित मालवीय को कांग्रेस द्वारा की जा रही जांच के सिलसिले में गुजरांवाला जाना पड़ा। गुजरांवाला कांड के एक मुलजिम जनाब मेला राम आनंद ने उन्हें दो दिन के लिए अपने घर में रहने की इजाजत दे दी। उस समय घर खाली पड़ा हुआ था, इसलिए पंडित जी को अपने भोजन वगैरह की व्यवस्था खुद करनी पड़ी। इसके बावजूद कुछ

हफ्तों बाद जब जनाब मेला राम आनंद (प्लीडर) गुजरांवाला वापस आये तो एक आला अफसर ने उन्हें बुलवा भेजा और पंडित मालवीय को अपने घर में ठहरने की इजाजत देने के लिए खूब फटकार लगायी। अफसर ने कहा कि पंडित किराया चुकता करके किसी सराय में रह सकते थे। जनाब मेला राम ने अपमान का यह घूंट चुपचाप पी लिया, क्योंकि वह जवाब में कुछ कह सकने या कर सकने की स्थिति में नहीं थे । जनाब सी.आर.दास और पंडित मोतीलाल नेहरू जब भी अमृतसर आते तो अपनी कार ले कर आते थे। वह ऐसा सिर्फ सहूलियत के लिए नहीं करते थे। इसकी असली वजह यह थी कि वह अमृतसर के किसी व्यक्ति से कार लेकर उसे सरकारी अफसरों की नाराज़गी का शिकार बनाना नहीं चाहते थे। उनका खाना-पानी भी कार में मौजूद रहता था। इसके बावजूद उन्हें लोगों से वह सहयोग नहीं मिल पाता था, जिसकी वे उम्मीद करते थे। लोग बेबाकी से अपना बयान देने में कतराते थे। बहुत से बयानों को पक्का करने के लिए हम अन्य सबूतों का सहारा भी लेते थे, क्योंकि हमें डर था कि सरकारी दबाव के आगे बहुत से गवाह झुक जाएंगे और कांग्रेस जांच कमेटी के सामने बयान देने व दस्तखत करने के बावजूद वे बाद में अपने बयान से मुकर जाएंगे। कुछ लोगों ने जांच कमेटी के सामने बहुत चौंकाने वाले बयान दिये, लेकिन हमने उन्हें दर्ज नहीं किया क्योंकि हम वे ही बयान दर्ज करना चाहते थे जिन पर लोग तमाम सरकारी धमकियों व खतरों के बावजूद डटे रहें। बाद में मुकरें नहीं। हम झूठे बयान दर्ज करके मुसीबत मोल लेना नहीं चाहते थे।

खासतौर से महात्मा गांधी ऐसे उत्तेजक बयानों को दर्ज करने के हक में नहीं थे। उनका मानना था कि ऐसा करने से हम अपने गवाहों को गंभीर खतरे में फंसा देंगे और हमें देश के नाम पर भी ऐसा करने का कोई हक नहीं है। बयान दर्ज करने के लिए जनाब सी. आर. दास अमृतसर की किसी

सड़क पर बैठ कर अपना खूबसूरत पेचवान हुक्का पीते रहते और आस-पास के लोगों का बयान दर्ज करते रहते । यह एक दिलचस्प नज़ारा होता था। हम लोग सुबह उनकी रोल्स रॉयस कार में बैठ कर जाते और शाम को देर से वापस आते । पंडित मोती लाल नेहरु और पंडित मदन मोहन मालवीय भी ऐसा ही करते थे। लोगों के दिलों में बहुत गुस्सा था, लेकिन उन्हें बयान देने के लिए राजी करना बहुत मुश्किल काम था। कांग्रेस कमेटी के जजों के सामने जब लोग बयान देने आते तो उनके चेहरे पर भय का आतंक साफ़-साफ़ पढ़ा जा सकता था।

एक ओर कांग्रेस कमेटी की निष्पक्ष जांच चल रही थी तो दूसरी ओर जनाब सी.आर.दास ने हंटर जांच कमेटी की कार्रवाई की पूरी रिपोर्ट हर रोज हासिल करने का बंदोबस्त कर रखा था। कमेटी की कार्रवाई टाउन हॉल में चल रही थी । जनाब सी. आर. दास अपने साथ दो दक्ष स्टेनोग्राफर लाहौर से लाये थे। उन दोनों को ही हंटर कमेटी के सामने दिये गये बयानों का एक-एक शब्द नोट करने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी । ज्यादा महत्त्वपूर्ण बयानों का एक-एक शब्द नोट कर लिया जाता था। फिर हर शाम जनाब सी.आर.दास के सामने इन टाइप किये हुए बयानों को पढ़ा जाता था, ताकि उन्हें पता लग सके कि सरकारी कमेटी के सामने क्या बयान दिये गये हैं। इस तरह उन्हें बयानों की जानकारी गर्वनर से भी कई घंटे पहले हो जाती थी। मुझे वह दिन अच्छी तरह से याद है जब एक स्टेनोग्राफर ने जनाब दास को जनरल डायर का बयान पढ़कर सुनाया था। यह बयान सुनकर जनाब दास के चेहरे पर चमक आ गयी और उन्होंने पूरा बयान अपने वकील के पास तार से भेजने के लिए तुरंत एक व्यक्ति को तारघर भेज दिया। मुझे उन जनाब का नाम याद नहीं आ रहा, पर मैं उनसे लाहौर में उस समय मिला था जब वह कांग्रेस जांच कमेटी के सिलसिले में वहां आये थे। जनरल


चितरंजन दास

डायर के पूरे बयान को तार से इंग्लैंड भेजने में जनाब दास के कोई 1500 रुपये खर्च हो गये। जरा सोचिए कि इससे इंग्लैंड के सरकारी महकमों में कितनी सनसनी फैल गयी होगी। जनरल डायर का बयान उजागर होने से आम जनता का रुख हिंदुस्तान के हक में हो गया, लेकिन इंग्लैड के अनुशासन बद्ध सरकारी अधिकारियों ने इस घटना पर जरा भी घबराहट जाहिर नहीं होने दी। वे अपनी इस बात पर डटे रहे कि जनरल डायर की फौजी कार्रवाई ने एक बहुत बड़े विद्रोह को टाल दिया था। इससे उन हिंदुस्तानी लोगों के भरोसे को गहरा झटका लगा, जो सोचते थे कि ब्रिटिश सरकार हिंदुस्तान की भलाई चाहती है। हमें बाद में यह भी पता चला कि हाउस ऑफ लार्ड्स ने एक प्रस्ताव पारित करके जनरल डायर की कार्रवाई की सराहना भी की थी।

आमतौर पर लोगों को यह नहीं मालूम है कि हंटर कमेटी के हिंदुस्तानी सदस्यों द्वारा पूछे जाने वाले सवाल हम ही तैयार करते थे। इसके लिए हमने पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में तीन या चार लोगों की एक छोटी-सी कमेटी बनायी थी। पंडित जगन नारायण, नवाब सुल्तान अहमद और जनाब चिमनलाल सेतालवद [43] इस कमेटी द्वारा तैयार किये गये सवालों को ही पूछते थे। हमें पता रहता था कि हंटर कमेटी के सामने किन-किन गवाहों की पेशी होनी है। फिर अपने नेताओं की सलाह पर हम उनके बारे में सारी जानकारी मेहनत से इकट्ठा करते और उनसे

पूछे जाने वाले सवाल तैयार करते। इन सवालों की टाइप की हुई प्रतियां तीनों हिंदुस्तानी सदस्यों को रात में ही भेज दी जाती थीं। आमतौर पर मैं खुद पंडित जगन नारायण और सुल्तान अहमद को सवालों की प्रतियां पहुंचाता था। मुझे नहीं पता कि जनाब सेतालवद को सवाल कौन पहुंचाता था। इस पूरी कार्रवाई को बहुत गोपनीय रखा गया था । इसलिए सवाल पहुंचाने की जिम्मेदारी बहुत भरोसे के व्यक्तियों को ही सौंपी जाती थी। इसके अलावा यह ध्यान भी रखा जाता था कि जो व्यक्ति सवाल लेकर जाये, वह सदस्यों के साथ सवालों पर खुल कर चर्चा कर सके और उन्हें इस बाबत सारी जानकारी दे सके। पंडित जगन नारायण जल्दी ही बहुत सारे खोजी सवाल पूछने के लिए मशहूर हो गये। इसकी वजह सिर्फ यह थी कि जांच कमेटी की मेज़ पर उन्हें ऐसी सीट मिली थी, जिससे हिंदुस्तानी सदस्यों में सवाल पूछने का मौका सबसे पहले उन्हें ही मिलता था। नवाब सुल्तान अहमद सबसे कम सवाल पूछ पाते थे, क्योंकि उनकी बारी पंडित जगन नारायण और जनाब सेतालवद के बाद आती थी। ये दोनों सदस्य ही गवाहों से ज्यादातर सवाल पूछ डालते थे। फिर भी वह गवाहों से कुछ बेहद उलझे सवाल पूछकर उन्हें हैरान-परेशान कर देते थे। उन्होंने भी गवाहों से बेहतरीन जिरह करने के लिए अच्छी - खासी प्रतिष्ठा हासिल कर रखी थी। मुझे लगता है सरकार को यह पता लग गया था कि तीनों हिंदुस्तानी सदस्यों की वे लोग मदद कर रहे हैं, जिन्होंने सरकारी जांच कमेटी का खुलेआम बहिष्कार कर रखा है। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि आम जनता को हमारी गतिविधियों की जरा भी भनक नहीं थी। यहां तक कि महात्मा गांधी को भी हमारी इस कार्रवाई की हवा नहीं लगने दी गयी थी। हमें पता था कि वह किसी भी ऐसी कार्रवाई की इजाजत नहीं देंगे, जिसे चोरी-छिपे करना पड़े। अन्य सदस्यों का गांधी जी की इस विचारधारा से मेल नहीं खाता था। कई बार हमें वही

हथकंडे अपनाने पड़ते थे, जिनका सरकार इस्तेमाल करती थी। मैं यहां एक ऐसी घटना का जिक्र करूंगा, जिससे पता लगता है कि महात्मा गांधी और कांग्रेस आन्दोलन के अन्य बड़े नेताओं के विचारों में कितना फर्क था। हुआ यह कि एक बार एक जनाब हमारे पास एक ऐसा सरकारी दस्तावेज लेकर आये, जो हमारी जांच के लिए बड़े काम का था। उन्होंने यह दस्तावेज कुछ गलत तरीकों का इस्तेमाल करके हासिल किया था। दरअसल यह एक सरकारी विभाग के रिकॉर्ड का गोपनीय दस्तावेज था। मैंने उनसे कहा कि आप इसे सीधे पंडित मोतीलाल नेहरू को दिखाएं। उनकी पंडित मोतीलाल नेहरू और पंडित मदन मोहन मालवीय, दोनों से ही अच्छी पहचान थी। इन दोनों नेताओं ने दस्तावेज देखकर उनकी चतुराई और पहुंच की खूब सराहना की। फिर उन जनाब के मन में आया कि इसे महात्मा गांधी को भी दिखाया जाये। मैंने उन्हें खबरदार किया कि ऐसा मत करना। पर वह अपनी चतुराई पर इतना खुश थे कि महात्मा गांधी के मुंह से भी वैसी ही तारीफ सुनना चाहते थे, जैसी इन दोनों नेताओं ने की थी। जनाब सी. आर. दास शायद उस समय लाहौर में नहीं थे, क्योंकि मुझे याद नहीं आता कि उन्हें यह दस्तावेज दिखाया गया था। खैर, वह माने नहीं और दस्तावेज को महात्मा गांधी के पास ले गये। मैं तो उस समय वहां मौजूद नहीं था, लेकिन बाद में कुछ दोस्तों ने बताया कि दस्तावेज दिखाने पर उन पर क्या गुज़री। महात्मा गांधी ने कोई मिनट भर के लिए उस पर नज़र डाली और फिर उनसे पूछा कि यह दस्तावेज आपके पास कैसे आया। जब उन्होंने बताया तो महात्मा गांधी ने उस गंदे कागज़ पर नज़र डालने से भी इनकार कर दिया। फिर उन्होंने उन जनाब को एक सरकारी अफसर से गलत काम करवाने के लिए खूब डांटा-फटकारा भी । उन्होंने कहा कि हम ईमानदारी से काम करते हैं और हमें ऐसे गलत कामों को कतई बढ़ावा नहीं देना चाहिए।

महात्मा गांधी ने यह भी कहा कि हम इस दस्तावेज में दी गयी जानकारी का अपनी जांच में इस्तेमाल नहीं करेंगे और हमारे लिए इस दस्तावेज का कोई वजूद नहीं है। मैंने जब यह बात पंडित मोतीलाल नेहरू और पंडित मदन मोहन मालवीय को बतायी, तो उन दोनों ने कहा कि वे जानते थे कि महात्मा जी इस पर क्या कहेंगे। यहां यह बताना जरूरी है कि उस समय गांधी जी के नाम के साथ महात्मा संबोधन नहीं जोड़ा जाता था। हां, कभी-कभी कुछ लोग जरूर उनके लिए इस नाम का इस्तेमाल करते थे। बाद में सन् 1921 के दौरान जब असहयोग आंदोलन पूरे देश में फैला, तो सभी लोग गांधी जी को महात्मा गांधी के नाम से पुकारने लगे।

पंजाब में जांच के दौरान गांधी जी पंडित राम भाई दत्त के घर ठहरे थे। उनसे मिलने के लिए महिलाओं की भीड़ लगी रहती थी। मुझे बड़ा ताज्जुब होता था कि उनमें आखिर ऐसा क्या है जो इतनी सारी महिलाएं उनकी ओर खिंची चली आती हैं। गांधी जी महिलाओं को सिर्फ दो शब्दों का उपदेश देते थे: "कातो और निर्भय रहो।" कई बार उनका प्रवचन मुश्किल से पांच मिनट चलता था। फिर भी महिलाएं उनके मुंह से ये शब्द सुनकर खुश हो जाती थीं और उन्हें लगता था कि गांधी जी से मिलकर उन्होंने बहुत कुछ हासिल किया है। मैं सच कहता हूं कि उस समय मुझे उनकी इस सलाह का कोई मतलब समझ में नहीं आता था। मुझे तो कई सालों बाद "कातो और निर्भय रहो" मंत्र का असली महत्त्व और मकसद समझ में आया। पता नहीं उन महिलाओं को इसका असली मतलब समझ में आता था या नहीं। महिलाएं गांधी जी को खुश करने के लिए ढेरों धागा काततीं और सारी पुल्लियां उन्हें भेट कर आतीं। दरअसल गांधी जी को सारे उपहारों में धागों की पुल्लियां ही सबसे ज्यादा पसंद थीं। पता नहीं उपहार में मिली इन ढेरों पुल्लियों का बाद में वह क्या इस्तेमाल करते थे। उस समय

इनकी माला बनाने का प्रचलन नहीं था। मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं कि ये पुल्लियां सरला देवी चौधरानी के पास ही रहती थीं। बाद में चौधरानी जी गांधी की जबर्दस्त अनुयायी बनीं। कांग्रेस जांच कमेटी की रिपोर्ट के बारे में मैं कुछ कहना नहीं चाहता, क्योंकि रिपोर्ट तैयार करने में मेरी कोई हिस्सेदारी नहीं थी। मैं सिर्फ गवाहों के बयानों को इकट्ठा करने और उनको दर्ज करने का काम करता था । यह काम लाला हरकिशन लाल के घर पर किया जाता था। जनाब सी.आर.दास, पंडित मोतीलाल नेहरू, जनाब अब्बास तैयब जी, फजल-उल-हक और जनाब अभयंकर को बयान सुनने की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। मुझे याद आता है कि जनाब एम.आर. जयकर भी कुछ समय के लिए वहां आये थे। जांच कमेटी की रिपोर्ट गांधी जी ने खुद ही लिखी थी।

खिलाफत आंदोलन

पहले विश्व युद्ध के दौरान इस्लाम के पवित्र स्थलों की सुरक्षा और देखभाल के लिए "कुदम-ए-कहवा" नाम की एक सोसाइटी बनायी गयी थी । जाहिर है इन स्थलों में मक्का का स्थान सबसे ऊपर था। उन्हें इस्लाम से मोहब्बत की काफी भारी कीमत चुकानी पड़ी। दु:ख की बात यह है कि उनकी मोहब्बत मात्र एक भावना थी, इसका कोई रचनात्मक योगदान नहीं था। मुझे नहीं लगता कि "कुदम-ए-कहवा" कोई बड़ी प्रभावशाली सोसाइटी थी, क्योंकि ज्यादातर लोग इस सोसाइटी के सदस्य के रूप में सिर्फ अली बंधुओं को ही जानते थे। मेरे यह लिखने के समय तक अली बंधुओं ने काफी भारी तादाद में मुसलमानों को अपने साथ इकट्ठा करके इसे एक प्रभावशाली संस्था का रूप दे दिया था। इन मुसलमानों में ज्यादातर पढ़े-लिखे मौलवी और मुल्ला थे। ये लोग एक ओर तुर्की की आज़ादी की मांग कर रहे थे, तो दूसरी ओर हिंदुस्तानी मुसलमानों से लॉयड जॉर्ज की वादाखिलाफी की भर्त्सना भी कर

रहे थे। इस तरह कुछ समय के लिए मुसलमानों के मन में बहुत कड़वाहट भर गयी थी। एक सच्चे राजनीतिज्ञ होने के नाते गांधी जी ने मुसलमानों की मांगों को भी अपनी मांगें समझकर मुद्दा बनाया और पंजाब व तुर्की में हुए अत्याचारों के खिलाफ ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक विद्रोह-सा छेड़ दिया। इसके लिए उन्होंने जो तरीका अख्तियार किया, वह तब तक असहयोग आंदोलन के नाम से मशहूर हो चुका था। इसी बीच अली बंधुओं[44] ने खिलाफत आंदोलन भी शुरू कर दिया था, जो असहयोग आंदोलन [45] का ही समानान्तर रूप था। अगस्त 1920 में गांधी जी और अली बंधु लाहौर आये। गांधी जी ने लाला हरकिशन लाल के घर पर खासतौर से बुलाये गये कुछ सौ लोगों को संबोधित किया। यहीं उन्होंने अपनी पूरी योजना का खुलासा किया और सभी से असहयोग व खिलाफत आंदोलन में हिस्सा लेने की अपील की। अली ब्रंधुओं ने भी यहीं भाषण दिया। खासतौर से शौकत ने हिंदुओं के दिल को छू लेने वाला भाषण दिया और उनसे असहयोग आंदोलन में भाग लेने की जर्बदस्त अपील की। शौकत के कुछ अलफाज़ आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं। लेकिन बाद में जो कुछ हुआ, उसे देखते हुए मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं कि उनके अलफाज खोखले और पाखंड से भरे हुए थे। उन्होंने कहा कि हिंदू और मुसलमान भाई-भाई हैं और मुसलमान लोग तब तक यह बात नहीं भूलेंगे, जब तक अहसान शब्द हिंदुस्तान में जिंदा है। ब्रिटिश सरकार के लालची शिकंजे से तुर्की को छुटकारा दिलाने के लिए हिंदू भाई हमारी जो भी मदद करेंगे, हम उसके शुक्रगुज़ार होंगे। बेशक यह एक बेहद प्रभावशाली भाषण था। मुझसे निजी तौर पर बातचीत करते हुए उन्होंने कहा कि मुझे अपना खिताब वापस कर देना चाहिए। मुझे यह खिताब मिले 11 साल बीत चुके थे। खिताब में मेरी कोई ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी, इसलिए मैंने तुरंत ही कह दिया कि अगर

खिताब वापस करने से किसी तरह मुसलमानों का भला होता है तो मुझे इसमें कोई एतराज़ नहीं है। वह यह सुनकर बेहद खुश हुए और भाषण के बाद जब मैं वहां से चला आया तो उन्होंने खासतौर से मेरे लिए संदेश भेजा कि मैं वहां किया गया वादा पूरा करूं। वह चाहते थे कि अगले ही दिन खिताब वापस करने का ऐलान कर दिया जाय । मैंने ऐसा ही किया। इस तरह खिलाफत आंदोलन की मदद करने के लिए उन्होंने चिट्ठी लिखकर मुसलमानों की ओर से मेरा शुक्रिया अदा किया। मेरी समझ में नहीं आता कि खिताब वापस करने से खिलाफत या असहयोग आंदोलन को किस तरह मदद पहुंची, पर हां, एक बात मैं यहां साफ़ कर दूं – खिताब वापस करने के ऐलान में मैंने यह साफ़-साफ़ कह दिया था कि मैं असहयोग आंदोलन में हिस्सा नहीं ले रहा हूं। मैं यह खिताब सिर्फ अपने उन मुसलमान दोस्तों को खुश करने के लिए वापस कर रहा हूं, जो युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा की जा रही तुर्की की दुर्दशा से दु:खी हैं।

मुझे नहीं लगता कि पंजाब में गांधी जी द्वारा की गयी असहयोग आंदोलन की घोष्णा का कोई खास असर हुआ। बीस सितंबर 1920 को कलकत्ता मे कांग्रेस के विशेष अधिवेशन का आयोजन हुआ। लाला लाजपत राय[46] को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। इस मौके पर भारी तादाद में पंजाबी प्रतिनिधि लाला लाजपत राय के साथ कलकत्ता गये। मैं भी उनके साथ गया। मेरा सबसे बड़ा लड़का डॉ. बी. जे. साहनी भी हमारे साथ था। कलकत्ता के विशेष अधिवेशन का मुख्य कामकाज *सब्जेक्ट्स कमेटी* की बैठक में हुआ। इसे ही अब *आल इंडिया कांग्रेस कमेटी* कहा जाता है। इस विशेष कमेटी की बैठक *इंडियन एसोसिएशन ऑफ कलकत्ता* के हॉल में हुई। यह एक बेहद ज़ोरदार बैठक थी। इसका सबसे खास मुद्दा असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव था। इस पर बहस में पूरा एक दिन खप गया । जनाब सी. आर.

दास इस प्रस्ताव के विरोध में थे और उनके साथी जनाब बिपिन पन्द्र पाल उनका साथ दे रहे थे। असहयोग आंदोलन के पक्ष में गांधी जी मुख्य रूप से खुद ही बोल रहे थे, पर बीच-बीच में एम. मोहम्मद अली भी बहस में उनका साथ दे रहे थे। वैसे गांधी जी अकेले ही सब पर भारी पड़ने के लिए काफी थे। इस बहस में जनाब दास और बिपिन चन्द्र पाल [47] एक तरफ थे और गांधी जी व मोहम्मद अली दूसरी तरफ। इन दोनों पक्षों के बीच हुए जर्बदस्त वाक्‌युद्ध का अद्‌भुत नज़ारा मैं कभी भूल नहीं सकता। मुझे यह नज़ारा देखते हुए ऐसा लग रहा था जैसे किसी खतरनाक युद्ध में दो बड़ी सेनाएं आमने-सामने डटी हों। जनाब दास और गांधी जी दोनों ही वाक्‌युद्ध में माहिर थे। जनाब दास दुश्मन के मोर्चे में जहां कहीं कोई कमजोरी देखते वहीं हमला कर देते । दूसरी ओर महात्मा गांधी भी अपने पैने हथियारों का भरपूर इस्तेमाल करने में जरा भी चूक नहीं कर रहे थे। इस जर्बदस्त युद्ध ने मेरे ऊपर इतना गहरा असर डाला कि मैं उसे कभी भुला नहीं सका। यहां मैं उस बहस के बारे में लिख रहा हूं, पर सच तो यह है कि उन दो महान बुद्धिजीवी योद्धाओं के बीच जर्बदस्त युद्ध को बयान करने के लिए मेरे पास सही अलफाज़ नहीं हैं।

आखिरी नतीजा महात्मा गांधी के हक में रहा। *सब्जेक्ट्स कमेटी* में वह बहुत थोड़े-से वोटों से जीत गये। वोटों का अंतर इतना कम था कि वोटों की गिनती दुबारा की गयी। पर नतीजा वही रहा, यानी महात्मा गांधी बहुत थोड़े –से वोटों से जीत गये। मुझे वोटों का अंतर ठीक से याद नहीं आ रहा, पर शायद यह दस वोट से ज्यादा नहीं था। कांग्रेस का खुला अधिवेशन भी एक तरह से दिलचस्प था, लेकिन सबको शुरू से ही मालूम था कि महात्मा गांधी के हक में ज्यादा वोट पड़ेंगे। वोट पड़ने से तुरंत पहले दोनों पक्षों ने अपना-अपना ज़ोरदार प्रचार किया, लेकिन जैसा मैं पहले ही कह चुका हूं

महात्मा गांधी जर्बदस्त बहुमत से जीत गये। कांग्रेस के इस विशेष अधिवेशन के बारे में और ज्यादा कुछ कहने को नहीं है। जनाब सी.आर. दास और लाला लाजपत राय महात्मा गांधी के तर्कों से कायल नहीं हो पाये। महात्मा गांधी के पक्ष में इन दोनों नेताओं का हृदय परिवर्तन दिसंबर 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन के दौरान हुआ। मैं भी कलकत्ता कांग्रेस में असहयोग आंदोलन की सार्थकता का कायल नहीं हो पाया, लेकिन महात्मा गांधी और अन्य नेताओं के भाषणों ने मुझ पर इतना असर डाला कि मैंने कौंसिल के चुनावों से अपना नाम वापस ले लिया, हालांकि मैं पहले इसकी ज़ोरदार तैयारी कर रहा था। नागपुर अधिवेशन के बाद मैं भी पक्का असहयोगी बन गया, लेकिन कुछ मामलों में मैं अपने निजी विचारों के मुताबिक चलता था। मेरे ये विचार अंत तक बने रहे, लेकिन अन्य मामलों में जैसे-जैसे समय बीतता गया, असहयोग आंदोलन में मेरा भरोसा और भी मजबूत होता गया। असल मुद्दे से भटकने से पहले मैं यहां बताना चाहूंगा कि कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन, पहले हुए सारे अधिवेशनों से बिलकुल अलग था। मैंने कांग्रेस के लगभग सभी सालाना अधिवेशनों में हिस्सा लिया था, लेकिन जैसा जर्बदस्त उत्साह नागपुर अधिवेशन में चारों ओर दिख रहा था, उसका दस फीसदी भी पहले कभी नहीं देखा था। चरखे की कामयाबी, हिंदू-मुस्लिम एकता, पंजाब में हुए अत्याचार वगैरह पर कुछ लोगों ने देशभक्ति के सुंदर गीत रचे थे, जिन्हें विभिन्न प्रांतों से आये पुरुष और महिलाएं विभिन्न भाषाओं में समूह में गाते थे। यह नज़ारा अधिवेशन के सारे नज़ारों में से बेशक सबसे अनोखा था। कांग्रेस कैम्प में गूंजने वाले ऐसे कई सुंदर गीतों को मैंने नोट कर लिया था।

दक्षिण भारत के प्रमुख नेता सलेम विजयाराघवाचेरियार[48] कांग्रेस के अध्यक्ष थे। उनके विचार महात्मा गांधी के विचारों से पूरी तरह मेल नहीं

खाते थे। इसलिए उनके अध्यक्षीय भाषण में असहयोग आंदोलन की वकालत बड़े बुझे मन से की गयी थी। मेरे विचार से इस अधिवेशन में एक गलती यह की गयी कि इंग्लैंड से प्रकाशित होने वाले कांग्रेस के मुखपत्र *इंडिया* का प्रकाशन बंद करने का फैसला लिया गया। *इंडिया* ने कोई 25 सालों तक देश की आवाज़ को इंग्लैंड में बुलंद कर रखा था। लेकिन एक कट्टर असहयोगी होने के जोश में महात्मा गांधी हर उस चीज से नाता तोड़ लेना चाहते थे, जो इंग्लैंड से निकलती हो, चाहे वह कितना ही उपयोगी प्रकाशन क्यों न हो। पंडाल के बाहर एक बड़े कक्ष में देश के विभिन्न हिस्सों से आये कांग्रेस आंदोलन के प्रमुख प्रतिनिधियों के बीच भी *इंडिया* के प्रकाशन को लेकर जबर्दस्त चर्चा हुई। इसमें तीन युरोपीय लोगों ने भी हिस्सा लिया, जो हिंदुस्तान के दोस्त थे। वे सभी *इंडिया* का प्रकाशन जारी रखने के लिए ज़ोरदार वकालत कर रहे थे। उन्होंने कहा कि *इंडिया* हिंदुस्तान के हक में अच्छा काम कर रहा है और संकट की इस घड़ी में इसका जारी रहना बहुत जरूरी है। इन युरोपीय सज्जनों में से एक जनाब हैलफोर्ड नाइट अपने विचारों को बड़े जोश के साथ सबके सामने रखते थे। अन्य दोनों सज्जनों का नाम मुझे ठीक से याद नहीं आ रहा, लेकिन मुझे लगता है एक का नाम डॉ. रदरफोर्ड था और दूसरे सज्जन जनाब रैमसे मैक्डोनाल्ड थे। इन तीनों युरोपीय दोस्तों और तमाम हिंदुस्तानी सज्जनों की वकालत के बावजूद सिर्फ महात्मा गांधी के कहने पर *इंडिया* का प्रकाशन बंद कर दिया गया। जैसा मैं पहले कह चुका हूं, यह फैसला एक बड़ी भूल थी। तब से अभी तक हमारा कोई अपना मुखपत्र नहीं निकल पाया। इसका फायदा उठाते हुए हमारे दुश्मनों ने हमारे खिलाफ खूब दुष्प्रचार किया। मुझे उम्मीद है कि इंग्लैंड से अपना मुखपत्र निकालने के लिए जल्दी ही कदम उठाये जाएंगे।

ब्रह्म समाज से मेरा नाता [49]

अभी तक मैंने अपनी जिंदगी के एक अहम् हिस्से के बारे में कुछ नहीं बताया है। अक्तूबर 1879 में लाहौर आने से पहले मुझे किसी समाज सुधारक आंदोलन की जानकारी नहीं थी। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं किस तरह अपने पिता के विश्वास का वर्णन करूं। वह हर रोज एक सच्चे भक्त की तरह मूर्ति पूजा करते थे। जब वह बीमार रहते तो उनके आदेश से मैं हर सुबह पहले मूर्तियों को नहलाता-धुलाता, फिर कायदे से कपड़े पहनाता और फिर फूल-मिठाई वगैरह का प्रसाद चढ़ाता। ऐसी हालत में उनका बिस्तर थोड़े समय के लिए मूर्तियों के पास ही लगा दिया जाता और वह लेटे-लेटे भजन गाते रहते। मैंने कभी खुद से यह सवाल नहीं किया कि ऐसा करना गलत है या सही। मैं पिता का आदेश मानकर सब कुछ करता रहा। मेरे लिए यही काफी था कि मैं अपने पिता की इच्छाओं को पूरा कर रहा हूं। पिता जी की भक्ति भावना और हर रोज नियम से पूजा करने की आदत को देखते हुए यह कहना पड़ेगा कि वह एक सच्चे मूर्ति पूजक थे। पर आज मेरे दिमाग में एक सवाल उठता है। वह हर रोज सुबह और रात में मूर्ति पूजा जैसी ही श्रद्धा और भक्ति के साथ सिख धर्म ग्रंथों 'रोहोड़ा' और 'सुखमणि' का पाठ भी करते थे। मेरी समझ में नहीं आता कि वह इन धर्म ग्रंथों के पाठ के साथ मूर्ति पूजा का मेल किस तरह कर पाते थे। शायद लाखों अन्य लोगों की तरह उन्होंने कभी खुद को ऐसे सवालों से परेशान नहीं किया। उनके लिए इतना ही काफी था कि मूर्ति पूजा भी उन्हें उतना ही आनंद और संतोष देती है, जितना ईश्वर के निरंकार, अनंत, सर्वशक्तिमान, सर्वविद्यमान रूप की स्तुति में पाठ करना। जहां तक मेरा सवाल है, मूर्ति पूजा ने कभी मेरे मन में भक्ति भावना नहीं जगायी, लेकिन मैंने कभी इसे गलत भी नहीं माना। सौ में से 99 लोग धार्मिक मामलों में कभी भी क्यों और

कैसे जैसे सवाल नहीं उठाते । वे ठीक उसी तरह पूजा वगैरह करते रहते हैं, जैसे उनके बुजुर्ग करते थे और इसे हमेशा ठीक मानते हैं क्योंकि उनके माता-पिता ने यही सिखाया होता है।

जब मैं लाहौर आया तो हालात पूरी तरह बदल चुके थे । मेरे पिता जी गुजर चुके थे। मेरी पैदल यात्राओं ने मुझे दुनिया के एक नये रूप से परिचित कराया था । इससे मेरे दिमाग के बंद दरवाजे खुल गये थे और कई मामलों में मेरे विचार बहुत उदार हो गये थे । साथ ही सिख धर्म ग्रंथ बहुत प्रिय लगने लगे थे। डेरा इस्माइल खां के धरम प्रकाश स्कूल में मैंने गुरुमुखी सीख ली थी। एक बार हमारे स्कूल में शहर के एक प्रभावशाली सज्जन लाला हुकुम चंद गांधी आये, तो मैंने उनके सामने जाप जी का पाठ किया। इस पर उन्होंने खुश होकर अपनी जेब से *पंज ग्रंथी* की एक प्रति मुझे इनाम में दी। मेरी धार्मिक मान्यताएं भी मेरे पिताजी की मान्यताओं जैसी कमजोर और अनिश्चित थीं, लेकिन सिख धर्म की ओर मेरा एक स्पष्ट झुकाव था। इसके बावजूद मैं सनातन हिंदू धर्म और सिख धर्म के बीच कोई भेदभाव नहीं करता था।

इस तरह पड़ी धार्मिक विचारों की बुनियाद की वजह से ही मैं उन महानुभाव से निकट संबंध बना पाया, जो मुझे ब्रह्म समाज में खींच लाये। उनका नाम था पंडित शिव नारायण अग्निहोत्री। वह लाहौर के गवर्नमेंट स्कूल में हमें ड्राइंग और मेन्सुरेशन पढ़ाते थे। वह ब्रह्म समाज के पक्के अनुयायी, बहुत सक्रिय समाज सुधारक और उर्दू के बहुत अच्छे वक्ता थे। लाहौर में भाषणों को सुनना मेरे लिए एक अनोखा और सुखद अनुभव था। इससे पहले मैंने डेरा इस्माइल खां के बाज़ार में टूटी-फूटी उर्दू में ईसाई धर्म पर केवल पादरियों को भाषण देते सुना था। लाहौर में मैं नियमित रूप से ब्रहम मंदिर के साप्ताहिक प्रवचन में जाता था । उनमें आमतौर से पंडित नवीन चंद्र

राय या पंडित अग्निहोत्री का प्रवचन होता था। नवीन चंद्र राय संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। वह बहुत अच्छे वक्ता नहीं थे, लेकिन उनके प्रवचन प्रभावशाली और विचारोत्तेजक होते थे। इसका मुख्य कारण यह था कि वह अपनी बात को हिंदू धर्म ग्रंथों की कहानियों आदि से उद्धरण देकर समझाते थे। पंडित अग्निहोत्री अपनी विद्वता की कमी को अपने जोश और वाक्पटुता से पाट देते थे। वह धार्मिक प्रवचनों और सामाजिक विषयों पर दिये जाने वाले सार्वजनिक भाषणों की तैयारी बड़ी मेहनत से करते थे। पंडित अग्निहोत्री *इंडियन ऐसोसिएशन ऑफ कलकत्ता*[50] की लाहौर शाखा के एक प्रमुख सदस्य और प्रभावशाली वक्ता थे। गौरतलब है कि दिसंबर 1885 में *इंडियन नेशनल कांग्रेस* की स्थापना से पहले यही एकमात्र अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन था। मैं कभी-कभी रंग महल मिशन स्कूल में शाम को होने वाले भाषणों को भी सुनने जाता। यदा-कदा आर्य समाज[51] में सुबह होने वाले प्रवचन भी सुनता। सन् 1882 में पंडित अग्निहोत्री ने शिक्षा विभाग की नौकरी छोड़ दी और पूरे समय ब्रह्म समाज का काम करने के लिए सन्यासी बन गये। मुझे ब्रह्म मंदिर का वह दृश्य अच्छी तरह याद है, जब पंडित अग्निहोत्री सार्वजनिक रूप से सन्यासी बने थे। पंडित नवीन चंद्र राय ने पुजारी की भूमिका अदा करते हुए उन्हें एक नया नाम दिया – स्वामी सत्यानंद अग्निहोत्री। इसके बाद अपने लंबे जीवन के अंतिम क्षणों तक वह इसी नाम से जाने गये। मेरी जानकारी में यह पहला मौका था, जब किसी अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे व्यक्ति ने एक अच्छी तनख्वाह * वाली नौकरी छोड़कर अपनी जिंदगी समाज सुधार को समर्पित कर दी थी। वह हॉल इतना छोटा था कि दर्शक उसमें नहीं समा पा रहे थे। इसलिए बहुत से लोग बरामदे और अहाते में खड़े थे। ध्यान देने की बात यह है कि उस समय अगर किसी

* सन्यासी बनने के समय उन्हें 150 से 300 रुपये के बीच तनख्वाह मिलती थी।

सभा में 200 लोग भी इकट्ठा हो जाएं, तो उसे विशाल सभा कहा जाता था। पंडित अग्निहोत्री लंबे, छरहरे और सुदर्शन व्यक्तित्व के स्वामी थे। इसलिए जब वह ढीले-ढाले सन्यासी पहनावे में दर्शकों के सामने खड़े हुए, तो लोगों के मन में अपने-आप उनके लिए अथाह सम्मान पैदा हो गया। लोगों ने उनके भाषण को पूरी शांति और ध्यान से सुना। पर जब नवीन चंद्र उन्हें भविष्य के जीवन और धार्मिक नेता की जिम्मेदारियों के बारे में बताने लगे तो सभा में कुछ शोर होने लगा। दरअसल समाज का एक वर्ग ब्रह्म समाज से बहुत चिढ़ता था और ऐसा विश्वास है कि वही लोग सभा में अशांति फैलाने की कोशिश कर रहे थे। यह देखते ही पंडित अग्निहोत्री तुरंत अपनी जगह पर खड़े हुए और अपने सन्यासी चोगे को हाथ से पकड़कर जोशीले स्वर में बोले, "हिंदुस्तान ने वह सब कुछ खो दिया है, जिसकी वजह से इसे महान कहा जाता था। लेकिन दरिद्रता, गुलामी और अज्ञान के मौजूदा दौर में भी हमारे पास अभी एक चीज बाकी है और वह है इन गेरुआ वस्त्रों का सम्मान। यही हमारी सबसे मूल्यवान धरोहर है।" यह सुनते ही सभा में शांति छा गयी । फिर शरारती लोगों की कुछ गड़बड़ करने की हिम्मत नहीं हुई।

इस घटना का लोगों पर गहरा असर पड़ा और बहुत से जोशीले नौजवान ब्रह्म समाज में शामिल हो गये । इनमें से कई नौजवान पंडित अग्निहोत्री की तरह अपने सुनहरे भविष्य को त्याग कर अपना जीवन ब्रह्म समाज को समर्पित करना चाहते थे। ऐसे नौजवानों में देवी चंद गुप्ता (अपने सन्यासी नाम श्रद्धे प्रकाश देवा के नाम से लोकप्रिय), भाई सुंदर सिंह, भाई हरभगवान, भाई छतर सिंह और पंडित गिरधर राय विश्वासी प्रमुख थे। इनमें पहले दोनों सज्जन ब्रह्म समाज के पूरे समय के धर्म प्रचारक बन गये। भाई सुंदर सिंह (साधु सेवा सिंह के नाम से लोकप्रिय) ज्यादा समय तक जीवित नहीं रहे । वह बेहद विनम्र व्यक्ति थे और उनमें साधु बनने के सारे

गुण मौजूद थे। वह अपनी पत्नी और बच्चों के साथ मंदिर के हॉल के पीछे आश्रम में रहा करते थे । मैंने कई बार उन्हें मंदिर में झाड़ू लगाते देखा है। मुझे लगता है कड़ी मेहनत और सर्वस्व त्यागने की उच्च भावना के कारण ही उनकी असमय मौत हो गयी । वह बहुत अच्छा गाते भी थे। अकसर वह लाहौर की गलियों में इकतारा लेकर पैदल ही निकल जाते और हरि राम भजो जैसे अनेक सुंदर भजन गा-गा कर लोगों को सुनाते। वह हमेशा श्रद्धे प्रकाश देवा के साथ रहते और उनका हाथ बंटाते। वह उन्हें अपना गुरू और बड़ा भाई मानते थे। यहां मेरा मकसद इन दोनों भलेमानसों की जीवनी लिखने का नहीं है। लेकिन मैं इतना जरूर कहूंगा कि उत्तर भारत में ब्रह्म समाज की जड़ें जमाने में इन दोनों ने भारी योगदान किया। ब्रह्म समाज इनका ऋणी है। पंजाब में पैदा हुए ईश्वर भक्तों में इनका नाम काफी ऊपर है। चंद्र प्रकाश देवा ने कई धार्मिक पुस्तकों के रूप में आने वाली पीढ़ियों को एक अमूल्य धरोहर सौंपी। इनमें से कुछ का जिक्र मैं इसी अध्याय में आगे करूंगा।

पंडित गिरधर राय विश्वासी एक अन्य भलेमानस थे, जो पंडित अग्निहोत्री के कारण ब्रह्म समाज में शामिल हो गये थे। उन्होंने और ऊपर बताये गये अन्य सज्जनों ने ब्रह्म समाज के लिए बहुत त्याग किया। इन सज्जनों ने एक बार अपना सब कुछ ब्रह्म समाज को सौंप दिया। सिवाय पंडित अग्निहोत्री के (अग्निहोत्री में एक बदलाव आया, जिसकी चर्चा मैं आगे करूंगा) बाकी सबने अपना पूरा जीवन श्रद्धे प्रकाश देवा और साधु सेवा सिंह की तरह ब्रह्म समाज को समर्पित कर दिया था। पंडित गिरधर राय ने एक कवि और गायक के रूप में ब्रह्म समाज की बड़ी सेवा की और गीतों के जरिये ईश्वरवाद को पूरे प्रांत में फैलाया। उंनके प्रेरणादायक गीतों को जिसने भी उनके स्वर में या किसी और के स्वर में भी सुना, वह उन्हें कभी भुला नहीं

सका। अभी हाल तक वह मंदिर के काम-काज में लगे रहते थे और अपने गीत या भजन पूरे जोश से गाते थे। उनके गीतों का संग्रह "विश्वासी विनय" के शीर्षक से प्रकाशित हुआ और यह सिर्फ ब्रह्म समाजी परिवारों में ही नहीं, बल्कि पंजाबी परिवारों में भी खूब लोकप्रिय हुआ।

मुझे यह लिखते हुए दु:ख हो रहा है कि ब्रह्म समाज में भाई छतर सिंह का ज्यादा नाम नहीं हुआ। साधु सेवा सिंह की तरह वह भी ब्रह्म समाज की जरूरत से ज्यादा सेवा के कारण ही जल्दी ही चल बसे। जब भी ब्रह्म समाज में कोई काम होता, भाई छतर सिंह काम करने में सबसे आगे होते। वह एक गरीब व्यक्ति थे। शायद वह रेलवे के किसी दफ्तर में सिर्फ 20 रुपये की तनख्वाह पर बाबूगीरी किया करते थे। इस पर तुर्रा यह कि उनकी बीवी बेहद झगड़ालू और गुस्सैल थी, जिससे उनकी घरेलू जिंदगी में हमेशा कलह बना रहता था। लेकिन फिर भी वह प्रसन्न भाव से ब्रह्म समाज की सेवा में लगे रहते थे। वह इतने जोश से काम करते थे कि उन्हें देखकर और लोगों के मन में भी काम करने की इच्छा अपने आप पैदा हो जाती थी। भाई छतर सिंह सही अर्थों में एक धार्मिक व्यक्ति थे। सन् 1894 या 1895 में उनकी मृत्यु के समय मैं उनके पास ही था। मृत्यु से कुछ घंटे पहले वह बिस्तर के पास पड़ी एक तकिया पर अपनी उंगलियां चलाने लगे। मैं इसका मतलब नहीं समझ पाया। वह बार-बार उसी तरह उंगलियां चलाते रहे। फिर मुझे लगा कि वह उंगलियों से तकिये पर कुछ लिखने की कोशिश कर रहे हैं। ध्यान से देखने पर मुझे ऐसा लगा कि वह धार्मिक ग्रंथों का पाठ पढ़ने के लिए कह रहे हैं। मैंने तुरंत पाठ पढ़वाना और भजन गवाना शुरू कर दिया। कुछ घंटे बाद उन्होंने शांति से प्राण त्याग दिये। भाई छतर सिंह ने घरेलू कलह के बावजूद जिस लगन से ब्रह्म समाज की सेवा की उसका मेरे ऊपर बहुत गहरा असर पड़ा।

मैंने शायद इन बातों को कुछ ज्यादा ही विस्तार से बताया है। दरअसल मैं यह बताना चाहता हूं कि लाहौर में ब्रह्म समाज के संपर्क में आने पर शुरू में मेरा किन-किन व्यक्तियों से संबंध बना और वे कैसे थे। अभी तक मैंने उन चार व्यक्तियों के बारे में कुछ नहीं बताया है, जिन्हें नवीन चंद्र राय के साथ ब्रह्म समाज का संस्थापक माना जाता है। वे सभी अपने-अपने क्षेत्र के प्रभावशाली व्यक्ति थे। उस समय के आम लोगों की तुलना में वे कहीं ज्यादा नेक, ईमानदार और साहसी थे। दरअसल नौवें दशक की शुरूआत में "सारे मनुष्य भाई-भाई हैं" कहने के लिए भी साहस की जरूरत होती थी। खुलेआम यह कहना तो और भी मुश्किल था कि मोहम्मद साहब, ईसा मसीह और मानवता के अन्य महान पुजारी उसी तरह आदर-सम्मान व श्रद्धा के हकदार हैं जैसे राम, कृष्ण या हमारे देश के अन्य ऋषि-मुनि हैं। इस मुश्किल का अहसास पाठक नहीं कर पाएंगे, पर मैं अपनी निजी जानकारी और कड़वे अनुभवों के कारण यह बात कह पा रहा हूं। कोई भी यह नहीं बताता कि ब्रह्म समाजी वही बात कहते हैं, जो हिंदू धर्म ग्रंथों और महान हिंदू समाज सुधारकों के दोहों, चौपाइयों वगैरह में कही गयी है। कई बार पढ़े-लिखे और समाज सुधारक कहे जाने वाले व्यक्तियों ने इन विषयों पर सार्वजनिक बहस के लिए मुझे चुनौती भी दी। मैंने खुद बहुत बार देखा कि अगर सभा में ईसा मसीह या मोहम्मद साहब का नाम एक महान धार्मिक गुरू की तरह आदर-सम्मान से लिया जाये तो हाल फटाफट खाली हो जाता था। सिर्फ कुछ ब्रह्म समाजी ही बैठे रह जाते थे। ऐसे मौकों पर बाहर निकलने वाले लोग तरह-तरह के अपमानजनक फिकरे भी कसते जाते, जैसे 'अरे, ये तो ईसाई हैं,' 'ये तो मोहम्मद साहब को भगवान मानते हैं', 'इनका कोई अपना धर्म नही है,' 'इनमें राष्ट्रीयता की भावना नहीं है', वगैरह, वगैरह। मेरे दोस्त भाई काशीराम को सिर्फ इसलिए जाति से बाहर किया गया था

कि उन्होंने एक ईसाई मिशनरी के घर एक प्याला चाय पी ली थी। उनके अलावा और भी बहुत से शिक्षित और प्रभावशाली व्यक्तियों को भी यह दंड दिया गया था। ब्रह्म समाजी होने और लाला हरकिशन लाल जैसे जाति-निकाले व्यक्ति के साथ खान-पान करने के कारण बहुत से शिक्षित लोग मेरे मुंह पर ही मुझे गाली देते थे। मैंने दो बार ऐसे काम किये कि मुझे लोगों के गुस्से का शिकार होना पड़ा। पहली बार सन् 1882 में मैंने हाल में ही ईसाई बने एक व्यक्ति को हिंदुत्व ग्रहण करवाया। दूसरी बार अप्रैल 1884 में मैंने एक ऐसे नौजवान के साथ भोजन करने की गलती की, जो असल में हिंदू था, पर कुछ समय पहले मुसलमान बन गया था और अब फिर हिंदू बनना चाहता था। मैं और लाला हरकिशन लाल उसके यहां भोजन करके उसकी हिंदू बनने की इच्छा-पूर्ति का माध्यम बन रहे थे। शायद अंतिम दशक के शुरुआत की बात है कि एक बार मुझे और भाई काशी राम को कुछ शिक्षित लोगों ने एक सार्वजनिक सभा से उठकर बाहर जाने के लिए खुलेआम कहा, क्योंकि वे वहां मिठाई बांटने जा रहे थे। इन शिक्षित लोगों में दो राय बहादुर और जिला जज भी शामिल थे। लेकिन वे ऐसा कर नहीं पाये, क्योंकि दरी पर सारे लोगों के साथ दो ब्रह्म समाजी भी आसन जमाये बैठाये थे। ऐसी घटनाओं की तादाद बहुत ज्यादा है, लेकिन मुझे लगता है कि ऊपर बतायी गयी एक-दो घटनाओं से ही लोग समझ गये होंगे कि उस समय ब्रह्म समाजियों को कितनी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।

मुझे याद नहीं आ रहा कि मैं ब्रह्म समाज का नियमित सदस्य कब बना, लेकिन लाहौर आने के एक या दो साल के भीतर ही मैं इसका समर्थक जरूर बन गया था। जल्दी ही ब्रह्म समाज की गतिविधियों में मेरी दिलचस्पी इतनी ज्यादा बढ़ गयी कि ज्यादातर लोग मुझे ब्रह्म समाज का सदस्य ही समझने लगे। भाई काशीराम के साथ मिलकर मैंने *यंग मेन्स रिलिजियस*

ऐसोसिएशन नामक संस्था का गठन किया। इसकी साप्ताहिक बैठक मंदिर में ही हुआ करती थी। मैं इस संस्था का सचिव था। ब्रह्म समाज का कोई भी सदस्य या समर्थक इसका सदस्य बन सकता था। संस्था की गतिविधियों के तहत हम प्रार्थना सभाओं, व्याख्यानों और वाद-विवाद कार्यक्रमों का आयोजन किया करते थे। जल्दी ही यह एक बहुत सक्रिय संस्था बन गयी। खासतौर से इसके वाद-विवाद कार्यक्रमों में बहुत भीड़ रहती थी। बाहरी लोग भी चर्चाओं में खुलकर हिस्सा लेते थे। कई बार वे ही वाद-विवाद की शुरुआत भी करते थे। लेकिन इस कार्यक्रम का अध्यक्ष हमेशा संस्था का कोई सदस्य ही बनता था। *यंग मेन्स रिलिजियस ऐसोसिएशन* के तहत दिये गये मेरे दो-तीन व्याख्यानों का सारांश पैम्फलेट के रूप में छपा भी था। इनमें से *बुक रिवीलेशन* नामक एक पैम्फलेट काफी समय तक ब्रह्म समाज के बुक-स्टाल पर बिकता रहा। चर्चाओं के अन्य विषयों में *बुक रिवीलेशन*, *द एक्सिसटेन्स ऑफ गॉड*, *द एक्सिसटेन्स ऑफ ईविल* और *प्रेयर* प्रमुख थे। उन दिनों धार्मिक और सामाजिक विषयों पर जगह-जगह वाद-विवाद कार्यक्रम आयोजित किये जाते थे। कभी-कभी *टेनीसन एंड साइंस*, *मिस्टीसिज्म इन इंग्लिश पोयेट्री*, *शेक्सपियर ऐज़ ए मोरालिस्ट* और सर वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों जैसे गंभीर और विद्वतापूर्ण विषयों पर भी चर्चाएं आयोजित की जातीं थीं। ब्रह्म मंदिर के पास ही चर्चाएं आयोजित करने के लिए दो अन्य जगहें भी थीं। एक का नाम था रामजी दास पब्लिक रोस्ट्रम और दूसरी जगह लताफत हॉल के नाम से जानी जाती थी। अनारकली बाज़ार से ब्रह्म मंदिर जाने वाली हॉस्पिटल रोड के बायें कोने पर बनी दुकान ही रामजी दास पब्लिक रोस्ट्रम कहलाती थी यह दुकान अनारकली बाज़ार की ओर खुलती थी, इसलिए यहां बड़ी जल्दी भीड़ लग जाती थी। रामजी दास उदार विचारों वाले सज्जन थे। उन्होंने खुद को किसी विशेष धर्म से

नहीं जोड़ रखा था। वह ईसाई और इस्लाम धर्म समेत कई धर्मों को अपना चुके थे। रामजी दास कुसुर के रहने वाले थे और शुरू में एक स्कूल चलाते थे। बाद में वह लाहौर में ही बस गये। वह सादा जीवन जीने वाले व्यक्ति थे। जरूरत पड़ने पर वह अपने किसी दोस्त से एक या दो रुपया उधार मांग लेते थे । वह सिर्फ ऐसी जगह ही रुपया मांगते थे, जहां से खाली हाथ वापस आने की कोई गुंजाइश नहीं होती थी। उनका ज्यादातर समय पब्लिक रोस्ट्रम में ही खपता था। वह वाद-विवाद के लिए दो या तीन लोकप्रिय विषय चुन लेते थे। अगर वाद-विवाद शुरू करने के लिए कोई वक्ता मौजूद नहीं होता तो वह खुद ही बोलना शुरू कर देते और तब तक बोलते रहते जब तक कि कोई और वक्ता बोलने के लिए नहीं आ जाता। जो कोई भी बोलना चाहता उसे पहले मेज़ पर एक पैसा रखना पड़ता था। तभी उसे बोलने की इजाजत मिलती थी। इस तरह इकट्ठा हुए पैसों से दुकान का किराया चला जाता था, और शायद रामजी दास के निजी खर्चों के लिए भी एक-दो आना बच जाता था। इस तरह रोस्ट्रम हर शाम दो या तीन घंटों के लिए भरा रहता था। वाद-विवाद सुनने के लिए सारे श्रोता बाज़ार में खड़े रहते थे और बाज़ार में आने वाले तमाम तरह के लोग ही ज्यादातर श्रोता बनते थे। कभी-कभी कॉलेज में पढ़ने वाले कुछ नौजवान वाद-विवाद के लिए खुद ही कोई विषय चुन लेते और फिर रोस्ट्रम पर जाकर अपने दिल की बात खुले मन से कहते। अन्य छात्रों की तरह मैं भी कभी-कभी रोस्ट्रम पर होने वाले वाद-विवाद में हिस्सा लेता था। मुझे खासतौर से उस वाद-विवाद की याद है, जिसका विषय *बुक रिवीलेशन* था। इस विषय पर बोलने के लिए मैं अपनी जेब में पत्थर के तीन सुंदर पेपरवेट रखकर ले गया था। ये पेपरवेट किसी छोटी-सी जिल्ददार किताब की आकृति के थे। इन्हें मेरे पुश्तैनी कस्बे में बनाया और बेचा जाता था। इनकी कीमत शायद कुछ आने थी। अपनी

बात कहते-कहते मैंने अपनी जेब से एक पेपरवेट निकाला और उसे श्रोताओं को दिखाते हुए कहा कि कुछ लोग कहते हैं सिर्फ इस किताब में ईश्वर की सच्चाई लिखी है, जबकि कुछ लोग यह दावा इस किताब के लिए करते हैं (इस समय मैं दूसरा पेपरवेट जेब से निकालकर श्रोताओं को दिखाता)। दुनिया में मौजूद बहुत सारे लोग अपनी-अपनी किताब के लिए ऐसा दावा करते हैं और दूसरे के दावे को गलत बताते हैं।

ब्रह्म मंदिर के पास ही सार्वजनिक वाद-विवाद की दूसरी जगह थी, जिसे लताफत हॉल के नाम से जाना जाता था। मोटे तौर पर यह जगह वहीं थी, जहां आज स्वर्गीय आर.बी.लाल चंद के घर का सामने वाला हिस्सा है। मुझे याद आता है इसके पास कोई मकबरा भी था। दरअसल वहां न तो कोई हॉल था और न ही कोई इमारत थी। लताफत हॉल खुला हुआ मैदान था, जिसका सड़क से लगा हुआ हिस्सा कुछ फुट ऊंचा उठा दिया गया था। मुझे याद नहीं आता कि वहां का बंदोबस्त कौन करता था, लेकिन वहां विभिन्न विषयों पर सार्वजनिक वाद-विवाद और सार्वजनिक व्याख्यान आयोजित किये जाते थे। यह आयोजन गर्मियों की गर्म शामों में हफ्ते में दो बार होता था। यहां होने वाली चर्चाएं कुछ ऊंचे स्तर की होती थीं। यहां कभी-कभी सहित्यिक भाषण भी होते थे।

आज सोचने पर मुझे लगता है कि इन वाद-विवादों से कोई खास मकसद हल नहीं होता था। हम कॉलेज के छात्र इनकी ओर इसलिए आकर्षित होते थे कि इनके जरिये हमें मंच पर भाषण देने के अभ्यास का मौका मिलता था और हमारा अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान भी बढ़ता था। यहां सारे भाषण अंग्रेज़ी में ही दिये जाते थे। उर्दू में सिर्फ मंजे हुए वक्ताओं का भाषण ही कबूल होता था। फिर भी ज्यादातर वाद-विवाद असलियत से बहुत दूर होते थे। इसके अलावा इनसे कलह का वातावरण भी बनता था। अच्छा ही हुआ कि धीरे-

धीरे इनका चलन बिलकुल खत्म हो गया।

पब्लिक रोस्ट्रम और लताफत हॉल जैसे दिलचस्प वाद-विवाद केन्द्रों के बारे में बताने की धुन में मैं ब्रह्म समाज के संस्मरणों से बहुत दूर निकल गया। निजी यादों को बताने के सिलसिले में अकसर ऐसा भटकाव हो ही जाता है। ब्रह्म समाज से मेरे पहले संपर्क के समय पूरी संस्था में कूच बिहार विवाह के सिलसिले में उत्तेजना फैली हुई थी। लाहौर में ब्रह्म समाज ने इस फूट के प्रति उदासीन रुख अपनाया था, लेकिन वास्तव में यहां *साधारणिस्ट्स* का दबदबा था। उस समय हिंदुस्तान में ब्रह्म समाज से अलग हुए लोगों को इसी नाम से पुकारा जाता था। मैं इन सांप्रदायिक मतभेदों और झगड़ों के बारे में ज्यादा बताना नहीं चाहता, क्योंकि मैंने इसमें कभी दिलचस्पी नहीं ली और आज तक किसी भी पक्ष का जरा-सा भी समर्थन नहीं किया। सबसे दिलचस्प बात यह है कि दोनों ही पक्षों के कुछ कट्टर लोग मुझ पर आरोप लगाते थे कि मुझे असल ब्रह्म समाजी नहीं माना जा सकता क्योंकि मैं किसी एक पक्ष का समर्थक नहीं हूं। ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम थी, इसलिए मैं जीवन भर दोनों पक्षों के नेताओं का प्रिय बना रहा। मैंने भी दोनों पक्षों के नेताओं का बिलकुल एक जैसा आदर-सम्मान किया।

मुझे यह लिखते हुए बड़ा दु:ख हो रहा है कि सांप्रदायिक मतभेदों के कारण ही लाहौर के ब्रह्म समाज में भी दरार पड़ गयी और ब्रह्म मंदिर में दो साप्ताहिक सभाएं होने लगीं। पहली इतवार की शाम को होती थी और दूसरी बुधवार को। एक का संचालन लाला काशी राम या भाई रल्ला राम भीबट करते थे और दूसरी सभा में पंडित अग्निहोत्री या नवीन राय प्रवचन दिया करते थे। फिर भी भीतरी कलह बढ़ती ही गयी। लाहौर के ब्रह्म समाज में पंडित अग्निहोत्री के अनुयायियों की तादाद बहुत ज्यादा थी, क्योंकि

उन्होंने बहुत से नौजवानों को ब्रह्म समाज की ओर खींचा था। इसलिए उन्हें ऐसा लगने लगा कि अगर वह स्वतंत्र रूप से अपनी गतिविधियां चलायें तो ज्यादा बेहतर होगा। यह एक दुर्भाग्यशाली फैसला था। दोस्तों ने उन्हें काफी समझाया, पर सार्वजनिक जीवन में मिली कामयाबी के नशे ने उन्हें काफी हद तक निरंकुश बना दिया था। जो व्यक्ति हमारे सामने विवेक और अंतरात्मा की आवाज़ की जबर्दस्त वकालत करता था, उसे ही कुछ ऐसा विश्वास हो गया कि कुदरत ने उसे कुछ ऐसी असाधारण शक्तियां प्रदान कर रखी हैं, जो आम लोगों के नसीब में नहीं हैं। उनके बाद के जीवन में यह विश्वास और भी ज्यादा मुखर हो गया। मुझे लगता है पंडित अग्निहोत्री जैसे असाधारण व्यक्तित्व पर मनोवैज्ञानिक शोध व अध्ययन होना चाहिए था। लेकिन यह मेरा अपना विचार है।

पंडित अग्निहोत्री ने धार्मिक क्रियाकलापों के लिए एक नया केन्द्र स्थापित करने का फैसला ले लिया। उनके सबसे पक्के अनुयायी और प्रशंसक श्रद्धे प्रकाश देवा के अनुसार उनके इस फैसले को भारी तादाद में ब्रह्म समाजियों का समर्थन प्राप्त था। बाद में यही लोग इस नये केन्द्र का मुख्य हिस्सा भी बने। सभी लोगों को विश्वास था कि इस नये केन्द्र में भी ब्रह्म समाज के आदर्शों का ही प्रचार-प्रसार किया जाएगा। वे सोचते थे कि यहां उदासीन ब्रह्म समाज की तुलना में कहीं ज्यादा उत्साह और भक्ति के साथ यह काम करना संभव होगा। उनका यह विचार पंडित अग्निहोत्री द्वारा लिखी एक पुस्तक ने सही और पक्का साबित कर दिया। इस प्रेरणादायक पुस्तक का शीर्षक था 'रुहानी जिंदगी'। यह पुस्तक ब्रह्म समाजियों के बीच काफी लोकप्रिय हुई। बहुत से ब्रह्म समाजियों और अन्य लोगों ने अपनी धार्मिक सोच को पैना करने में इस पुस्तक की मदद ली। कुछ सालों तक देवा समाज के नाम से पंडित अग्निहोत्री के नये केन्द्र ने तेजी से प्रगति की। सभी लोग

इसे ब्रह्म समाज की ही एक शाखा मानते थे। मेरे जैसे जो लोग अपने आपको मुख्य ब्रह्म समाज से अलग नहीं कर पाये थे, वे भी यदा-कदा पंडित अग्निहोत्री का प्रवचन सुनने जाया करते थे। उन्होंने एक बड़ा घर भी बनवा लिया था, जिसमें ब्रह्म समाज से भी बड़ा हॉल था। बहुत से उत्साही और समर्पित नौजवान अनुयायियों की मदद से पंडित अग्निहोत्री ने अपने संदेश को कई अन्य जिलों तक फैला दिया। इस बीच उन्होंने भारी मात्रा में धार्मिक साहित्य भी रचा। इन सारी गतिविधियों के बीच एक दिन अचानक पंडित अग्निहोत्री में एक बहुत बड़ा बदलाव आया। उन्हें ईश्वर पर से पूरा विश्वास उठ गया और अपने धर्म को विज्ञान सम्मत कहते हुए उन्होंने रुढ़िवादी हिंदुत्व के वे सारे प्रतीक अपना लिये, जिन्हें ब्रह्म समाज में शामिल होने से पहले उन्होंने बड़ी खुशी से त्यागा था।

यह बदलाव कैसे आया? दरअसल कहानी यह थी कि उनकी फिरोजपुर के एक अंधे प्लीडर चंदा सिंह से मुकदमेबाजी चल रही थी। इसमें वह बुरी तरह हार गये। अग्निहोत्री का विश्वास था कि वह सही थे, जबकि अदालत ने उनके खिलाफ फैसला सुनाया था। उनका सोचना था कि ईश्वर ने उन्हें इस तरह हारते हुए कैसे देख लिया? अगर ईश्वर उनके जैसे सही पक्ष की मदद नहीं कर सका, तो वह दलित मानवता की क्या भलाई करेगा? दुनिया में व्यक्ति के चारित्रिक पतन जैसा दु:खद और कुछ नहीं होता। दुनिया के बहुत सारे लोगों की तरह पंडित अग्निहोत्री भी अपने किनारे से भटक चुके थे। बिना किसी पतवार और कुतुबनुमा के जीवन के सागर में उनकी नैया डगमग-डगमग कर रही थी। वह लहरों के साथ कभी ऊपर जाते तो कभी नीचे। मेरा विश्वास है कि हर व्यक्ति के जीवन में ऐसा दुष्कर समय एक बार जरूर आता है। ऐसे में अपने स्थान से विचलित न होने के लिए बड़े साहस की जरूरत होती है। दुर्भाग्य से अग्निहोत्री का साहस जवाब दे

गया और खुद को परिपूर्ण समझने के गर्व में वह अपने आपको सर्वश्रेष्ठ मानव समझने की भूल कर बैठे । इस मुद्दे पर मैं ज्यादा ज़ोर देना नहीं चाहता। मैं बस इतना ही कहूंगा कि आर्चेन्जल ल्यूसीफर की तरह उन्हें भी आखिर में अपना बनाया स्वर्ग खोना पड़ा।

मैंने खुद अपनी आंखों से देखा कि पंडित अग्निहोत्री के कुछ अनुयायी उनकी ठीक उसी तरह पूजा करते थे, जैसे 10-12 साल पहले डेरा इस्माइल खां में मैं पिताजी के कहने पर भगवान की मूर्तियों की किया करता था। तभी पंडित अग्निहोत्री ने मुझे एक समारोह में आमंत्रित किया। मेरे विचारों को जानते हुए भी उन्होंने मुझे क्यों आमंत्रित किया, यह बात समझ में नहीं आई। पर वहां मैंने जो कुछ देखा, वह शायद मेरे जीवन का सबसे पीड़ादायक दृश्य था। देवा समाज का विशाल हॉल पुरुषों से खचाखच भरा था। महिलाएं इक्का-दुक्का ही दिख रहीं थीं। मुझे लगता है, इनमें से ज्यादातर व्यक्तियों को मेरी ही तरह समारोह में आमंत्रित किया गया था। हॉल के एक तरफ खूब सजा-धजा मंच बना था, जिसके बीच में लकड़ी की एक सिंहासन जैसी चौकी रखी थी। ऊपर शानदार चंदवा तना था और इसके खंभे को झंडियों, बंदनवार, फूलों वगैरह से खूब सजाया गया था। किसी भी ओर नज़र घुमाने पर ऐसा लगता था जैसे हम किसी भव्य समारोह में हिस्सा लेने आये हैं।

हमें ज्यादा देर इंतजार नहीं करना पड़ा । जब सभी लोग अपनी जगह पर बैठ गये तो साथ वाले कमरे से पंडित अग्निहोत्री बाहर आये। उन्होंने लाल रेशम से बने वस्त्र पहन रखे थे और सिर पर सोने का मुकुट लगा रखा था। कुल मिलाकर वह रास लीला के प्रदर्शनों में भाग लेने वाले कृष्ण जैसे लग रहे थे। मैंने ऐसे बहुत से प्रदर्शन डेरा इस्माइल खां में कल्याण दास की कंपनी के आंगन में देख रखे थे। उनके कुछ अनुयायी उनके साथ

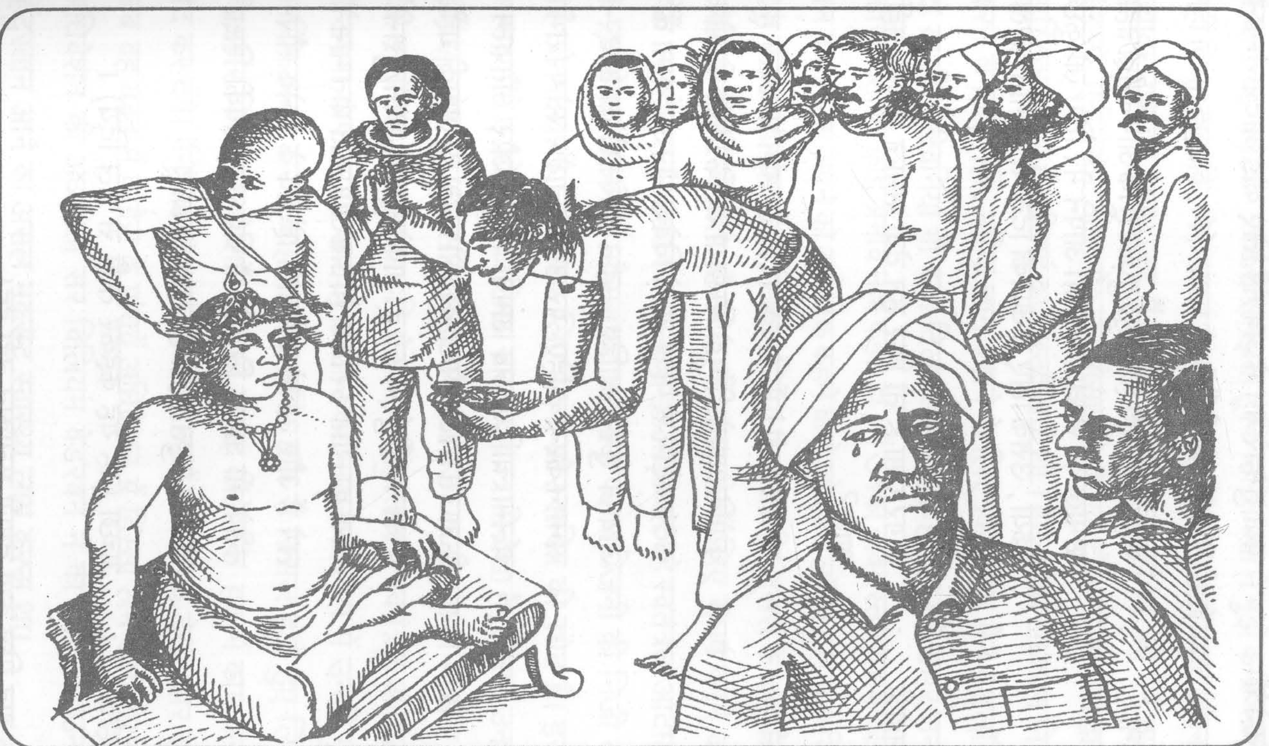
आये और उन्हें आदर के साथ मंच पर रखी चौकी पर बैठा दिया गया।

इसे आप जरा भी अतिश्योक्ति न समझें कि यह देखकर मेरा मन ग्लानि से भर गया। लेकिन अभी मेरे नसीब में इससे भी ज्यादा पीड़ादायक दृश्य देखना बदा था। अगर मैंने यह सब कुछ खुद अपनी आंखों से न देखा होता, तो शायद मैं कभी इस पर विश्वास भी नहीं करता। एक थाली में आरती जलाकर फूलों वगैरह समेत पंडित अग्निहोत्री की पूजा-अर्चना की जाने लगी। सबसे ताज्जुब की बात यह थी कि यह पूजा कुछ ग्रेजुएट लोगों समेत उच्च शिक्षा प्राप्त लोग कर रहे थे! व्यक्ति पूजा जैसा गिरा हुआ काम वे कैसे कर पाये, समझ में नहीं आता। मुझे यह देखकर और भी दु:ख हुआ कि 500 लोगों के सामने पंडित अग्निहोत्री की आरती उतारने वाले पांच प्रमुख भक्तों में मेरा दोस्त एस. गुरुमुख सिंह, बी. ए. सबसे आगे था। यह देखकर मेरी आंखों से अपने आप ही आंसू बहने लगे। मैं अपने आप से बार-बार पूछने लगा, क्या यही वह व्यक्ति है, जिसकी शिक्षा और कार्यों से प्रेरणा लेकर मैं ब्रह्म समाज में शामिल हुआ?

इस दु:खद अनुभव के बाद मैंने सोच लिया कि अब मैं देवा समाज या इसके संस्थापक से कोई संबंध नहीं रखूंगा। कई सालों बाद एक सुबह युनिवर्सिटी क्न्वोकेशन हॉल के पास सड़क पर पंडित अग्निहोत्री से मेरी मुलाकात हो गयी। वह मुझसे बात करने के लिए रुक गये। मेरे और उनके बीच कुछ इस तरह बातचीत हुई:

अग्निहोत्री : बहुत समय हो गया तुम मुझसे मिलने नहीं आये।

साहनी : हम दोनों अलग-अलग रास्तों पर चल रहे हैं। आपका रास्ता एक तरफ है और मेरा दूसरी तरफ।



पंडित अग्निहोत्री को अपनी पूजा -अर्चना करवाते देखकर मेरी आंखो से आंसू बह निकले ।

अग्निहोत्री : क्या तुम्हारे मन में अब मेरे लिए कोई आदर-सम्मान नहीं बचा है?

साहनी : नहीं, ऐसा नहीं है। मैं शुक्रगुज़ार हूं कि आपने मुझे ब्रह्म समाज का रास्ता दिखाया। आपने मेरे लिए जो कुछ किया, उसके लिए मैं आपका दिल से सम्मान करता हूं।

अग्निहोत्री : अगर ऐसा है तो फिर तुम देवा समाज में क्यों नहीं आते?

साहनी : महाराज जी! मैं आपका दिल से सम्मान करता हूं क्योंकि आपने ही मुझे सिखाया था कि किसी भी ओर कदम बढ़ाने से पहले अपने विवेक और अंतरात्मा की आवाज सुननी चाहिए। महान व्यक्तियों का आदर-सम्मान करना चाहिए, पर उनके बताये रास्ते पर तभी चलना चाहिए जब अपना विवेक और अंतरात्मा इजाजत दें। अब मैं जो कुछ भी करता हूं, आपकी यही शिक्षा मानते हुए करता हूं। आपने खुद ही अपनी पुरानी सीख का त्याग कर दिया है। अब आप जात-पांत मानने लगे हैं और आपने रुढ़िवादी हिंदुत्व के अनेक तौर-तरीके भी अपना लिये हैं। मैं यह सब आपकी शिक्षा मानकर बहुत पहले ही त्याग चुका हूं

अग्निहोत्री : अच्छा (वह यह कहकर तेजी से चल दिये)।

इसके बाद फिर कभी हमारी मुलाकात नहीं हुई।

मैं यहां यह बताना जरूरी समझता हूं कि नास्तिकता ने मुझे कभी भयभीत नहीं किया। हालांकि, मेरे ख्याल से शंकालु लोगों के लिए अज्ञेयवाद अपनाना ज्यादा उपयुक्त होगा। जब मैं कॉलेज में पढ़ाई कर रहा था, तो मैंने चार्ल्स ब्रेडलॉ, ऐनी बेसेन्ट और सेकुलर सोसाइटी के एक-दो अन्य सदस्यों द्वारा नास्तिकवाद पर लिखी गई कई पुस्तकें पढ़ीं थीं। मैंने इनका अध्ययन निन्दा करने के लिए नहीं, बल्कि ज्ञान बढ़ाने के लिए किया था। मैंने ब्रेडलॉ की दो या तीन जीवनियां भी बड़ी दिलचस्पी से पढ़ी हैं। पर मेरे ऊपर उनकी नास्तिकता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हां, मैं उनका जबर्दस्त प्रशंसक जरूर बन गया। काश अपने को आस्तिक कहने वाले लोग ब्रेडलॉ की तुलना में सिर्फ दस फीसदी ही ईमानदार, सच्चे, निर्भय, परोपकारी, दूसरों के लिए जान जोखिम में डालने वाले और देश की आजादी के लिए संघर्ष करने वाले होते। उन्होंने सन् 1860 के आस-पास इटली में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन के एक बेहद खतरनाक और संकट भरे मोड़ पर माज्जिनी की निजी तौर पर जो मदद की, वह सबके लिए प्रेरणा और शक्ति की स्रोत है। इसके अलावा मैंने ए.ओ. ह्यूम को लिखा उनका वह पत्र भी देखा है, जिसमें उन्होंने *इंडियन नेशनल कांग्रेस* के संस्थापकों की बड़ी शालीनता से भर्त्सना की थी। दरअसल हुआ यह था। कि ब्रेडलॉ ने हिंदुस्तान के स्वतंत्रता आंदोलन में अपना काफी समय खपाया था और कांग्रेस इसके बदले में उनकी कुछ आर्थिक मदद करना चाहती थी उन्होंने ह्यूम से नाराज़ होते हुए लिखा कि अगर फिर ऐसी कोशिश की गयी तो वह कांग्रेस के हक में काम करना बंद कर देंगे। मैंने ब्रेडलॉ को दिसंबर 1889 में उस समय देखा और सुना जब वह बंबई में कांग्रेस के पांचवें अधिवेशन में हिस्सा लेने आये थे। इस अधिवेशन की अध्यक्षता सर विलियम वेडरबर्न ने की थी। वैसे उनका हिंदुस्तान आने का असल मकसद स्वास्थ्य लाभ करना था।

ब्रेडलॉ के बारे में विस्तार से बताकर मैंने यह लंबा विषयान्तर इसलिए किया है, ताकि आपको यह पता लगे कि पंडित अग्निहोत्री में आये बदलाव से मैं कितना परेशान हो गया था। उन्होंने न केवल ब्रह्म समाज से अपना नाता तोड़ लिया था, बल्कि सर्व ाक्तिमान ईश्वर से भी उनका भरोसा उठ गया था। लेकिन मेरे धैर्य का बांध पूरी तरह से तब टूटा , जब मैंने देखा कि वे आदर-सम्मान का वह स्थान पाने की कोशिश कर रहे हैं, जिसके लिए मनुष्य को कभी सोचना भी नहीं चाहिए।

मुझे याद नहीं आता कि मैं ब्रह्म समाज का नियमित सदस्य कब बना। हां, इतना तय है कि मैं नौकरी में आने से पहले ब्रह्म समाजी नहीं बना था। पंडित अग्निहोत्री, नवीन चंद्र राय, लाला काशी राम और अन्य नेताओं के संपर्क में आने के तुरंत बाद मैंने जनेऊ पहनना छोड़ दिया था और जात-पांत मानना भी बंद कर दिया था। मैं ब्रह्म समाज के सभी मह त्त्वपूर्ण समारोहों में आमंत्रित किया जाता था। मैं प्रीति भोज में भी नियमित रूप से शामिल होता था। उन दिनों हर उत्सव में प्रीति भोजन का आयोजन अनिवार्य रूप से होता था। मैं ब्रह्म समाज का सदस्य नहीं था, लेकिन मेरे उदार आचार-व्यवहार और रहन-सहन से लोगों को विश्वास हो गया था कि मैं जल्दी ही ब्रह्म समाजी बनने वाला हूं। मुझे एक पक्के ब्रह्म समाजी नेता लाला बेनी प्रसाद की लड़की और मुल्क राज भल्ला (लाला हंस राज के भाई) की शादी में शामिल होने की याद है। यह शादी ब्रह्म समाज के रीति-रिवाजों के मुताबिक मंदिर के हॉल में संपन्न हुई थी। मुझे लगता है यही वह मौका है जब मुझे नवीन चंद्र राय के बारे में कुछ बताना चाहिए। मैं उनके बारे में जो बताना चाहता हूं, वह शायद आज किसी जीवित व्यक्ति को मालूम नहीं है। बाबू नवीन चंद्र सन् 1869 में एक साथ दो पदों पर काम करने के लिए लाहौर आये थे। ये दो पद थे – वाइस प्रिंसिपल, ओरियंटल कॉलेज और

असिस्टेंट रजिस्ट्रार, पंजाब युनिवर्सिटी। युनिवर्सिटी को डिग्री प्रदान करने का अधिकार सन् 1882 में मिला। इससे पहले युनिवर्सिटी सिर्फ डिप्लोमा देने के लिए इम्तहान लेती थी। नवीन चंद्र एक असाधारण व्यक्ति थे। यह मानना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि उन्होंने पंजाब में हिंदी साहित्य की नींव रखी। इससे पहले पंजाब में हिंदी किताबें नहीं छपती थीं। उन्होंने न केवल खुद किताबें लिखीं, बल्कि वहां के पंडितों को भी हिंदी भाषा में किताबें लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। कहा जाता है कि कभी-कभी वे खुद किताब लिखते थे, लेकिन औरों को प्रोत्साहित करने के लिए उसे दूसरों के नाम से छपवा देते थे। वह हमेशा नि:स्वार्थ भाव से दूसरों की भलाई करने में जुटे रहते थे। जो कोई भी उनके पास मदद या सलाह के लिए पहुंचता, वह संतुष्ट होकर ही वापस जाता। वह अपने खाली समय का सदुपयोग दूसरों को पढ़ाने, उपदेश देने, सलाह देने और मदद करने में करते थे। बहुत लोगों के लिए यह एक खबर होगी कि दरअसल नवीन बाबू ही *अखबर-ए-अम* के असल संस्थापक थे। हुआ यह कि पंजाब युनिवर्सिटी से निकलने वाले *अंजुमन-ए-पंजाब* में एक पंडित मुकंद राम काम करते थे। उन्होंने अपने दोनों लड़कों के रोजगार के सिलसिले में नवीन चंद्र राय से सलाह-मशिवरा किया। नवीन बाबू ने कहा कि उन्हें उर्दू में कोई साप्ताहिक या अखबार निकालना चाहिए। इसके लिए नवीन बाबू हिंदी में टिप्पणियां, खबरें वगैरह लिखते थे, जिनका मुकंद राम के लड़के उर्दू में अनुवाद करके अपने अखबार में छापते थे। इस तरह नवीन चंद्र बहुत समय तक *अखबर-ए-न्म* की मदद करते रहें। नौवें दशक की शुरूआत में अकसर पंडित मुकंद राम के लड़के गवर्नमेंट कॉलेज के हॉल में बैठे *सी.एंड एम.गजट* से उर्दू में नोट लेते रहते थे। बाद में इन्हें वे अपने अखबार में छापते थे। पंडित नवीन चंद्र राय ने अपनी जिंदगी में सबसे बड़ा काम यह किया कि एक अनाथ बच्चे को उसके पैरों

पर खड़ा करके उसे इज्जतदार नागरिक बनाया।

हुआ यह कि एक दिन नवीन चंद्र को एक छोटा बच्चा सड़क पर भीख मांगते दिखा। पूछताछ करने पर उन्हें पता चला कि वह बच्चा अपने मां-बाप से बिछुड़ गया था और उसकी देख-रेख के लिए अब कोई नहीं था। नवीन चंद्र उसे घर ले आये और ऊधो यानी अनाथ बच्चे के नाम से एक खाता खोल लिया। इसी पूंजी से नवीन चंद्र ने उस लड़के को उबले चने बेचने का धंधा करवा दिया। ऊधो उनकी रसोई में ही खाना खाता और रोज गली-गली जाकर उबले चने बेचता। नवीन चंद्र खुद हिसाब लगाकर हर रोज का मुनाफा अलग रखते जाते । इस आमदनी का पक्का हिसाब रखा जाता। कुछ महीनों बाद ऊधो के खाते में कुछ रुपये इकट्ठा हो गये।

अब नवीन चंद्र ने ऊधो का उबले चने बेचने का धंधा बंद करवा दिया। वह उसे अपने साथ सार्वजनिक नीलामी में ले जाते और उसकी तरफ से बोली लगाकर पुरानी किताबें, छोटे-मोटे सामान, क्रॉकरी वगैरह खरीदते। वह हमेशा ऐसी ही चीजें खरीदते, जिनकी तुरंत बिक्री की उम्मीद होती और जिनकी कीमत ऊधो की जेब की माफिक होती । नवीन चंद्र के घर के एक कमरे का कोना ऊधो का स्टोर बन गया था। नवीन चंद्र उसे बताते कि फलां-फलां सामान लेकर फलां-फलां व्यक्ति के पास बेचने जाओ। मसलन अगर साइंस की कोई किताब होती तो उसे साइंस के किसी प्रोफेसर के पास भेजा जाता। वह उसे किताब की एक कीमत भी तय करके बता देते। ना इससे एक पैसा इधर ना एक पैसा उधर। इस तरह नवीन चंद्र की सलाह पर कारोबार करते हुए ऊधो ने कुछ सौ रुपये इकट्ठे कर लिये। उसे सबसे ज्यादा मुनाफा नीलामी में पुरानी उपयोगी किताबों को खरीदकर उपयुक्त व्यक्ति को बेचने से होता था। कई बार सिर्फ चंद आनों में खरीदी गयी किताब, फटाफट कई रुपयों में बिक जाती थी। अब ऊधो के पास एक बार फिर अपना

कारोबार बदलने के लायक पूंजी हो गयी थी। नवीन चंद्र की सलाह पर ऊधो ने अनारकली बाज़ार में एक दुकान किराये पर ले ली और वहीं नीलामी में खरीदे गये सामान करीने से सजाकर बेचने लगा। जब कभी नवीन चंद्र उसकी मदद के लिए वहां नहीं रहते तो ऊधों अकेले ही दुकान चलाता। मुझे ये सारी बातें ऊधो ने खुद अपने मुंह से बतायी हैं। बाद में यही ऊधो, ऊधो मिस्सर के नाम से पूरे लाहौर में मशहूर हो गया। काफी बाद में उसने एक बड़ी दुकान किराये पर ले ली, पर तब भी उसे अपना काफी सामान दुकान के पिछवाड़े बने गोदाम में रखना पड़ता था। अपने जीवन के अंतिम कुछ सालों में वह खेलकूद के सामान का डीलर बन गया था। एक बार मैंने उससे यूं ही पूछा कि तुम्हारी दुकान के कुल सामान की कीमत क्या होगी। उसने तपाक से जवाब दिया कि वह इन्हें 40,000 रुपयों में भी नहीं बेचेगा। जाहिर है वह नवीन चंद्र राय और ब्रह्म समाज से बहुत ज्यादा जुड़ा हुआ था। जहां तक मुझे याद आता है सन् 1886 में नवीन चंद्र राय नौकरी से रिटायर होकर पंजाब से चले गये। ऊधो पंडित अग्निहोत्री के देवा समाज में शामिल हो गया और जिंदगी भर उनका अनुयायी बना रहा। उसने अपने भाई की लड़की को पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया। इस काम में नवीन चंद्र राय और पंडित अग्निहोत्री दोनों ने ही उसकी मदद की। बाद में यही लड़की पंडित अग्निहोत्री की पत्नी बनी। उनकी पहली पत्नी कुछ समय पहले स्वर्ग सिधार गयी थी। इतना सब होने पर भी ऊधो मिस्सर हमेशा सादगी भरी पोशाक पहनते थे। मुझे पूरा विश्वास है कि पंडित अग्निहोत्री के ढेर सारे अनुयायियों में से शायद ही कोई ऊधो मिस्सर जैसा सच्चा, वफादार और समर्पित रहा होगा। नवीन चंद्र राय ने लाहौर की सड़क से एक अनाथ बालक को उठाकर उसे इज्जतदार, जिम्मेदार, नेक और सीधा-सादा शहरी बना दिया।

अपनी जिंदगी का यह अध्याय लिखते समय मुझे बराबर यह अहसास होता रहा कि मैं बार-बार मुख्य विषय से भटक जाता हूं। इस बाबत मुझे अपनी सफ़ाई में सिर्फ यह कहना है कि केवल स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई से ही कोई व्यक्ति इंसान नहीं बनता। उसके आस-पास का सामाजिक परिवेश भी उस पर गहरा प्रभाव डालता है। कई बार तो इससे व्यक्ति के जीवन की धारा ही बदल जाती है। सामाजिक परिवेश व्यक्ति के मानसिक और चारित्रिक निर्माण में भी अहम् भूमिका निभाता है। मेरे साथ काफी हद तक ऐसा ही हुआ। मैं अपनी जिंदगी की शुरुआत में ही निपट अकेला था और एक नये सामाजिक परिवेश में दाखिल हुआ था। इसलिए मुझ पर अपने सामाजिक परिवेश का गहरा असर पड़ा।

अध्याय - 7

आत्म - सम्मान की कुंजी

महान विक्टोरियन युग के अंतिम दो-तीन दशकों के दौरान एक मध्यमवर्गीय हिंदुस्तानी के लिए सबसे मुश्किल काम था अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करना। जिन लोगों ने अभी 40 की उम्र पार नहीं की है, उन्हें मेरे यह कहने का मतलब आसानी से समझ में नहीं आयेगा। उन दिनों साम्राज्यवादी निरंकुशता की लहर चल रही थी। अफ्रीका और पूर्व में जो कुछ घट रहा था, उसने राजनेताओं का दिमाग खराब कर दिया था। वे कहते थे हमें ईश्वर ने अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रसार की जिम्मेदारी सौंपी है, इसलिए हम इसे सारे देशों में फैलाना चाहते हैं, लेकिन असल में जो कोई उनके तौर-तरीके अपनाता उससे वे घृणा करने लगते । वे मुंह से आज़ादी की बात करते, लेकिन असल में गुलाम देशों की संपदा की लूट-खसोट में लगे रहते । दो विपरीत संस्कृतियों के टकराव से तरह-तरह की गलतफहमियां पैदा हो रही थीं। एक लेखक की राय में ग्लैडस्टोन राजनेता नहीं था, जबकि दिज़राइली एक बेहद निम्न दर्जे का राजनेता था। फिर राजनेता कौन है? ग्लैडस्टोन के परम सहयोगी जॉन ब्राइट का कहना है कि असल राजनेता वही है जो अंतरराष्ट्रीय मसलों में भी आचार-संहिता का पालन उसी तरह करे, जैसे निजी मसलों में करता है।

तू...तू...तू... किधर जाता?

यहां मेरा मकसद कोई निबंध लिखना नहीं, बल्कि अपने चंद निजी अनुभवों को बताना है। नयी उपजी साम्राज्यवादी निरंकुशता के अहसास से मुझे

इतना जर्बदस्त धक्का लगा कि मैं बता नहीं सकता। नौवें दशक के आखिरी साल में या आखिरी दशक के पहले साल में गर्मियों के दौरान मैं शिमला से लाहौर आया। उन दिनों शिमला से अंबाला आने के लिए सिर्फ टांगे चला करते थे। कालका से अंबाला के बीच मेरे साथ एक मुसाफिर और थे। वह युरोपीय थे और मैं उन्हें आगे जनाब ए के नाम से पुकारूंगा। मुझे लगता है वह कालका में ही टांगे पर सवार हुए थे, क्योंकि उससे पहले मैंने उन्हें नहीं देखा था। कोई आधे रास्ते तक यानी घघ्घर तक, हमारे बीच जरा भी बातचीत नहीं हुई। दरअसल हम एक सीट पर नहीं बैठे थे। मैं कोचवान के साथ आगे की सीट पर बैठा था, जबकि वह जनाब पीछे की दो मुसाफिरों वाली सीट पर अकेले ही पसरे हुए थे। घघ्घर पहुंचने पर पता चला कि पहाड़ी धारा में बाढ़ आयी हुई है और इसे हाथी पर सवार होकर पार करना पड़ेगा। दूसरी तरफ एक अन्य सवारी हमारा इंतजार कर रही थी।

हाथी की पीठ पर सवार जब हम बीच धारा में पहुंचे तो एक ऐसी घटना घटी, जिसने मुझे अब तक की जिंदगी का सबसे गहरा धक्का पहुंचाया। पचास साल बाद भी इस घटना की याद से मेरी देह में सिहरन दौड़ जाती है। जनाब ए ने अपनी लंबी चुप्पी तोड़ते हुए एकाएक मुझसे पूछा : "तू...तू...तू... किधर जाता?" मैंने सोचा कि जनाब ए को यहां की भाषा ठीक से नहीं आती, इसलिए यह ऐसे अपमानजनक लहज़े में बात कर रहे हैं। इसी वजह से बेइज्जती की परवाह न करते हुए मैंने उन्हें अंग्रेज़ी में बताया कि मैं लाहौर जा रहा हूं। इस पर बिना एक शब्द भी कहे उसने मेरे माथे पर चोट मार दी। उससे खून भी बहने लगा। इस समय तक हम धारा को पार करके दूसरे किनारे पर पहुंच चुके थे।* मैं बहुत हैरान-परेशान

* घघ्घर एक छोटी-सी पहाड़ी धारा है, जिसे आमतौर पर चंद मिनटों में ही पार किया जा सकता है। लेकिन मूसलाधार बारिश के तुरंत बाद इसे पार करना बहुत खतरनाक हो जाता है।

था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूं। शिकरम (टांगा नहीं) में बैठने के कुछ मिनटों बाद मैंने जनाब ए से पूछा कि आपने मुझे चोट क्यों मारी।

वह बस खीसें निपोर कर मुझे चिढ़ाने लगा, बोला कुछ नहीं। अभी भी मैंने अपनी नाराज़गी कुछ कह कर या करके जाहिर नहीं की थी। जो कुछ भी हुआ, मैं उससे बहुत परेशान और दु:खी था। मैंने सोचा कि मामले को अदालत ले जाया जाए। इसके लिए अंबाला के टांगा अड्डे से उसके नाम-पते की जानकारी करना जरूरी था। रास्ते में एक-दो बार यह भी ख्याल आया कि कानून को अपने हाथों में ले लूं, पर मेरे विवेक ने मुझे ऐसा करने की इजाजत नहीं दी। अब देर हो गयी थी। अब कुछ करने से मेरे ही फंसने की उम्मीद थी, ऐसे ख्याल मेरे दिमाग में आते रहे।

अंबाला के टांगा अड्डे से मैंने जनाब ए के बारे में पूरी जानकारी हासिल कर ली। थोड़ी देर बाद मैं लाहौर जाने वाली रेलगाड़ी पर सवार हो गया। लेकिन यह घटना बार-बार मेरे दिमाग में कौंध रही थी। मैं सोच रहा था कि ऐसा कौन-सा तरीका अपनाऊं, जिसमें इंसाफ मिलने की पूरी उम्मीद हो। आप मेरे मानसिक क्लेश का आसानी से अंदाज़ लगा सकते हैं। सब कुछ सोचने पर भी मुझे ऐसा कोई रास्ता नजर नहीं आया, जो मुझे इस दु:खदायी दशा से छुटकारा दिला सके। जनाब ए नागपुर में रहने वाले सिविल अधिकारी थे, इसलिए उन्हें कानून की गिरफ्त में लाना नामुमकिन था। ऐसे में मुझे रेलगाड़ियों पर घटे बहुत से ऐसे मामलों के फैसले याद आये। फैसला चाहे जो भी होता, पर एक बात तय थी – आगे के लिए मुझे पहचान लिया जाता और तरह-तरह से नुकसान पहुंचाने की कोशिश भी की जाती। नौकरी बची रहती या नहीं, यह भी कहना मुश्किल था।

मैं कोई चार महीनों तक यह पीड़ादायी मनोदशा झेलता रहा। कई बार मैंने झुंझलाहट में खुद को थप्पड़ मारे और अपने आप से कहा कि आत्म-सम्मान के प्रति लापरवाही बरतने की यही सज़ा है। आखिर में मेरे दिल से राहत भरी आवाज आयी, कोई बात नहीं रुचि राम, गुज़री बातों को दिल से पछतावा करके भुला दो। अभी तुम्हारे सामने बहुत जिंदगी बाकी है। गुज़री बातों को चेतावनी समझ कर उनसे सीख लो। दुनिया में जिंदगी जैसा प्यारा व सख्त और सख्त फिर भी प्यारा गुरू कोई नहीं है ।

इस स्वाभाविक आत्म-ज्ञान की शक्ति से मेरी आंखें खुल गयीं। कई महीनों तक मैं इसे मन ही मन दुहराता रहा। इस बीच मैं ऐसी बहुत-सी स्थितियों पर विचार करता रहा, जो पैदा हो सकती थीं। मैंने हर स्थिति में टकराव से बचने या सामना करने के रास्तों पर गंभीरता से विचार किया। मैं ऐसा रास्ता खोजने में लगा रहा, जिस पर चलने से मेरे आत्म-सम्मान की रक्षा हो जाये और ईमानदारी व सज्जनता का दामन भी न छूटे। आत्म-रक्षा में कभी कोई गलत काम न करो । बहुत संकट पड़ने पर ही कानून अपने हाथ में लो और वह भी सिर्फ आत्म-रक्षा के लिए। ऐसे में भी पहले विरोधी पक्ष को माफ़ी मांगने का अवसर अवश्य देना चाहिए। ऐसी कोई एक दर्जन घटनाएं मेरी जिंदगी में घटीं। आगे मैं ऐसी तीन-चार घटनाओं जिक्र करूंगा, जिनसे मेरे सिद्धांतों की व्यावहारिकता आपकी समझ में आएगी। इनमें मैंने अपनी तरफ से टकराव टालने की पूरी कोशिश की, पर आखिर में टकराव की स्थिति बन ही गयी ।

तमाचे के बदले तमाचा

उन दिनों सबसे ज्यादा टकराव रेलगाड़ी में सैर करने से होते थे। अब ऐसी घटनाएं बहुत कम घटती हैं, पर बिल्कुल खत्म नहीं हुई हैं। पिछली सदी में ऐसी घटनाओं की खबर अखबारों में अकसर छपती रहती थी। मुझे ऐसी

बहुत-सी घटनाएं याद हैं, जिनमें हमारे कई बड़े लोगों को अपमानित होना पड़ा था। मैं यह सब इसलिए बता रहा हूं, ताकि आपको उस समय के माहौल का अंदाज लग सके। मेरे साथ भी रेलगाड़ी पर ऐसी चार-पांच घटनाएं घटीं, पर मैं यहां सिर्फ एक घटना का ही जिक्र करूंगा।

पिछली शताब्दी के आखिर की बात होगी, मैं शिमला जा रहा था। मुझे कालका पर गाड़ी बदलकर छोटी लाइन की गाड़ी में सवार होना था। खिड़की के पास की आरामदेह सीट पर बैठने के लिए मैंने अपना हैंड बैग दूसरे दर्जे के डिब्बे में एक खाली सीट पर रख दिया। उस समय सिर्फ एक सीट पर एक युरोपियन बैठा था। फिर मैं अपना सामान बुक कराने चला गया। दस-पंद्रह मिनट बाद वापस आने पर मैंने देखा कि सारी सीटें भर गयी थीं और मेरा हैंड बैग गलियारे में पड़ा था। आगे की कहानी बातचीत की शैली में ज्यादा समझ में आयेगी।

साहनी : (कोने में सीट पर बैठे व्यक्ति को संबोधित करते हुए, इन्हें आगे *जनाब सी* कहा जाएगा) मुझे लगता है आप गलती से मेरी सीट पर बैठ गये हैं। किसी ने सीट पर से मेरा हैंड बैग उठाकर गलियारे में फेंक दिया है।

जनाब सी : (बड़बड़ाते हुए) यहां तुम्हारे लिए कोई सीट नहीं है। देखते नहीं सारी सीटें भरी हुई हैं (सारी सीटों पर युरोपियन बैठे थे)।

साहनी : लेकिन यह मेरी सीट है। मैं इस पर तभी अपना हैंड बैग रख गया था, जब सिर्फ उस कोने वाली सीट पर एक सज्जन बैठे थे। मैं सिर्फ अपना सामान बुक कराने

बाहर गया था।

जनाब *सी* : मुझे नहीं पता। जाओ किसी दूसरे डिब्बे में बैठ जाओ।

साहनी : मुझे ऐसा करने में भी कोई एतराज नहीं है, पर अब बहुत देर हो गयी है।

जनाब *सी* : मुझे परेशान मत करो। जाओ कोई दूसरी सीट ढूंढ लो।

साहनी : लेकिन यह मेरी सीट है, कृपया इसे खाली कर दीजिए।

जनाब *सी* : गेट आउट, बाहर निकलो यहां से।

साहनी : जनाब, आप जाइए और स्टेशन मास्टर से कहकर कोई और सीट ले लीजिए। यह मेरी सीट है।

जनाब *सी* : (अपना हाथ उठाते हुए) बाहर जाते हो या नहीं ?

साहनी : यह मेरी सीट है। अगर आप मुझे मारेंगे तो मैं भी आपको पीटूंगा। (मुलायम लहजे में) जनाब यहां बखेड़ा मत खड़ा करिये, कृपया मुझे मेरी सीट दे दीजिए। (इस पर जनाब *सी* ने मेरे बायें गाल पर एक झन्नाटेदार तमाचा जड़ दिया। मुझे इसकी उम्मीद थी, इसलिए मैं भी पूरी तरह तैयार था। मैंने भी तुरंत अपनी पूरी ताकत से उन्हें एक तमाचा रसीद कर दिया। डिब्बे में बैठे अन्य मुसाफिर यह सारा नज़ारा चुपचाप देख रहे थे। जनाब *सी* की बीवी अपने पति के सामने वाली सीट पर बैठी थीं। वह तुरंत अपनी सीट से उठी और मुझे मारने के लिए अपना छाता तान लिया)।

साहनी : (अपने सीने पर हाथ रखकर श्रीमती *सी* से) मैडम, आप मुझे जितना चाहे मार लीजिए, पर एक बात याद रखिएगा। आप मुझ पर जितने वार करेंगी, उससे दुगुने मैं आपके पति पर करूंगा ।

(इस पर श्रीमती *सी* चीखते हुए बाहर गयीं और स्टेशन मास्टर को बुला लायीं)

स्टेशन मास्टर : (जनाब *सी* से भी ज्यादा भारी-भरकम व्यक्ति, मुझे संबोधित करते हुए) क्या आप बाहर आएंगे ? मैं आपको दूसरी जगह सीट देता हूं। इस मामले की रिपोर्ट शिमला पुलिस को की जाएगी। वहां आपको कोई न कोई मिलेगा। पुलिस को यहां बुलाकर पूछताछ करवाने का समय नहीं है।

साहनी : मेरी गुज़ारिश है कि आप वह सीट इन जनाब (जनाब *सी*) को दे दें, जो मेरी सीट पर बैठे हैं। आप चाहें तो उन कोने वाले सज्जन से पूछ लें।

स्टेशन मास्टर : मेरे पास इसके लिए समय नहीं है। दरअसल पहले दर्जे के डिब्बे में सिर्फ एक ही सीट खाली है। नहीं तो मैं इन्हें ही वहां बैठने को कहता।

साहनी : पर मुझे क्या पता कि वह सीट अभी तक खाली है ?

स्टेशन मास्टर : ठीक है। आप मुझे अपना हैंड बैग दे दीजिए। मैं इसे सीट पर रखवा कर अपना एक आदमी भी वहां खड़ा कर दूंगा।

साहनी : बहुत अच्छा, यह लीजिए मेरा हैंड बैग।

स्टेशन मास्टर जल्दी ही वापस आया और उसने मुझे अपने साथ ले जाकर पहले दर्जे के डिब्बे में आराम से एक सीट पर बैठा दिया। जाते समय उसने फिर कहा कि शिमला में कोई पुलिस अधिकारी मुझे मिलेगा।

कुछ स्टेशनों के बाद एक युरोपियन पुलिस सार्जेंट मेरे पास आया और मुझसे मेरा नाम-पता पूछने लगा। मैंने कहा कि यह जानकारी देने में मुझे बड़ी खुशी होगी, लेकिन आप कृपया यही जानकारी जनाब *सी* और कोने में बैठे सज्जन के बारे में पता कर मुझे भी बता दीजिए, क्योंकि वही सज्जन मेरे एक मात्र गवाह हैं। वह तुरंत दूसरे डिब्बे में गया और उनके नाम-पते लाकर मुझे दे दिये। मैंने भी उसे अपना कार्ड दिया, जिस पर मेरा शिमला और लाहौर, दोनों ही जगहों का पता लिखा था।

शिमला में उतरने पर मुझे यह देखकर कोई ताज्जुब नहीं हुआ कि वहां कोई पुलिस अधिकारी मेरे लिए मौजूद नहीं था। कोई पंद्रह मिनट तक प्लेटफार्म पर इंतज़ार करके मैं चला गया। इसके बाद फिर कभी यह मामला नहीं उठा ।

धक्का-मुक्की, ·ार्शानिक अंदाज़ में

दृश्य : शिमला रेलवे प्लेटफार्म। कुछ युरोपीय मुसाफिर माल-असबाब के एक ढेर के पास खड़े अपने-अपने बिस्तरबंदों और बक्सों का इंतजार कर रहे थे। मेरे बगल में खड़े एक युरोपीय मुसाफिर ने अपने कंधे से मुझे धकियाया। शायद वह प्लेटफार्म को फुटबाल का मैदान समझ रहा था। मैने भी उसे अपनी कोहनी से एक हलका टहोका मारा। फिर उसने ज़ोर से धकियाया और मैंने भी ज़ोर से टहोका मारा। ऐसा कोई तीन-चार बार हुआ हर बार वह पहले से भी ज्यादा ज़ोर से धकियाता और मैं उतने ही ज़ोर से टहोका मारता। कुल चार राउंड के बाद मेरे प्रतिद्वंद्वी को यह अहसास

हो गया कि इस खेल का कोई नतीजा नहीं निकलने वाला। इस बीच न उसने अपने मुंह से एक भी शब्द निकाला और न मैंने। मेरे चेहरे पर कोई भाव भी नहीं उभरा। मैं तो दार्शनिक अंदाज़ में उसके धकियाने का जवाब दे रहा था। वैसे मुझे लग रहा था कि यह खेल कोई गंभीर मोड़ भी ले सकता है। इसलिए मैंने अपने आपको बुरे से बुरे हालात से निपटने के लिए तैयार कर रखा था। पर जैसा मैंने अभी बताया, यह मज़ेदार खेल बीच में ही खत्म हो गया। मुझे इस घटना का कोई दु:ख नहीं हुआ और न ही खेल बीच में ही खत्म होने का कोई पछतावा।

अगली सुबह मैं अपने एक हिंदुस्तानी दोस्त के साथ नाश्ता कर रहा था। वह यू.पी. में वरिष्ठ आई.सी.एस. अफसर थे। नाश्ते की मेज़ पर मेरी मुलाकात एक बेहद तहज़ीबदार महिला से हुई। वह एक मुसलमान तालुकदार की बेगम थीं। मेरे बैठते ही उस महिला ने बातचीत शुरू करते हुए कहा, "हम हिंदुस्तानियों में एक बहुत बड़ा बदलाव आ रहा है।" मुझे पता नहीं था कि वह किस ओर इशारा कर रहीं हैं, इसलिए मैंने पूछा, "क्यों, क्या हुआ, रानी साहिबा? " उन्होंने बताया कि उनके लड़के ने कल सुबह प्लेटफार्म पर क्या नज़ारा देखा था। दरअसल जिस समय हमारा खेल चल रहा था, उस समय वह नौजवान वहीं प्लेटफार्म पर खड़ा सारा नज़ारा देख रहा था। फिर मैंने रानी साहिबा को चकित करते हुए कहा कि हिंदुस्तानियों को अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए इसी तरह साहस से अंग्रेज़ों के वार का जवाब देना चाहिए। उनके लिए यह अनोखा अनुभव था। फिर मैंने उनसे पूछा कि क्या आप उस हिंदुस्तानी से मिलना चाहेंगी। उन्होंने तुरंत अंदाज़ लगाते हुए कहा, " क्या आप ही तो नहीं हैं?"

मेल टांगे में

तीसरी घटना। एक बार मैं टांगे से कालका से शिमला जा रहा था। मैं पीछे

की दो मुसाफिरों वाली सीट पर एक युरोपीय सज्जन के साथ बैठा था। आगे की सीट पर कोचवान के साथ कोई सैनिक अधिकारी बैठा था। मेरे लिए इतनी संगत काफी थी। युरोपीय सज्जन मेरी वजह से बहुत परेशान थे, लेकिन उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें। उन्होंने कई बार हिंदुस्तानी भाषा में मेरे लिए कुछ बुरे शब्द बुदबुदाये । पर मैंने ऐसा जाहिर किया जैसे मैंने सुना ही नहीं या समझा नहीं। मेरी चुप्पी से वह और परेशान हो गये । उन्होंने कई बार कोचवान से कहा कि इन्हें कहीं उतार दो। उसके लिए ऐसा करना मुमकिन नहीं था, इसलिए उसने मना कर दिया। सोलन में उन्होंने इस मसले पर भारी हंगामा किया और टांगा बाबू से भी मिले। पर समस्या नहीं सुलझी। फिर उन्होंने धमकी दी कि मैं आगे नहीं जाऊंगा। इसका भी टांगा बाबू पर कोई असर नहीं हुआ। गुस्से में उफनते हुए वह फिर आकर टांगे में बैठ गये । अपनी नाकामियों पर झुंझलाते हुए वह बार-बार मुझे कंधों से धक़ियाते और इसके जवाब में मैं उन्हें कोहनी से टहोका मारता।

इस कहानी की एक दिलचस्प बात यह है कि कुछ घंटे के पूरे सफ़र के दौरान वह सैनिक अधिकरी हमारी झड़प का मज़ा तो लेता रहा, पर बोला कुछ नहीं। उन दोनों में आपस में कोई बात नहीं हुई। किसी ने मुझसे आगे वाली सीट पर बैठने के लिए नहीं कहा। वैसे अगर कोई मुझसे शिष्टता से ऐसा करने के लिए कहता तो मैं तुरंत तैयार हो जाता। ऐसा करना मेरी उस आचार संहिता के दायरे में आता था, जिसे मैंने घघ्घर वाली पीड़ादायी घटना के बाद बनाया था।

शिमला में एक-दूसरे से विदा लेते हुए हमारे बीच तहेदिल से सौजन्य का जोरदार आदान-प्रदान हुआ। इतना जोरदार आदान- प्रदान तो पूरे सफ़र के दौरान भी नहीं हुआ था। आप अलग-अलग मौकों पर घटी ऐसी घटना के कोई आधा दर्जन विभिन्न रूपों की कल्पना कर सकते हैं। लेकिन इन सारी

घटनाओं में एक बात जरूर होती थी। हम विदा लेते समय कंधे से धकियाने और कोहनी से टहोका मारने का अभ्यास जरूर करते थे। यह अनुभव इतनी बार हुआ कि मैं हमेशा इसके लिए तैयार रहता। इसने मुझे कभी निराश भी नहीं किया।

याद रखना, मैं पंजाबी हूं !

मैं यहां उस घटना का जिक्र करना चाहता हूं, जिसमें मैंने 8-9 नौजवानों का आमने-सामने मुकाबला किया था। पर अफसोस, मुझे इस घटना की सारी बातें विस्तार से याद नहीं आ रहीं। लेकिन इसका एक सबक मुझे अभी तक याद है। जब हालत बहुत ज्यादा बिगड़ गयी और मुझे लगा कि लड़ाई के सिवा और कोई रास्ता नहीं है, तो मैंने उन्हें एकाएक ललकारते हुए चुनौती दी : "याद रखना, मैं पंजाबी हूं। आ जाओ।" यह कहकर जब मैं आस्तीन ऊपर चढ़ाने लगा तो वे नौजवान समझ गये कि यहां बस चलने वाला नहीं और चुपचाप खिसक गये। वैसे मुझे लगता है कि वे लोग कहीं से फुटबाल का मैच हारकर आ रहे थे। मैंने सोच लिया था कि मैं सबसे पास वाले लड़के को पकड़कर बल भर पिटाई कर डालूंगा इससे कम से कम एक से तो मेरा हिसाब बराबर हो जाएगा। मैं मन ही मन औरों से पिटाई खाने की तैयारी भी कर चुका था, लेकिन एक अकेले को मिलकर पीटने में उनकी जीत नहीं थी। इस तरह लड़ाई में सम्मानजनक जीत का हकदार मैं ही बनता। अपनी इसी धारणा के कारण मैंने एक साथ कई लोगों से आमने-सामने निपटने की यही रणनीति बनाई थी।

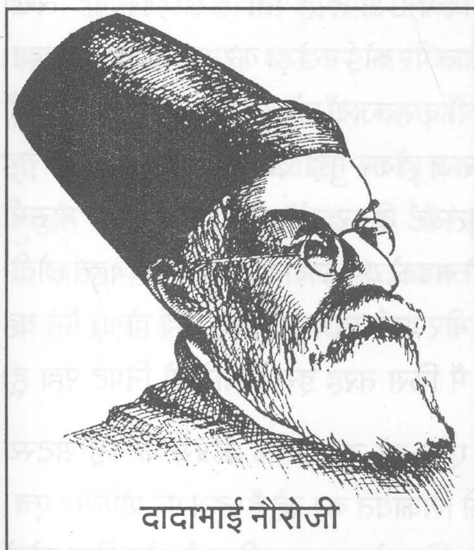
अंतिम घटना

यहां मैं इस घटना का जिक्र इसलिए कर रहा हूं, क्योंकि मैंने अभी तक ऐसे किसी मामले के बारे में नहीं बताया है। कोई दस साल पहले मैं लाहौर में

माल के फुटपाथ पर अपने दो दोस्तों के साथ खड़ा था। तभी दो अंग्रेज़ उधर से गुज़रे। वैसे तो उनके निकलने के लिए काफी जगह थी, लेकिन शायद उतनी जगह नहीं थी जितनी वे चाहते थे। वे दोनों शायद बिना एक-दूसरे के पास आये हुए वैसे ही चौड़े होकर गुज़रना चाहते थे। इतनी जगह थी नहीं, इसलिए दोनों एक के पीछे एक होकर हमारे बीच से निकले। पहले अंग्रेज़ ने इस तरह गुज़रते हुए मेरे दोस्त को कंधे से ज़ोर से धक्का मारा और आगे निकल गया। इस पर मैंने उसकी पीठ पर धीरे से अपनी छड़ी छुआ दी। उसने कोई ध्यान नहीं दिया और चलता रहा। मुझे लगता है उसे इसका अहसास ही नहीं हुआ। मेरा मकसद तो उसे सिर्फ यह बताना था कि ठीक से चलना चाहिए। लेकिन उसके पीछे वाले साथी ने यह देख लिया और मेरे पास दौड़ते हुए आकर अपनी छड़ी लहराने लगा। मैंने झट से कुछ कदम पीछे हटकर अपनी छड़ी से जमीन पर एक लाइन खींच दी और उससे कहा कि अगर तुम इस लाइन के इधर आये तो मैं तुम्हारी पिटाई कर डालूंगा। उसने कहा, "तुमने मेरे साथी की पीठ पर अपनी छड़ी से क्यों मारा?" मैंने जवाब दिया, मुझसे नहीं, अपने साथी से पूछो कि उसने क्या किया है। मेरा अपना अनुभव है कि अगर कोई झगड़ा कैसे और क्यों जैसे सवालातों से शुरू होता है तो गुस्से के पहले भीषण दौर को ठंडा होने का मौका मिल जाता है। इससे सिर्फ गर्मा-गर्म बहस होती है और बाद में 'अच्छा भई चलो' जैसा फैसला हो जाता है। इस मामले में भी ऐसा ही हुआ। पर ऐसे मामलों में ध्यान रखने वाली बात यह है कि कभी खुद पहल नहीं करनी चाहिए और अपनी कार्रवाई को एक उचित हद के भीतर रखना चाहिए।

जिस समय यह आखिरी घटना घटी, उस समय तक पहले जैसी हिंसात्मक घटनाओं का सिलसिला लगभग थम गया था। लेकिन ये बिलकुल

खत्म नहीं हुई थीं। हां, इनके स्वरूप और उग्रता में भारी अंतर जरूर आ गया था। पर मेरी रणनीति इतनी व्यापक और लचीली थी कि इसे अपनाते हुए हर तरह के वाकयों से निपटा जा सकता था। जब मैं अपने पिछले अनुभवों को टटोलता हूं ,तो मुझे घघ्घर धारा के बीच में घटी पीड़ादायी घटना पर कोई पछतावा नहीं होता। उस समय मैंने जो कुछ किया, मेरे लिए वही करना ठीक था। इस अध्याय को खत्म करते हुए मैं अपने दिल से कबूल करता हूं कि मैंने इन घटनाओं को हमेशा उन अंग्रेज़ों की निजी बदतमीजी समझा। इससे मेरी राजनीतिक विचारधारा में कोई बदलाव नहीं आया। इतना सब होते हुए भी यही कहा जाता था कि भारत में ब्रिटिश राज ईश्वर की इच्छा है। रानाडे, दादा भाई नौरोजी,[52] फिरोजशाह मेहता [53] वगैरह भी यही बताते थे। सब हिंदुस्तानी अच्छी तरह जानते हैं कि इन लोगों के साथ भी अदूरदर्शी और सत्ता के नशे में चूर अंग्रेज़ों ने बड़ा दुर्व्यवहार किया था। लेकिन इन महान और नेक व्यक्तियों को उस समय के हालातों की अच्छी पकड़ थी। इनमें राजनीतिक दूर-दर्शिता और कल्पनाशक्ति कूट-कूट कर भरी थी । फिर हिंदुस्तान के रुख में किस तरह बदलाव आया, यह एक अलग मसला है। मैं इसे अपनी जिंदगी की कहानी का हिस्सा बनाना नहीं चाहता।


दादाभाई नौरोजी

इस अध्याय को खत्म करने से पहले मैं एक छोटी-सी घटना का जिक्र करना चाहूंगा। इस घटना से पता लगेगा कि विपरीत हालातों के बनते ही मैं किस तरह उसी हालात के मुताबिक रणनीति बनाकर निपटा करता था। सन् 1917 में *साइंस कांग्रेस* का छठा अधिवेशन लाहौर में हो रहा था। प्रोफेसर एच. और मुझे लोकल सेक्रेटरी बनाया गया, जबकि प्रोफेसर एस. कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी थे। लोकल सेक्रेटरी होने के नाते प्रोफेसर एस. से मेरी खूब खत-किताबत होती रहती थी (यहां मैं यह साफ़ कर दूं कि प्रोफेसर एच. और प्रोफेसर एस. दोनों ही युरोपियन थे)। जब मुझे प्रोफेसर एस. से पहला खत मिला तो मैंने देखा कि लिफाफे पर मेरा पता इस तरह लिखा था : मि. रुचि राम साहनी, गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर। उनको जवाब देते समय, मैंने भी उनका पता इसी तरह लिखा। इसके बाद और भी बहुत से खत आये और मैंने सबके जवाब में उसी तरह पता लिखा जैसे वह लिखा करते थे। मैंने इतनी छोटी-सी बात पर कोई बखेड़ा करना ठीक नहीं समझा। लेकिन अन्य हिंदुस्तानी प्रोफेसरों व सज्जनों को उनका यह रवैया ठीक नहीं लग रहा था। कई लोगों ने नाराज़ होकर मुझे खत भी लिखे कि आप यह बात कांग्रेस के अध्यक्ष सर गिलबर्ट वाकर को बतायें। सर वाकर मौसमी वेधशालाओं के निदेशक थे। मैंने सबको यही जवाब दिया कि यह बहुत छोटी-सी बात है और इस पर कोई गंभीर कार्रवाई करना ठीक नहीं होगा। मैंने यह भी बताया कि अपने स्तर पर मैं किस तरह इस स्थिति से निपट रहा हूं।

एक दिन मैंने प्रोफेसर एच. को बताया कि कांग्रेस के कई सदस्य प्रोफेसर एस. के गलत रवैये की शिकायत कर रहे हैं। इस पर प्रोफेसर एच. ने कहा कि यह लिफाफे पर पता लिखने का एक तरीका है और जिन लोगों ने नाराज़गी भरा खत लिखा है उन्हें इस पर बुरा नहीं मानना चाहिए। मैंने प्रोफेसर एच. से कहा कि क्या आप प्रोफेसर एस. द्वारा आपको लिखा कोई

खत दिखा सकते हैं। अगर उस पर भी ऐसे ही पता लिखा होगा तो मैं आपकी बात मान जाऊंगा अन्यथा नहीं। मैंने उन्हें यह भी बताया कि निजी तौर पर मुझे प्रोफेसर एस. से कोई शिकायत नहीं है क्योंकि मैं अपना हिसाब खुद बराबर कर लेता हूं। इसके बाद मैंने किसी से इस मसले पर कोई बात नहीं की।

साइंस कांग्रेस के अधिवेशन के दौरान मुझे ऐसा लगा कि किसी नाराज़ व्यक्ति ने अध्यक्ष महोदय से इसकी शिकायत कर दी थी। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि सर गिलबर्ट हिंदुस्तानी प्रोफेसरों के मामले में छोटी से छोटी बात पर मेरी सलाह ले रहे थे। ये बातें इतनी छोटी थीं कि आमतौर पर इन पर कोई गौर नहीं करता।

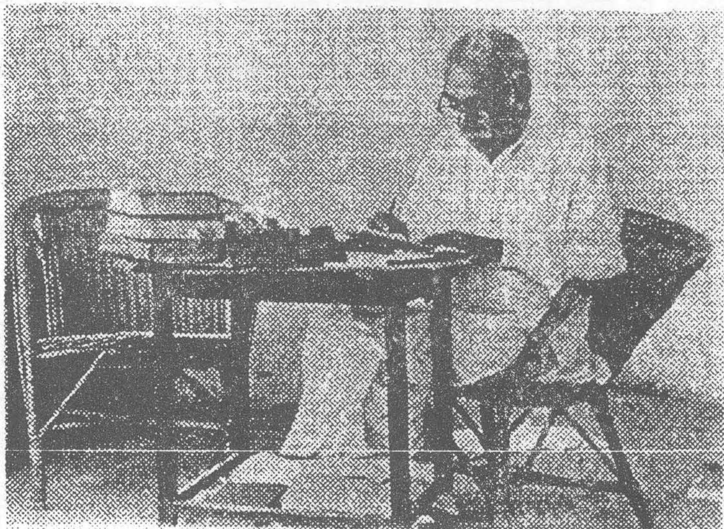
अधिवेशन के बाद कुलपति महोदय ने कांग्रेस के अध्यक्ष और कुछ सदस्यों को दोपहर के भोज पर आमंत्रित किया। भोजन की मेज़ पर मैं प्रोफेसर एस. के बगल में बैठा था। यह एक दिलचस्प स्थिति थी। मुझे जल्दी ही पता लगा कि ऐसी व्यवस्था जानबूझकर की गयी थी। प्रोफेसर एस. ने मुझसे बातचीत करने में पहल की और सबसे पहले खतों में उचित रूप से संबोधन न करने के लिए खेद व्यक्त किया। इस तरह यह मामला संतोषजनक ढंग से निपट गया।

अध्याय - 8

मेरी सेहत का राज़

छोटे-बड़े, दोस्त-अजनबी सभी ने मुझसे एक सवाल हज़ारों बार पूछा है: आपकी लंबी जिंदगी और सेहत का क्या राज़ है? इसके साथ ही और भी बहुत से छिटपुट सवाल किये जाते हैं, जैसे मैं क्या खाता हूं, कितनी बार खाता हूं, कब सोता हूं, कितने घंटे सोता हूं, मुझे अच्छी नींद आती है या नहीं, कितना और कब टहलता हूं, वगैरह-वगैरह। ज्यादातर लोग सोचते हैं कि अगर वे मेरी तरह खाएंगे, सोएंगे और टहलेंगे तो उनकी सेहत भी मेरी तरह हो जाएगी। मुझे नहीं लगता कि ऐसा हो सकता है। पूरी तरह से मेरी नकल करने पर हो सकता है उन्हें कुछ नुकसान भी उठाना पड़े।

मेरी नकल करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि खान-पान, सोने, टहलने वगैरह की मेरी आदतें मेरी बीती जिंदगी के हालातों से समझौता करके बनी हैं। मैं कभी अपनी आदतों में कोई जर्बदस्त बदलाव नहीं लाता। चाहे यह बदलाव अच्छा हो या बुरा। दरअसल मानव जीवन बेहद पेचीदा और जटिल है। यहां जीवन का मतलब है इंसानी जिंदगी से जुड़े वे सारे पहलू जो उसे संपूर्ण मानव बनाते हैं यानी शारीरिक रचना के अलावा उसका मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक रुझान। यही वजह है कि विज्ञान और दर्शन से संबंधित तमाम जानकारियों के बावजूद हम मानव-जीवन की कार्य प्रणाली के बारे में बहुत कम जानते हैं। हमारे ज्ञान का ज्यादातर हिस्सा अनुभवों पर आधारित है।



रुचि राम साहनी अपने 80 वें जन्मदिन पर (5 अप्रैल 1943)

और आदतें बार-बार दुहराने से बनती हैं

अपने युगों-युगों के अनुभवों से मनुष्य ने ज्ञान का एक विशाल भंडार इकट्ठा किया है। मेरे ख्याल से इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण है दुहराव का नियम। मेरी अपनी व्यावहारिक जिंदगी में इस नियम का बहुत दखल रहा है। हो सकता है इस नियम को और लोग अलग-अलग नामों से जानते-पहचानते हों, पर इस नियम के मूल सिद्धांत से सभी परिचित हैं। हर खिलाड़ी, हर ड्रिल मास्टर और हर अध्यापक इसके बारे में जानता है। दरअसल हर अच्छी या बुरी आदत किसी काम को बार-बार दुहराने से ही बनती है। आदत बनने पर वह काम बिना किसी कोशिश के सहज ही होने लगता है। आप किसी आदत को उसका उलटा काम बार-बार दुहरा के नहीं छोड़ सकते।

एक बात और है। किसी काम को सिर्फ बार-बार दुहराने से ही आदत नहीं बनती, धीरे-धीरे इसका जोर भी बढ़ता जाता है। हो सकता है कोई व्यक्ति शुरू में सिर्फ एक-दो सिगरेट पीता हो। पर बाद में वह दो, तीन ...दस या बीस सिगरेट पीने लगेगा। मैं ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूं, जो सुबह से लेकर रात तक में पूरी 50 सिगरेट फूंक डालते हैं। दरअसल मैं यह कहना चाहता हूं कि उन्होंने शुरुआत में हर रोज 20, 30 या 50 सिगरेट नहीं पी होंगी। अब अगर वे इस आदत को छोड़ना चाहें तो उन्हें धीरे-धीरे सिगरेट की तादाद घटानी होगी। दूसरे शब्दों में जिस तरह आदत बनते समय ज़ोर बढ़ता जाता है, उसी तरह आदत छोड़ते समय भी हमें उलटा काम करने के साथ ही इसका ज़ोर भी बढ़ाना होगा।

मैं इसका एक उदाहरण अपनी जिंदगी से देता हूं। मैंने अपनी जिंदगी में कभी सिगरेट नहीं पी और न ही कभी किसी नशीले पेय या मादक पदार्थ का सेवन किया। **लेकिन जब से मैं नौकरी में आया, तभी से मुझे चाय पीने का नशा है। वैसे नशा कहना थोड़ी ज्यादती है, क्योंकि मैंने कभी कड़क**

चाय नहीं पी और न ही कभी आम चाय ज्यादा मात्रा में पी। लेकिन मैं अपने नियत समय पर एक या डेढ़ कप चाय पीने का आदी था। भरपूर व्यस्तता होने पर भी चाय का समय होने पर मुझे इसकी तलब सताने लगती। उम्र बढ़ने पर मुझे पता लगा कि चाय पीने से सेहत को नुकसान पहुंचता है और मुझे ऐसा महसूस भी होने लगा था। लेकिन मैंने एकाएक चाय की आदत पूरी तरह से नहीं छोड़ी। इसके बजाय मैंने अपनी चाय में गर्म पानी की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाना शुरू कर दी। आजकल मैं सुबह जो दो कप चाय पीता हूं, उसकी अगर 30-40 साल पहले वाली चाय से तुलना की जाये तो असल में इसमें बस दो चम्मच चाय होती है। इसके अलावा आजकल मेरी चाय सिर्फ चाय की पत्ती से नहीं बनायी जाती। इसमें बनफ्शा भी मिलाया जाता है। इसके दो फायदे हैं। एक तो सुबह के समय बनफ्शा पीना सेहत के लिए फायदेमंद होता है और दूसरे इससे मेरी लगभग बेरंग चाय में थोड़ा रंग भी आ जाता है। दूसरा फायदा मानव मनोविज्ञान से जुड़ा है। बेरंग चाय रोज-रोज याद दिलाती है कि अब आप जिंदगी की ऐसी अवस्था पर पहुंच चुके हैं, जहां आम चाय आपकी सेहत को नुकसान पहुंचा सकती है। रोज ऐसा आभास होना ठीक नहीं है।

मानव मनोविज्ञान हमारी रोजमर्रा की जिदंगी में बहुत अहम् भूमिका अदा करता है। पर ज्यादातर लोग इसके असर के बारे में जानना तो दूर, कल्पना भी नहीं कर पाते। मैं मानता हूं कि इस मामले में मैं थोड़ा सनकी हूं। इसका एक उदाहरण यह है कि पिछले 30 साल से ज्यादा समय से मैंने 50 साल से अधिक उम्र के व्यक्तियों को 50 साल का बुड्ढा कहना छोड़ दिया है। इसके बजाय मैं कहता हूं कि उसकी उम्र 50 साल है। मैं ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूं, जो 40 या 50 साल की उम्र के बाद अपने को बुड्ढा समझने लगते हैं। उनके मन में यही विचार हर समय उमड़ता- घुमड़ता

रहता है। मैं तो उस उम्र को अधेड़ावस्था कहता हूं, पर कुछ लोग हैं जो इस उम्र में ही वृद्धावस्था का लाभ उठाना चाहते हैं। मैं उस फारसी कहावत की भी बहुत खिलाफत करता हूं जो कहती है: सफ़ेद बाल मौत का संदेशा लाते हैं। मैं मानता हूं कि कुदरत को धोखा नहीं दिया जा सकता, लेकिन मैं अपनी जिंदगी में हमेशा आशावादी रहा हूं।

अब मैं फिर अपनी उसी बात पर लौटता हूं कि आदतें किस तरह बनती हैं और बुरी आदतें किस तरह छोड़ी जा सकती हैं। अपने लंबे अनुभव के आधार पर मेरी राय है कि कभी भी किसी बहुत पुरानी आदत या जिंदगी जीने के तरीके में एकाएक बड़ा बदलाव नहीं लाना चाहिए। उदाहरण के तौर पर किसी मोटे व्यक्ति को एकाएक वज़न घटाने के लिए कोई बड़ा कदम नहीं उठाना चाहिए। उसे ध्यान रखना चाहिए कि उसका मोटापा एकाएक नहीं बढ़ा है। इसलिए किसी भी तरह की खुराक, दवा या कसरत उसे एकाएक छरहरा भी नहीं बनां सकती। बदलाव धीरे-धीरे और चुपके से आता है। एकाएक बदलाव लाने की कोशिश फायदे की जगह नुकसान पहुंचा सकती है। खासतौर से 40 या 50 साल की उम्र के बाद तो ऐसा कभी नहीं करना चाहिए।

यही वजह है कि मैं जवानी को कायम रखने का दावा करने वाले योगासनों पर जरा भी विश्वास नहीं करता। योगासनों की वकालत करने वाले चाहे कुछ भी कहें, पर मेरा मानना है कि अधेड़ावस्था पार कर चुके व्यक्ति की जिंदगी में इन योगासनों से एकाएक इतना बड़ा बदलाव आता है कि उसकी शारीरिक क्रियाओं को भारी नुकसान पहुंच सकता है। इससे उसके जीवन का अंत और करीब आने की संभावना बन जाती है। मैं भारत की प्राचीन सभ्यता का प्रशंसक जरूर हूं, पर मैं यह कभी नहीं भूलता कि चमत्कारों का युग बीत चुका है।

इलाज से बेहतर है रोकथाम

तंदुरुस्ती बनाये रखने का सबसे कारगर नियम यह है कि जहां तक मुमकिन हो आप दवाएं खाने से परहेज़ करें। इसके लिए आपको साफ-सुथरी, प्राकृतिक और नियमित जिंदगी जीनी होगी। याद रखिए कि मेरी सभी को यह सलाह है कि दवाएं खाने से बचो । लेकिन मैं किसी से यह भी नहीं कह रहा हूं: डॉक्टर के पास न जाओ । मैंने हमेशा यह सिद्धांत माना है कि इलाज से बेहतर है रोकथाम। ज्यादातर लोग इस सिद्धांत पर चर्चा तो खूब करते हैं, पर इसका पालन नहीं करते। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो तंदुरुस्ती ठीक रहने पर भी डॉक्टर के पास जाता हो और उसे फीस देकर अपनी तंदुरुस्ती ठीक बनाये रखने के लिए सलाह मांगता हो। मेरी सलाह है कि स्वस्थ व्यक्ति को भी लगातार किसी अच्छे डॉक्टर की सलाह लेते रहना चाहिए। मैं खुद लगातार 12 साल तक इस सिद्धांत पर अमल करते हुए इसका फायदा उठा चुका हूं।

सन् 1887 में लाहौर के गवर्नमेन्ट कॉलेज में वापस आने के कुछ समय बाद ही मेरी जान-पहचान एक बहुत योग्य और मिलनसार डॉक्टर से हुई। उनका नाम था डॉ. बेली राम। एक दु:खद कार दुर्घटना में स्वर्ग सिधारने से पहले तक वह हमारे पारिवारिक डॉक्टर थे। सन् 1912 में मेरा सबसे बड़ा लड़का डॉ.बी.जे. साहनी भी इंग्लैड से वापस आ गया और मेरा पूरा परिवार लगातार उनकी उपयोगी सलाह और देख-रेख का फायदा उठाता रहा।

केवल यही नहीं, जब मेरी उम्र कोई 35 साल रही होगी, तो मेरी पहचान एक बेहद योग्य चिकित्सक कर्नल हेंडले से हुई। वह लाहौर में ही नौकरी पर थे। मैं उनके घर जाकर कोई एक घंटे अपनी जांच करवाता। मैंने उनसे पहले ही बता दिया था कि मेरे ख्याल से मेरी सेहत पूरी तरह से ठीक

है, पर आप जांच करके यह बताएं कि मुझमें कोई रोग पनपने के आसार तो नहीं बन रहे हैं। मैं उनसे अपने खान-पान वगैरह की आदतों के बारे में भी चर्चा करता, ताकि वह बता सकें कि कौन-सी आदतें मुझे छोड़नी या बदलनी चाहिए और कौन-सी आदतों को बढ़ावा देना चाहिए। उनके घर पर मेरी इस सालाना जांच का सिलसिला कई सालों तक चलता रहा—उस समय तक जब तक वह पंजाब छोड़ कर चले नहीं गये। जब तक वह पंजाब के किसी और शहर में भी रहे, तब तक मैं नियमित रूप से उनके घर जाता रहा। मैं जब भी उनके पास जांच के लिए जाता, उन्हें बतौर फीस 32 रुपये अदा करता। लेकिन यह छोटी-सी कीमत अदा करना मेरे लिए बहुत मूल्यवान साबित हुआ। इससे इलाज पर खर्च होने वाले ढेर सारे रुपयों की बचत तो हुई ही, मेरी सेहत भी लगातार चुस्त-दुरुस्त बनी रही। इसका कोई मोल नहीं आंका जा सकता। कई बार तो सही मायनों में वह मेरी चिकित्सीय जांच ही नहीं करते थे। हम दोनों एक-डेढ़ घंटे बैठ कर चाय पीते और बतियाते। मेरे खान-पान और लंबी पैदल यात्राओं से लेकर मेरे दोस्तों और अध्ययन तक के बारे में विस्तार से चर्चा होती। दरअसल मैं उन्हें अपनी जिंदगी के गुज़रे साल के बारे में सब कुछ विस्तार से बताता। कुछ साल बाद उन्हें मेरे बारे में अच्छी-खासी जानकारी हो गई, जिससे वह बातचीत के दौरान तरह-तरह के खोजी सवाल करने लगे। इनसे मिले जवाबों के आधार पर वह बीच-बीच में सलाह देते जाते। कहना न होगा कि उनकी सलाह पर अमल करने की वजह से मैं बहुत-सी भारी मुसीबतों से बच गया।

ऐसी एक-दो बातों का मैं जिक्र करना चाहूंगा। एक दिन मैंने उन्हें बात-बात में बताया कि पिछली सर्दियों में मैं हर महीने अपने दोस्त से मिलने अमृतसर जाता था। सन् 1896 या 1897 में गवर्नमेन्ट कॉलेज से

अवकाश प्राप्त करने के बाद प्रोफेसर ओमन खालसा कॉलेज के प्रिंसिपल बन गये थे। उन्होंने मुझे हर महीने का आखिरी इतवार अपने साथ बिताने का न्यौता दे रखा था। जब भी मैं फुर्सत में होता, इस मौके का पूरा फायदा उठाता। सुबह तड़के ही एक प्याला चाय पीकर मैं साइकिल से अमृतसर चला जाता और पूरा दिन उनके साथ बिताता। हम नयी किताबों, युनिवर्सिटी, जान-पहचान के लोगों वगैरह के बारे में बतियाते। राजनीतिक रूप से प्रोफेसर ओमन ऐंग्लो-इंडियन थे, लेकिन हम दोनों जानबूझकर कभी भी राजनीति पर चर्चा नहीं करते थे। ओमन परिवार के साथ शाम की चाय पीने के बाद मैं साइकिल से स्वर्ण मंदिर जाता, कुछ दोस्तों से मिलता और रात को रेलगाड़ी से लाहौर वापस आ जाता। मेरा यहां यह सब बताने का मकसद यह है कि मैं उन दिनों कोई 40 मील साइकिल चलाया करता था। कर्नल हैंडले को पता था कि मेरे बायें घुटने में दो बार चोट लग चुकी है। एक बार तो घोड़ागाड़ी से हुई दुर्घटना में और दूसरी बार कॉलेज बोर्डिंग हाउस में झूला झूलने के दौरान। एक दिन दोस्तों के बीच झूला झूलने का मुकाबला चल रहा था। मेरा झूला पूरी ऊंचाई और रफ्तार पर था कि झूले की रस्सी टूट गयी और मैं छिटक कर दूर जा गिरा, जिससे मुझे काफी समय बिस्तर पर बिताना पड़ा। ज्यादा पूछताछ करने पर कर्नल हैंडले ने यह भी जान लिया कि जब कड़ाके की सर्दी पड़ती है तो मेरे इस चोट खाये घुटने में हलका-हलका दर्द होने लगता है। इससे पहले भी वह एक बार मुझमें गठिया पनपने के आसार देख चुके थे। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने मुझे साइकिल बिलकुल न चलाने की सलाह दी। इसके बाद से मैंने सिर्फ एक बार किसी मरीज की मदद के लिए साइकिल चलायी है और वह भी सिर्फ कुछ फर्लांग तक ही।

साइकिल चलाने की बात चली है तो मैं साइकिल के बारे में एक

दिलचस्प बात बताना चाहूंगा। सन् 1890 के दशक की शुरुआत में लाहौर में ज्यादातर लोग तिपहिया वाहनों पर चला करते थे। इसमें अंग्रेजों और हिंदुस्तानियों के बीच कोई भेदभाव नहीं था। पंजाब में दो पहिये वाली साइकिल कब आई, मेरे लिए यह बताना मुश्किल है, लेकिन जहां तक मुझे याद पड़ता है सन् 1890 के दशक के मध्य में भी ज्यादा से ज्यादा आधा दर्जन साइकिलें इस्तेमाल में दीखती थीं। इनका अगला पहिया बहुत बड़ा था, कोई पांच फुट व्यास का रहा होगा। लेकिन पिछले पहिये का व्यास ज्यादा से ज्यादा 18 इंच या 15 इंच ही था। मेरे पास अभी भी ऐसी एक साइकिल कबाड़खाने में पड़ी है (किसी सही मौके पर इसका प्रदर्शन किया जाये तो अच्छा होगा)। मैंने इसे कभी नहीं चलाया। रेलवे वर्कशॉप के एक-दो मिस्त्रियों के अलावा शहर में शायद दो-तीन लोगों के पास और भी ऐसी साइकिलें थीं। एक दिन जब मैं तारघर के सामने से गुज़र रहा था तो मैंने एक अंग्रेज़ को सामने से एक ऐसी साइकिल पर आते देखा, जिसके दोनों पहिये बराबर थे। उसी दिन मैंने अपनी पुरानी साइकिल से पिंड छुड़ाया और नये जमाने की नई साइकिल ले ली। मैं इसे परेड ग्राउंड (अब मिंटो पार्क) ले गया और कोई तीन घंटे के अभ्यास के बाद इसी पर सवार होकर वापस आया।

अब मैं गठिया के उन प्रांरभिक लक्षणों के बारे में कुछ बताऊंगा, जिन्हें कर्नल हैंडले ने सालाना जांच के दौरान काफी पहले ही ताड़ लिया था। उन्होंने मुझे कब्ज़ से बचने की सलाह दी। उनकी सिफारिश पर मैं कब्ज़ की जरा भी शिकायत होने पर कुटने पाउडर का सेवन करता। पर उन्होंने यह भी हिदायत दी थी कि मैं इसका आदी न बनूं। इसलिए कब्ज़ की संभावना बनने पर मैं इसकी सिर्फ एक छोटी-सी खुराक ही लेता। हालांकि, लंबी पैदल यात्राओं के समय ले जाने वाले सारे बक्सों में मैंने

इस पाउडर की एक-एक शीशी रख दी थी।

कुछ समय बाद मैंने एक ऐसा काम करना शुरू किया, जिसके जिक्र भर से ज्यादातर लोग मुझ पर हंसना शुरू कर देंगे । पर इसका जिक्र इसलिए कर रहा हूं, ताकि कुछ लोग उसे अपना कर अपनी सेहत सुधार सकें। अगर ऐसा हुआ तो मेरे ऊपर होने वाली जगहंसाई और मुझ पर मारे जाने वाले तानों की कुछ भरपाई हो जाएगी ।

पिछले कोई 40 सालों से मैंने अपने मल की खुद ही जांच करने की आदत बना ली है। मैं शौचालय से तब तक बाहर नहीं निकलता, जब तक कि इसका रंग, गाढ़ा या पतलापन वगैरह न देख लूं । अगर कभी भी मुझे अपने मल में कोई गड़बड़ दिखाई देती है तो मैं अपनी खुराक तुरंत बदल देता हूं। इसके लिए कभी मैं भोजन की मात्रा कम करता हूं, तो कभी कुछ खास व्यंजन खाना बंद कर देता हूं और कभी-कभी तो एक समय का भोजन ही नहीं करता। पहले लगभग दस सालों तक मैंने अपने मल की जांच का पक्का रिकार्ड भी रखा। मैंने मल के विभिन्न लक्षणों के लिए दस नंबर निर्धारित कर रखे थे। अपनी जांच के आधार पर मैं हर लक्षण के लिए दस में से नंबर देता और उन्हें लक्षण के आगे दर्ज कर लेता। बाद के सालों में मैंने नंबर देने की जगह संतोषजनक, असंतोषजनक, ज्यादा संतोषजनक नहीं जैसे विशेषणों को लिखना शुरू कर दिया। इतनी पुरानी आदत और लंबे अनुभव की वजह से पिछले कुछ सालों से मैंने मल की जांच का रिकार्ड रखना बंद कर दिया है। पर मल की जांच करने की आदत इतनी पक्की हो गई है कि इसे छोड़ना बहुत मुश्किल है। जब रेल यात्रा के दौरान मैं अपने मल को खुद अपनी आंखों से नहीं देख पाता तो मुझे बड़ी बेचैनी महसूस होती है।

इस आदत की वजह से मल देखते ही मुझे पिछले 24 घंटों में खाया-पिया सहज ही याद आ जाता है। इससे मुझे अपनी दैनिक खुराक अपने शरीर के हिसाब से व्यवस्थित करने में बड़ी मदद मिलती है। यही वजह है कि उम्र बढ़ने के साथ-साथ मैंने अपनी खुराक में धीरे-धीरे मांस की मात्रा कम कर दी और इसकी जगह फल व सब्जियां लेने लगा। पहले मैं मुर्गा, मछली और मेमने का मांस खूब खाता था, पर अब मैं मछली के छोटे-से टुकड़े या मुर्गे की एक टांग से ज्यादा कभी नहीं लेता। वैसे मैं कभी-कभी मटन सूप पीना भी पसंद करता हूं। मैं यहां अपनी खुराक के बारे में ज्यादा विस्तार से बताना नहीं चाहता, क्योंकि जैसा मैं पहले ही कह चुका हूँ हर व्यक्ति को अपनी खुराक की मात्रा और क्या खाना है, क्या नहीं खाना खुद तय करना चाहिए। हर व्यक्ति की भोजन की पसंद और जरूरतें अलग-अलग होती हैं। साल दर साल और मौसम दर मौसम भी इनमें फर्क आता रहता है। इसलिए किसी व्यक्ति के आहार को तय करने के लिए कोई पक्का नियम नहीं बनाया जा सकता। मैं हर रोज विभिन्न रूपों में लगभग दो पौंड बढ़िया दूध का सेवन करता हूं, जैसे दूध, दही, लस्सी या पुडिंग। इसी तरह मैं हर रोज किसी ने किसी रूप में दो अंडे भी खाता हूं। दिन के भोजन और रात के खाने के बाद मुझे फल खाना भी बेहद पसंद है। पिछले लगभग 40 सालों से मैंने बर्फ या आइसक्रीम खाना छोड़ रखा है।

कोई दस साल पहले यानी लगभग 70 साल की उम्र में मैंने घर से बाहर भोजन करना भी छोड़ दिया। इससे पहले भी जब मैं घर से बाहर भोजन करता था, तो मेरी हर संभव यही कोशिश रहती थी कि अपने सामने परोसी गई सारी चीजें न खाऊं। इससे दो फायदे होते थे। एक तो मेरा पेट जरूरत से ज्यादा नहीं भरता था और दूसरे मुझे सिर्फ उन्हीं चीजों को खाने का मौका मिलता था जो आमतौर पर मैं घर में खाता हूं। मुझे अपनी थाली

में बहुत सारे व्यंजन देखकर कुछ घबराहट-सी होने लगती है। वैसे काफी लोगों का यह मानना भी है कि मेरा रोज का खाना भी कोई बहुत ज्यादा सादा नहीं है। मैं थोड़ी मात्रा में कोई नया व्यंजन पसंद करता हूं, पर दिक्कत तब होती है जब थाली में कोई आधा दर्जन व्यंजन परोस दिये जाते हैं।

एक बार मैं अपने दोस्त के घर खाना खाने गया तो वहां पूरे 52 व्यंजन सामने रख दिये गये। मेरा दोस्त न तो कहीं का राजकुमार था और न ही कोई बड़ा रईस, पर हम दोनों काफी लंबे अर्से के बाद मिल रहे थे, इसलिए उसने अपनी औकात से ज्यादा खर्च करके मुझे शानदार भोजन कराने की सोची। मुझे उन रसोइयों पर भी दया आ रही थी, जिन्होंने पाक शास्त्र के भूले-बिसरे पाठों को फिर से याद करके विभिन्न देशों के व्यंजन बनाये थे। मुझे नहीं पता कि वे व्यंजन दरअसल क्या थे, क्योंकि सिवाय उनकी गिनती करने के मुझे उनमें और कोई आकर्षण नहीं दिखा। मैंने अपने दोस्त से कहा कि मैं वही सीधा-सादा व्यक्ति हूं, जिससे उसने बरसों पहले दोस्ती की थी और मेरे जीवन दर्शन के हिसाब से ये आकर्षक व्यंजन तमाम तरह के रोगों को जन्म दे सकते हैं। मेरे उससे बहुत गहरे संबंध थे, इसलिए मैंने उससे खुलकर यह भी कहा कि मेज़ पर जितने व्यंजन दिखाई दे रहे हैं, ताश में उतने ही पत्ते भी होते हैं, पर अपनी सेहत के साथ जुआ खेलने का मेरा कोई इरादा नहीं है। मैंने उससे गुजारिश की कि अपने नौकरों से कहो कि अपनी पसंद के चार-पांच व्यंजनों को छोड़कर सारे व्यंजन हटा लें। लेकिन उसने मेरी एक न सुनी। उसका कहना था कि जो पसंद हो खाओ, बाकी छोड़ दो। हिंदुस्तान में दोस्तों की खातिर में इस तरह की बर्बादी करने की पुरानी परंपरा है। आखिर में हारकर मैंने खुद ही अपने पर काबू रखते हुए पास रखे सिर्फ चार-पांच व्यंजनों को हाथ लगाया और बाकी की ओर देखा भी नहीं।

लोभ पापों का मूल है

कुछ साल बाद एक इससे भी ज्यादा अजीब वाकया पेश आया। मैं एक सज्जन के घर खाना खाने गया, जो शाही खानदान के थे। भोजन की मेज़ पर मुझे मिलाकर तीन लोग थे। तीसरे सज्जन भी शाही खानदान से ताल्लुक रखते थे। इस तरह हमारा एक त्रिकोण बन गया, पर मज़े की बात यह है कि इस त्रिकोण के तीनों कोण सामाजिक रूप से बिलकुल अलग-अलग थे। हमारे सामने एक गोल मेज़ थी। बीच में मैं यानी एक प्रोफेसर बैठा था, जबकि मेरे दायें शाही खानदान के सदस्य बैठे थे और बायीं ओर राजकुमार खुद आसीन थे। फिर भोजन परोसा गया। सबके सामने एक बड़ा-सा चांदी का थाल रख दिया गया, जिसमें किसिम-किसिम के बहुत से व्यंजन रखे थे। थाल का विशाल आकार देखकर ही मैं घबरा गया। इससे पहले भी मैं पंजाब की बड़ी-बड़ी हस्तियों के साथ भोजन कर चुका था, पर इतना बड़ा थाल मैंने कभी नहीं देखा था। राजकुमार के साथ मेरे अच्छे संबंध थे, पर मैं इस शानदार दावत के बारे में उनसे कुछ कहना नहीं चाहता था। शायद इससे कम स्तर का भोजन कराना उनकी शान के खिलाफ था। भोजन के दौरान मैंने जानबूझकर किसी व्यंजन की तारीफ नहीं की, क्योंकि अगर मैं ऐसा करता तो वह उसी तरह के अन्य व्यंजन खाने के लिए भी ज़ोर डालते। मैंने शुरू से ही कम से कम व्यंजन खाने का मन बना लिया था। इसलिए मैंने थाल और मेज़ पर रखे ढेर सारे व्यंजनों की ओर ठीक से देखा भी नहीं। मुझे भली प्रकार याद है कि मैंने भोजन के दौरान मन ही मन अपने से बहुत कुछ कहा पर मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला: वाह क्या शानदार दावत है ! पर लालच में न फंसो, जिस तरह कुशलपूर्वक घर से आये हो उसी तरह वापस घर भी जाओ। क्या जा पाओगे ? और मैंने जवाब दिया: बिलकुल, जरूर। मैंने सोच लिया कि सामने रखे दर्ज़नों व्यंजनों में से

जहां तक संभव हुआ मैं सिर्फ दो ही व्यंजन खाऊंगा। इसके अलावा अगर ज्यादा ज़ोर डाला गया तो एक-आध चीज और ले लूंगा। मैंने पुलाव के साथ थाल में सबसे करीब रखा गोभी खाना शुरू कर दिया। बीच -बीच में मैं सिर्फ दिखावे के लिए दो–तीन अन्य व्यंजनों पर भी हाथ लगा देता, पर मैंने इन व्यंजनों को खाया नहीं। न तो मैं उनके बारे ठीक से जानता था और न ही मैंने उन्हें ठीक से देखने की कोशिश की। इस शानदार दावत के बारे में शायद और ज्यादा विस्तार से बताने का कोई फायदा नहीं है। मेरे शाही मेजबान ने मुझसे एक-दो खास व्यंजन खाने की गुजारिश की, जिसे मैंने कबूल भी किया। वाकई वे व्यंजन बेहद स्वादिष्ट थे। मेरे बायें बैठे मेहमान ने भी उनकी खूब तारीफ की। वैसे वह अन्य बहुत से व्यंजनों की भी तारीफ कर रहे थे। उन्होंने खासतौर से दो व्यंजनों की तारीफ के पुल बांध दिये। इनमें से एक था बादाम की पुडिंग। तारीफ सुनकर राजा साहब के सेवक हम तीनों के लिए एक-एक पुडिंग और ले आये । मैंने तो भरपूर माफी मांगते हुए कह दिया: "राजा साहब, मैं इस तरह के गरिष्ठ व्यंजनों का आदी नहीं हूं।" जहां मुझे याद पड़ता है दूसरे मेहमान ने बादाम की चार पुडिंग खायीं। घर आकर मैंने खूब फल खाये और बिना रोटी के तीन-चार सब्जियां भी खायीं। रोज रात के खाने के बाद फल खाना मेरी आदत है। अगले दिन जब मेरी अपने साथी मेहमान से मुलाकात हुई तो उन्होंने बताया कि पूरी रात उन्होंने बहुत कष्ट में गुजारी। इस पर मैंने कहा कि हमारे शास्त्रों में यूं ही नहीं लिखा: लोभ पापों का मूल है। हर सीख के लिए शास्त्रों का हवाला देना बढ़िया रहता है। दूसरी ओर मैंने रोज की तरह सुबह तीन मील सैर की और अपने दिन भर का काम भी इस तरह निपटाया जैसे कुछ हुआ ही न हो।

टिप्पणियां *

1. एच. एफ. ब्लैनफोर्ड, एफ. आर.एस., पहले मौसम विज्ञानी थे, जिन्होंने भारत की वर्षा पर व्यापक अध्ययन किया (ब्लैनफोर्ड, एच. एफ., *रेनफॉल ऑफ इंडिया, मेमायर्स ऑफ इंडिया मीटियोरोलॉजिकल डिपार्टमेंट* 3, 658, 1886)।

2. जगदीश चंद्र बोस (1858-1937) भौतिकी, विद्युत-भौतिकी और पौध-कार्यिकी के क्षेत्र में कार्य करने वाले भारत के अग्रणी वैज्ञानिक थे। उन्होंने सन् 1894 में या उसके आस-पास शोध कार्य प्रारंभ किया। उनमें विद्युत तरंगों के प्रति रुचि हर्टज के उस कार्य के कारण उत्पन्न हुई, जिस का विवरण ओलिवर लॉज ने प्रस्तुत किया था। बोस ने कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज से सन् 1915 में अवकाश प्राप्त किया। सन् 1917 में उन्होंने कलकत्ता में ही पौध-कार्यिकी पर अनुसंधान के लिए बोस संस्थान की स्थापना की। इसके लिए उन्होंने स्वयं प्रयास करके 11 लाख रुपयों की विशाल निधि इकट्ठा की थी।

3. आचार्य प्रफुल्ल चंद्र के नाम से लोकप्रिय पी. सी. राय (1861-1944) अंतरराष्ट्रीय ख्याति के रसायन विज्ञानी थे। बंगाल में रसायन और औषध उद्योग स्थापित करने में उन्होंने अग्रणी भूमिका निभायी। अपनी बहुमुखी रुचियों के कारण वह एक सच्चे देशभक्त, समर्पित सामाजिक कार्यकर्ता और प्रखर शिक्षाविद् के रूप में जाने जाते थे। जवाहर लाल नेहरू ने आचार्य राय और उनके कार्य की

प्रशंसा निम्न शब्दों में की है: आचार्य राय हमारे महान बुजुर्गों में से एक थे। विशेष रूप से विज्ञान के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा अद्वितीय थी। उनकी दुबली–पतली काया, प्रबल देशभक्ति, विद्वता और सादगी के कारण युवावस्था में ही मैं उनसे बहुत प्रभावित था।

4. डेंजिल इब्बेतसन ने पंजाब प्रांत में जनगणना अधीक्षक, *पब्लिक इंस्ट्रक्शन निदेशक* और वित्त आयुक्त के पदों पर कार्य किया। वह केंद्रीय प्रांत में मुख्य आयुक्त भी रहे।

5. आनंद मोहन बोस (1847-1906) भारत के पहले रैंगलर थे। वह ब्रह्म समाज के नेता, स्वतंत्रता आंदोलन के अग्रणी सेनानी, शिक्षाविद् और समाज सुधारक थे। वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से इसके जन्म के समय से ही संबद्ध थे और उन्हें सन् 1898 के मद्रास अधिवेशन में इसका अध्यक्ष चुना गया। उन्होंने सन् 1879 में कलकत्ता में सिटी कॉलेज की स्थापना की। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाओं को देखते हुए उन्हें सन् 1882 के शिक्षा आयोग का सदस्य बनाया गया।

6. सैयद अहमद खान (1817-1898) ने सन् 1875 में *"मोहम्डन ऐंग्लो ओरियेंटल कॉलेज* की स्थापना की। सन् 1920 में इसका दर्जा बढ़ाकर इसे वर्तमान अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी का रूप दिया गया। सन् 1882 में उन्हें सरकार द्वारा गठित शिक्षा आयोग का सदस्य बनाया गया। उन्होंने दिल्ली की ऐतिहासिक इमारतों का पुरातत्व विज्ञानी अध्ययन करके *असारस-संदिद* में सजीव वर्णन किया। यह महत्त्वपूर्ण ग्रंथ सन् 1847 में प्रकाशित हुआ। उन्होंने प्रसिद्ध साप्ताहिक *अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट* (1866) का

प्रकाशन प्रारंभ किया।

7. एलैक्जेंडर पेडलर, एफ. आर. एस. ,कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज में रसायन विज्ञान पढ़ाते थे। उन्होंने निम्न पदों पर भी कार्य किया: मीटियोरोलॉजिकल रिपोर्टर, बंगाल सरकार; प्रिंसिपल, प्रेसिडेंसी कॉलेज, कलकत्ता (1896); निदेशक, पब्लिक इंस्ट्रक्शन, बंगाल (1899); और कुलपति, कलकत्ता युनिवर्सिटी (1904)।

8. आशुतोष मुकर्जी (1864-1924) को अपने समय का महान शिक्षाविद् और विधिवेत्ता माना जाता है। वह कलकत्ता युनिवर्सिटी में उच्च शिक्षा के प्रणेता थे और 20 साल तक कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश भी रहे।

9. गुरू गोविंद सिंह (1666-1708) सिखों के दसवें और अंतिम गुरू (1675-1708) थे। उन्होंने सिख धर्म की मान्यताओं और रीति-रिवाजों को सुधारा और सामाजिक असमानता व जात-पांत के भेदभाव का परित्याग किया। तेग बहादुर के उत्तराधिकारी के रूप में उन्होंने अपने अनुयायियों को यूनानी शासकों जैसी दक्षता से संगठित किया । गुरू गोविंद सिंह ने एक पूरक ग्रंथ की रचना भी की - *दसवें पादशाह का ग्रंथ* । उन्होंने कुछ पड़ोसी राज्यों और मुगलों के साथ असाधारण साहस और दृढ़ता से युद्ध किया।

10. महाराजा रंजीत सिंह (1708-1839) का आधुनिक भारत के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह एक जन्म-जात शासक थे। उन्होंने आपस में संघर्षरत सिख राज्यों को संगठित करके एक राज्य की स्थापना की। बीस साल की उम्र में उन्होंने लाहौर पर कब्जा कर लिया और सन् 1802 में सिखों की पवित्र नगरी अमृतसर

पर भी उनका कब्जा हो गया। रंजीत सिंह एक महान योद्धा थे, लेकिन वह स्वभाव से कठोर नहीं थे।

11. हरि सिंह नलवा (नाओला) सिख सेनापति थे, जिन्होंने 6 मई 1834 को पेशावर के किले पर विजय प्राप्त की थी।

12. रवींद्र नाथ टैगोर (1861-1941) बहुमुखी प्रतिभा के धनी और महान व्यक्तित्व के स्वामी थे। हुमायूं कबीर ने टैगोर के निबंध संग्रह– *टुवर्ड्स युनिवर्सल मैन* – में टैगोर का परिचय देते हुए लिखा है: टैगोर के कृतित्व पर निगाह डालने से उनकी बहुमुखी प्रतिभा बार-बार चमत्कृत करती है। वह मूलरूप से कवि थे, लेकिन उनकी रुचियां कविता तक ही सीमित नहीं थीं। बहुत कम लेखक ऐसे होंगे, जिनकी रचनाओं की संख्या टैगोर के बराबर होगी। उन्होंने अपने जीवनकाल में एक हजार से ज्यादा कविताएं, दो हजार से ज्यादा गीत और बड़ी संख्या में लघु कथाएं, उपन्यास, नाटक व विविध विषयों पर निबंध लिखे। टैगोर की रचनाएं सदैव सर्वोत्कृष्ट स्तर की रहीं। उस ऊंचाई तक बहुत कम लेखक पहुंच पाते हैं। वह उच्च स्तर के संगीतकार भी थे। उन्होंने लगभग 70 साल की उम्र में चित्रकारी शुरू की और सिर्फ दस साल में ही लगभग तीन हजार चित्र बना डाले। उनके द्वारा बनाये गये कुछ चित्र तो सचमुच अद्भुत हैं। इसके अलावा उन्होंने धर्म, शिक्षा, राजनीति, समाज-सुधार, ग्रामीण विकास और आर्थिक सुधार के क्षेत्र में भी मह त्त्वपूर्ण योगदान किया। इन सभी क्षेत्रों में उनका योगदान इतना महत्त्वपूर्ण था कि उन्हें भारत मां के महानतम सपूतों में से एक माना जाता है। उनके संदेश सिर्फ अपने देशवासियों के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव जाति के लिए थे।

13. राजा राममोहन राय (1772-1833) प्रसिद्ध समाज सुधारक और नेता थे। उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की थी। राममोहन राय ने सती प्रथा जैसे सामाजिक कलंक को मिटाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। वह मुगल साम्राज्य पर अकबर द्वितीय के दावे को सिद्ध करने के लिए प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैंड गये और ब्रिस्टल में उनका निधन हुआ।

14. देवेंद्र नाथ टैगोर (1817-1905) ब्रह्म समाज के नेता और जोरासांको, कलकत्ता के प्रसिद्ध टैगोर परिवार के सदस्य थे। बचपन में ही वह राममोहन राय के संपर्क में आये, जिन्हें आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक माना जाता है। राममोहन राय के व्यक्तित्व का देवेंद्र नाथ टैगोर के बालमन पर गहरा प्रभाव पड़ा। देवेंद्र नाथ ने सन् 1839 में ऐतिहासिक 'तत्वबोधिनी सभा' की स्थापना की। बंगाल को आधुनिक रूप देने में इस संस्था ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। वह एक कट्टर देशभक्त थे। बांग्ला भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने सन् 1882 में 'सर्वतत्वा दीपिका सभा' की स्थापना की। देवेंद्र नाथ ने राजनीतिक चेतना जगाने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उनके मित्र और शिष्य उन्हें श्रद्धापूर्वक 'महर्षि' कहकर पुकारते थे।

5. महेन्द्र लाल सरकार (1833-1904) ने सन् 1860 में कलकत्ता के मेडिकल कॉलेज से डॉक्टरी की शिक्षा पूरी की और सन् 1863 में एम. डी. की उपाधि प्राप्त की। डॉ. सरकार को सन् 1870 में कलकत्ता युनिवर्सिटी का फैलो बनाया गया और सन् 1887 में वह कलकत्ता के शेरिफ बने। वह सन् 1887 से 1893 तक बंगाल *लेजिसलेटिव कौंसिल* के सदस्य रहे। डॉ. सरकार कलकत्ता की

अनेक सभाओं-संस्थाओं से संबद्ध थे। सन् 1876 में उन्होंने भारत के पहले वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान की स्थापना की। इसका नाम था - *इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस* ।

16. फादर यूजीन लैफोंट (1837-1908) का जन्म बेल्जियम में हुआ था। वह दिसंबर 1865 में बंगाल के जीसस मिशन में कलकत्ता आये, लेकिन कलकत्ता आने के तुरंत बाद वह सेंट ज़ेवियर कॉलेज से जुड़ गये और अपने कलकत्ता प्रवास के पूरे 43 वर्ष तक इसी कॉलेज से संबद्ध रहे। उन्होंने छात्रों और आम जनता के बीच विज्ञान के प्रचार-प्रसार द्वारा बंगाल की महान सेवा की। फादर लैफोंट और डॉ. महेंद्र लाल सरकार के बीच संभवत: 1869 में जान-पहचान व मित्रता हुई और इसका बंगाल के वैज्ञानिक पुर्नजागरण पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह प्रारंभ से ही डॉ. सरकार द्वारा स्थापित '*इंडियन ऐसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस*' में प्रत्येक बृहस्पतिवार की शाम व्याख्यान दिया करते थे और यह सिलसिला 19 वर्ष तक चला। फादर लैफोंट ने लगभग सभी आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों पर व्याख्यान दिये, जैसे टेलीफोन, फोनोग्राफ, टेस्ला के उच्च आवृत्ति वाले करेंट, टेलीग्राफ, रेडियोधर्मिता, एक्स-रे, रंगीन फोटोग्राफी आदि। वह व्याख्यानों के साथ रोचक और विषय को समझाने वाले प्रयोग अवश्य दिखाते थे। डा. सरकार ने अपने विदाई भाषण में फादर लैफोंट के योगदान की सराहना करते हुए कहा, "उन्होंने बड़े खुले दिल से एक लंबे समय तक ऐसोसिएशन की सेवा की। उनके सहयोग के बिना ऐसोसिएशन कामयाबी के इस मुकाम तक कभी नहीं पहुंच पाती।"

17. रूडयार्ड किपलिंग (1865-1936) ब्रिटिश लेखक और कवि थे। उनका जन्म बंबई में और शिक्षा इंग्लैंड में संपन्न हुई। उन्होंने भारत में सन् 1882 से 1889 तक पत्रकार के रूप में कार्य किया। उन्हें सन् 1907 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। उनकी कुछ प्रमुख कृतियां इस प्रकार हैं: *द जंगल बुक, किम, जस्ट सो स्टोरीज़, पक ऑफ पुक्स हिल, डेबिट्स एंड क्रेडिट्स, लिमिट्स एंड रिन्यूअल्स*, आदि।

18. जियुसेपे माज्जिनी (1805-1877) इटली के देश भक्त थे। उन्होंने इटली के एकीकरण आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभायी। उन्होंने सन् 1831 में 'यंग इटली' की स्थापना की। यह एक आंदोलन था, जिसका उद्देश्य संयुक्त इटली गणतंत्र की स्थापना था। माज्जिनी ने अपना अधिकांश जीवन फ्रांस, स्विट्जरलैंड और इंग्लैंड में निर्वासित के रूप में बिताया।

19. कासिमिर फैजन्स (1887-1975) ने रेडियोधर्मी विस्थापन के नियमों की खोज की थी। लगभग इसी समय इंग्लैंड के फ्रेडरिक सॉडी ने भी इन नियमों को खोजा था। इस नियम के अनुसार जब किसी रेडियोधर्मी परमाणु से एक अल्फा- कण उत्सर्जित होता है, तो नये परमाणु की परमाणु संख्या मूल परमाणु से दो कम हो जाती है। लेकिन जब बीटा - कण उत्सर्जित होता है तो परमाणु संख्या एक बढ़ जाती है। फैजन्स ने लीपज़िग, हीडेलबर्ग, ज्यूरिच और मानचेस्टर विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया था। उन्होंने सन् 1911 से 1917 तक कार्लस्रू स्थित *टेक्नीश होक्शुले* में अध्यापन कार्य भी किया। फैजन्स ने ओटो गोहरिंग के साथ मिलकर

यूरेनियम x 2 की खोज भी की। अब इसे प्रोटो-एक्टिनियम - 234 कहा जाता है।

20. पहला विश्व युद्ध (1914-1918) मित्र राष्ट्रों (इंग्लैंड और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य देश, फ्रांस, रूस, बेल्जियम, जापान, सर्बिया, इटली, पुर्तगाल, रोमानिया और यूनान) और धुरी राष्ट्रों (जर्मनी, आस्ट्रिया - हंगरी, तुर्की और बल्गारिया) के बीच लड़ा गया। इसमें 80 लाख से ज्यादा लोग मरे और लगभग 21 करोड़ लोग घायल हुए।

21. ब्रह्म समाज आंदोलन से प्रेरित होकर महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की स्थापना की गयी। ब्रह्म समाज की तरह इसका उद्देश्य भी ईश्वर की तर्क संगत पूजा और समाज सुधार था। यह पश्चिम भारत में समाज सुधारक गतिविधियों का केन्द्र था और इसकी सफलता के पीछे मुख्य रूप से महादेव गोविंद रानाडे का हाथ था।

22. महादेव गोविंद रानाडे (1842-1901) को भारत में अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है। उन्होंने *इंडियन इकोनॉमिक्स* और *राइज़ ऑफ द मराठा पावर* जैसी प्रसिद्ध पुस्तकें लिखीं। वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापकों में से एक थे। वह सन् 1893-1901 तक बंबई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहे। रानाडे सन् 1861 में स्थापित *विडो मैरिज एसोसिएशन* के संस्थापकों में से एक थे। प्रसिद्ध *दकन एजुकेशन सोसाइटी* की स्थापना भी उनकी प्रेरणा से हुई। सी. एफ. एन्ड्रूज ने लिखा है: भारत में हुए बहुत से नये सुधारों का जन्म बंबई में हुआ और इन सभी के साथ जस्टिस रानाडे का नाम जुड़ा हुआ है।

23. माधवराव नामजोशी (1853-1896) को पूर्ण विश्वास था कि औद्योगीकरण के बिना भारत की प्रगति संभव नहीं है। उन्होंने *दकन पेपर मिल्स, दरिये इंडस्ट्रियल म्यूज़ियम और विक्टोरिया जुबली स्कूल* की स्थापना में अग्रणी भूमिका अदा की। सन् 1888 में उन्होंने उद्योगपतियों के फायदे के लिए पूना में औद्योगिक प्रदर्शनी का आयोजन किया। इसके साथ ही एक औद्योगिक सम्मेलन का आयोजन भी किया गया। नामजोशी इसके सचिव थे।

24. भारत के इतिहास में शिवाजी (1627-1680) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनमें जन्म से ही नेतृत्व की प्रतिभा थी। वह अपनी असाधारण वीरता और कूटनीतिक चातुर्य के कारण जागीरदार के छोटे-से ओहदे से छत्रपति के पद तक पहुंचे। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने मराठों को संगठित करके एक शक्तिशाली राज्य बनाया। मराठा राज्य ने औरंगज़ेब के शासन के दौरान और उसके बाद भी मुगल सलतनत से लोहा लिया। शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा राज्य अठारहवीं शताब्दी तक एक शक्तिशाली राज्य के रूप में जाना जाता रहा।

25. लार्ड रिपन ने ब्रिटिश कानून की तर्ज पर भारत में *लोकल सेल्फ-गवर्नमेंट* की स्थापना करने के लिए गंभीर प्रयास किया। उन्होंने अपने विचारों को एक सरकारी प्रस्ताव के रूप में मई 1882 में प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव के उद्देश्य का वर्णन रिपन ने इन शब्दों में किया है: इसका मुख्य उद्देश्य प्रशासन में सुधार करना नही है। इसकी आवश्यकता राजनीतिक और लोकप्रिय शिक्षा प्रदान करने के लिए महसूस की गयी है। लेकिन रिपन के उदार विचारों को न तो लोकल गवर्नमेंटों ने और न ही इंग्लैंड में बैठे अधिकारियों

ने मान्यता दी।

26. चितरंजन दास (1870-1925) भारत के स्वतंत्रता आंदोजन की एक प्रमुख हस्ती थे। उन्हें प्यार से 'देशबंधु' कहा जाता था। सन् 1890 में प्रेसिडेंसी कॉलेज, कलकत्ता से स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद वह इंग्लैंड चले गये। वहां उन्होंने *इनर टैम्पल* में शिक्षा प्राप्त की और सन् 1894 में बार के सदस्य बन गये। सन् 1917 आते-आते वह राष्ट्रीय राजनीति का प्रमुख हिस्सा बन चुके थे। सन् 1922 में गया में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में चितरंजन दास को अध्यक्ष चुना गया। उन्होंने भारतीय राजनीति को नया मोड़ देने के लिए *कौंसिल एंट्री प्रोग्राम* यानी कौंसिल द्वारा असहयोग प्रारंभ करने की योजना बनायी। लेकिन वह इस कार्यक्रम के लिए पर्याप्त समर्थन नहीं जुटा पाये और अंत में उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया। इसके बाद सी.आर.दास ने कांग्रेस के भीतर ही स्वराज्य पार्टी का गठन किया। उनके बारे में टैगोर ने लिखा है: चितरंजन दास ने अपने देशवासियों को सबसे बड़े उपहार के रूप में कोई राजनीतिक या सामाजिक कार्यक्रम नहीं दिया, बल्कि अपने जीवन के उदाहरण से सर्वस्व त्याग करने की प्रेरणा दी।

27. सुरेन्द्र नाथ बनर्जी (1848-1925) सिलहट (अब बांग्लादेश में) के कलेक्टर थे, लेकिन अपने वरिष्ठ अधिकारियों से मतभेद के कारण उन्होंने आई.सी.एस.सेवा से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने बंगाली दैनिक का संपादन किया। सन् 1895 में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बने। सर हेनरी कॉटन ने अपनी पुस्तक *न्यू इंडिया* में लिखा है: पंजाब में किसी प्रकार के बंगाली प्रभाव का विचार लॉर्ड लारेंस के लिये अविश्वसनीय सोच ही बनी

रहती..... लेकिन ऐसा हुआ कि पिछले वर्ष एक बंगाली लेक्चरर द्वारा दिये गये अंग्रेजी व्याख्यानों ने उत्तरी भारत में आश्चर्यजनक सफलता पायी और आज स्थिति यह है कि मुलतान की नयी पीढ़ी सुरेन्द्र नाथ बनर्जी का नाम उतने ही जोश से लेती है जितनी ढाका की ।

28. डब्ल्यू. सी. बनर्जी (1844-1906), बैरिस्टर-एट-ला, प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने सरकार के स्थायी एडवोकेट के रूप में कार्य किया (1882, 1884, 1886-1887) उन्होंने सन् 1883 में न्यायालय की अवमानना के प्रसिद्ध मुकदमे में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी की ओर से पैरवी की।

29. ए.ओ.ह्यूम (1829-1912) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1885) के संस्थापक थे। उन्होंने स्थानीयं भाषा के एक समाचार पत्र 'जनमित्र' (1859) के प्रकाशन में भी सहयोग किया। जिस समय ह्यूम भारत सरकार के राजस्व और कृषि विभाग के सचिव थे, उन्होंने.कृषि कर्जदारी से मुक्ति और ग्राम पंचायतों के गठन के लिये योजनाएं बनाई ।

30. सर विलियम वेडरबर्न (1838-1918) पुणे के भारतीय बालिका हाई स्कूल और बंबई के एलेक्जेंड्रा बालिका स्कूल के संस्थापकों में से एक थे । वेडरबर्न ने अपने समय और धन की परवाह न करते हुए लंदन से प्रकाशित कांग्रेस के मुखपत्र *इंडिया* की शुरूआत की और इसे चलाने में बहुत मदद की। वह पहले सन् 1889 में और दुबारा 1910 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बने।

31. चार्ल्स ब्रेडलॉ (1833-1891) उदार विचारों के ब्रिटिश वकील थे। ब्रेडलॉ ने व्यक्तियों को अधिक से अधिक आज़ादी देने की मांग की और 1877 में उन पर ऐनी बेसेंट के साथ *फ्रूट्स आफ फिलॉसफी* को दुबारा प्रकाशित करने के लिए असफल मुकदमा चलाया गया। यह पुस्तिका जन्म नियंत्रण की वकालत करती थी। सन् 1882 में उन्हें हाउस ऑफ कॉमन्स के लिये चुना गया, लेकिन उन्होंने 1886 तक स्थान ग्रहण करने से मना कर दिया। वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बंबई अधिवेशन (1849) में शामिल हुए।

32. गोपाल कृष्ण गोखले (1886-1915) आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक थे। महात्मा गांधी गोखले को अपना राजनीतिक गुरू मानते थे। छत्तीस वर्ष की उम्र में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बने और लगभग 25 वर्ष तक भारतीय राजनेताओं में अद्वितीय बने रहे। उन्होंने *सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी* की स्थापना भी की।

33. द्वि-धातु प्रणाली एक ऐसी मुद्रा व्यवस्था थी, जिसमें मुद्रा का परिवर्तन आमतौर पर सोना या चांदी, किन्हीं भी दो धातुओं में स्थिर अनुपात में हो सकता था। जब उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में बहुत से राष्ट्रों ने इसे अपनाया तो यह प्रणाली स्थायी रूप न ले पायी क्योंकि दो में से एक धातु हमेशा कम मूल्य की रही या अधिक मूल्य की।

34. सरोजिनी नायडू (1879-1949) ने स्वतंत्रता आंदोलन में

महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। नमक सत्याग्रह में उन्होंने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। सन् 1929 में उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में हिस्सा लिया। स्वतंत्र भारत में वह प्रथम महिला राज्यपाल बनीं। उनकी मृत्यु पर जवाहर लाल नेहरू ने कहा: वह महान प्रतिभाशाली महिला थीं –जीवंत और ओजस्वी। वह अनेक गुणों की खान थीं, पर उनमें कुछ गुण ऐसे थे, जिनसे वे अद्वितीय बन गईं। हमारे स्वतंत्रता आंदोलन में उन्होंने कलात्मकता और कविता का समावेश किया।

35. स्वामी विवेकानंद (1863-1902) के विचारों और देशभक्ति ने आध्यात्मिकता के साथ-साथ जीवन में कर्म की महत्ता जगाई और असंख्य लोगों को देश सेवा की प्रेरणा दी। आधुनिक भारत की हर मुख्य समस्या को उन्होंने छुआ। उन्होंने आम लोगों, महिला और पुरुष, सभी की शिक्षा पर ज़ोर दिया। उन्होंने तकनीकी शिक्षा पर भी ज़ोर दिया, तो संस्कृत पढ़ने पर भी। धर्म के बारे में उनके विचार सार्वभौमिक थे। उन्होंने लिखा है: "प्रत्येक मनुष्य में दिव्यता छिपी हुई है। इस दिव्यता को बाह्य व आंतरिक और प्रकृति के नियंत्रण से प्रकट करना ही एकमात्र लक्ष्य है। यही धर्म का सार है।"

36. ऐनी बेसेंट (1847-1933) बहुत वर्षों तक चार्ल्स ब्रेडलॉ की सहयोगी रहीं। वह जन्म नियंत्रण की आरंभिक पक्षधर थीं। सन् 1880 के दशक के अंतिम वर्षों में वह जी. बी. शॉ के प्रभाव में प्रमुख फेबियन बन गईं। अपने जीवन का काफी लंबा समय उन्होंने भारत में बिताया। सन् 1916 में ऐनी बेसेंट ने *इंडियन होम रूल लीग* की स्थापना की। वह 1907 से जीवन पर्यंत *थियोसॉफिकल सोसाइटी* की अध्यक्ष भी रहीं।

37. पंडित अजुध्या नाथ (1840-1892) आगरा में कानून के प्रोफेसर थे। उन्होंने आगरा में विक्टोरिया हाई स्कूल की स्थापना की। सन् 1879 में उन्होंने अंग्रेजी दैनिक *इंडियन हेराल्ड* का प्रकाशन आरंभ किया और इसके बाद 1890 में एक और मुखपत्र *इंडियन यूनियन* शुरू किया। वह वर्ष 1889-1892 के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के महासचिव भी रहे। अजुध्या नाथ, *एन. डब्ल्यू. पी. लेजिसलेटिव कौंसिल* (1886-1890) के प्रथम भारतीय सदस्य थे।

38. पंडित मदन मोहन मालवीय (1861-1946) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक थे। उन्होंने सन् 1931 में लंदन में भारतीय गोलमेज़ सम्मेलन में हिस्सा लिया। सन् 1914 में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बने। वह हिन्दू महासभा के संस्थापकों में से एक थे।

39. मोतीलाल नेहरू (1861-1931) जवाहरलाल नेहरू के पिता, प्रसिद्ध वकील और राजनेता थे। सन् 1909 में वह उत्तर प्रदेश *लेजिसलेटिव कौंसिल* के सदस्य चुने गये और 1919 में उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया गया। वह प्रभावशाली वक्ता, महान सांसद और अद्‌भुत संगठनकर्ता थे।

40. अब्बास तैयबजी (1854-1936) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के समय से ही इसके सदस्य थे। वह पारंपरिक भारत-इस्लामिक संस्कृति और आधुनिक पाश्चात्य विचारों के मेल की साक्षात मूर्ति थे। उन्होंने जलियांवाला बाग हत्याकांड की सरकारी

जांच कमेटी (1919) से गांधी जी के इशारे पर नाता तोड़ लिया था। वह नमक सत्याग्र . के दौरान इसमें नंबर दो के नेता थे और महात्मा गांधी की गि रफ्तारी के बाद उसके नेता बन गये। वह महात्मा गांधी के परम निष्ठावान और विश्वासपात्र अनुयायियों में से एक थे।

41. सी. एफ. एन्डूज (1871-1940) शिक्षाविद् और समाज सुधारक थे। वह दिल्ली में *कैम्ब्रिज ब्रदर हुड* के सदस्य बन गये थे। वह पहले सेंट स्टीफेंस कॉलेज, दिल्ली (1904-1907) और बाद में विश्व भारती, शांति निकेतन (1920-1921) से संबद्ध रहे। एन्डूज विदेशों में बसे भारतीयों की समस्याओं में गहरी रुचि लेते थे।

42. महात्मा गांधी (1869-1948) का जन्म पोरबंदर (गुजरात) में 2 अक्तूबर 1869 को हुआ था। वह सन् 1888 में कानून की पढ़ाई के लिए इंग्लैंड गये। सन् 1893 में वह वकालत करने के लिए दक्षिण अफ्रीका चले गये। वहां उन्होंने भारतीयों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया और प्रशासनिक अधिकारियों के विरुद्ध असहयोग आंदोलन की नयी नीति की शुरुआत की। इसे सत्याग्रह का नाम दिया गया। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में इसे एक कारगर हथियार की तरह इस्तेमाल किया गया। गांधी जी सन् 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आये। वह प्रथम विश्व युद्ध के अंत से लेकर भारत को आजादी मिलने तक भारतीय राजनीति के आकाश पर छाये रहे। वह सिर्फ एक कर्मवीर ही नहीं, बल्कि विचारशील व्यक्ति भी थे। उनके जीवन-दर्शन और राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक

और आर्थिक विचारों पर अनेक व्यापक अध्ययन हुए हैं।

43. सर चिमनलाल एच. सेतालवद (1866-1947) प्रसिद्ध वकील और उदार विचारों वाले नेता थे। उन्होंने लंदन में सन् 1931 और 1932 में आयोजित भारतीय गोलमेज़ कवि सम्मेलन में हिस्सा लिया था। वह जलियांवाला बाग हत्याकांड (1919) की जांच के लिए गठित हंटर कमेटी के सदस्य थे। वह 12 साल तक बंबई विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे।

44. मोहम्मद अली (1878-1931) और शौकत अली (1873-1938) अली बंधुओं के नाम से विख्यात हमारे देश के स्वतंत्रता आंदोलन के प्रमुख सेनानी थे। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अली बंधुओं ने सरकार के तुर्की विरोधी रवैये के प्रति ब्रिटिश सरकार की खूब भर्त्सना की। वे अनेक वर्षों तक महात्मा गांधी के निकट संपर्क में रहे। मोहम्मद अली अंग्रेजी साप्ताहिक *कामरेड* और उर्दू दैनिक *हमदर्द* का संपादन करते थे। शौकत अली इन प्रकाशनों के प्रबंध की जिम्मेदारी संभालते थे। मोहम्मद अली सन् 1920 में स्थापित जामिया मिलिया इस्लामिया के पहले कुलपति यानी 'शैखुत-जामिया' थे। मोहम्मद अली ने सन् 1930 में गोलमेज़ सम्मेलन में भी हिस्सा लिया। शौकत अली ने अंजुमन खुद्दाम-ए-काबा नाम से एक संगठन बनाया था। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि मक्का में काबा की इमारत को सऊदी सिपाही कोई नुकसान न पहुंचा पायें और हज पर मक्का जाने वाले मुस्लिम तीर्थ यात्रियों को पर्याप्त सुविधाएं मिल सकें।

45. खिलाफत आंदोलन के प्रणेता अली बंधु (मोहम्मद अली और शौकत

अली) और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद थे। *अंग्रेज़ों ने पहले विश्व युद्ध के दौरान तुर्की को हराकर तुर्की साम्राज्य को अपदस्थ* किया था। इससे भारतीय मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं पर चोट लगी और उन्होंने व्यापक रूप से ब्रिटिश सरकार का विरोध करना शुरू कर दिया। उपर्युक्त नेताओं ने इसे खिलाफत आंदोलन का नाम दिया और इसका संचालन किया। महात्मा गांधी ने हिंदुओं और मुसलमानों की एकता को बढ़ावा देने के लिए खिलाफत आंदोलन का पूरी तरह से समर्थन किया।

46. लाला लाजपत राय (1865-1928) पंजाब केसरी के नाम से लोकप्रिय थे। लाला लाजपत राय की राजनीतिक गतिविधियां सन् 1888 में इलाहाबाद में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में हिस्सा लेने के समय से शुरू हुईं। उन्होंने कलकत्ता में आयोजित (1920) कांग्रेस के विशेष अधिवेशन की अध्यक्षता की। लाजपत राय काफी लिखते भी थे। उनकी पत्रकारिता में गहरी रुचि थी। उन्होंने उर्दू दैनिक *वंदे मातरम्* और अंग्रेज़ी दैनिक *द पीपुल* की स्थापना की। वह आर्य समाज के साथ भी गहराई से जुड़े थे और उन्होंने महात्मा हंस राज के सहयोग से लाहौर मे डी.ए.वी. कॉलेज की स्थापना की।

47. विपिन चन्द्र पाल (1858-1932) ने अपना व्यावसायिक जीवन कटक एकेडेमी (1879) के हाई स्कूल में हेड मास्टर के रूप में शुरू किया। उनकी पत्रकारिता में गहरी रुचि थी। उन्होंने सिलहट (1880) में बंगाली साप्ताहिक *परिदारसक* की स्थापना की, *बंगाली पब्लिक ओपिनियन* (1882) के सहायक संपादक रहे और लाहौर के *ट्रिब्यून* (1887) के लिए भी काम किया। केशव चंद्र

सेन, शिवनाथ शास्त्री और विजय कृष्ण गोस्वामी ने उनके विचारों को बहुत प्रभावित किया था। वह कट्टर देशप्रेमी थे। साप्ताहिक पत्रिका *द न्यू इंडिया* (1902) के जरिये उन्होंने लोगों को स्वराज, साहस, त्याग और स्वयं सहायता के जरिये पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की शिक्षा दी। सन् 1902 में उन्होंने *वंदे मातरम्* के नाम से एक दैनिक समाचार पत्र निकालना शुरू किया। अरविन्द घोष इसके संपादक थे। उन्होंने एक मासिक पत्रिका *हिन्दू रिव्यू* का प्रकाशन भी शुरू किया। इसके जरिये वह इस विचार को जन-जन तक पहुंचाना चाहते थे कि ब्रिटिश सरकार का एक संघ के रूप में गठन हो और भारत इसमें बराबरी का व स्वतंत्र सदस्य हो। वह सिर्फ शिक्षा ही नहीं देते थे, बल्कि खूब लिखते भी थे।

48. सलेम सी. विजयराघवचेरियार (1852-1944) सलेम के बहुत योग्य वकील और बार के नेता थे। उन्हें एक हिंदू-मुस्लिम दंगे (1882) का अभियुक्त माना गया, पर उन्होंने इसके खिलाफ अदालत में ज़ोरदार लड़ाई लड़ी और विजय प्राप्त की। सलेम के दंगों ने विजयराघवचेरियार को रातों-रात मशहूर बना दिया। वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापक ए.ओ.ह्यूम के निकट सहयोगी थे। उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सन् 1920 के नागपुर अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया गया। इसी अधिवेशन में गांधी जी ने अहिंसात्मक असहयोग का प्रस्ताव रखा और इसके पक्ष में जोरदार वकालत की। काफी बहस के बाद यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

49. राजा राममोहन राय ने सन् 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। इसका मूल नाम ब्रह्म सभा था, यानी उन लोगों का संगठन जो

यह मानते हैं कि ईश्वर एक है। राममोहन राय के देहान्त के बाद देवेन्द्र नाथ टैगोर ने इसमें नये प्राण फूंके। देवेन्द्र नाथ औपचारिक रूप से इस आंदोलन से सन् 1843 में जुड़े, पर इसका व्यापक प्रचार-प्रसार मुख्य रूप से केशव चन्द्र सेन के कारण हुआ, जो इस आंदोलन से सन् 1857 में जुड़े। सन् 1865 में ब्रह्म समाज दो खेमों में बंट गया - पुरातन पंथी और प्रगतिशील। केशव चन्द्र सेन दूसरे खेमे के मुखिया थे। जब मार्च 1876 में केशव चन्द्र की 14-वर्षीय बेटी का विवाह कूच बिहार के महाराजा के साथ हुआ तो एक बार फिर ब्रह्म समाज दो खेमों में बंट गया। केशव चन्द्र स्त्री शिक्षा और स्वतंत्रता के प्रति उदार विचार नहीं रखते थे। उनका मानना था कि महिलाएं उच्च शिक्षा, विशेष रूप से विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए उपयुक्त नहीं हैं। पुरुषों और स्त्रियों के मिलने-जुलने या पर्दा प्रथा के बिल्कुल समाप्त होने से समाज को गंभीर खतरा उत्पन्न हो जाएगा। केशव चन्द्र से मतभेद रखने वालों ने एक अलग संगठन खड़ा कर लिया और इसे साधारण ब्रह्म समाज का नाम दिया।

50. सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने 26 जुलाई 1876 को *इंडियन ऐसोसिएशन ऑफ कलकत्ता* की स्थापना की। इस संगठन का उद्देश्य भारत एक है की विचारधारा पर आधारित एक अखिल भारतीय आंदोलन चलाना था। इसकी प्रेरणा माज्जिनी से मिली थी।

51. आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883) ने की थी। स्वामी दयानंद समाज को वेदों के रास्ते पर चलाना चाहते थे। वह चाहते थे कि वैदिक युग के बाद समाज में जो कुछ हुआ, उसे उखाड़ फेंका जाये। वह एक ईश्वर पर विश्वास करते थे।

उन्होंने बहु-ईश्वर वाद और मूर्ति पूजा का विरोध किया। उन्होंने जाति प्रथा, बाल-विवाह और समुद्री-यात्रा के प्रतिबंध का भी जर्बदस्त विरोध किया। उन्होंने गैर-हिंदुओं को हिंदुत्व प्रदान कराने के लिए शुद्धि-आंदोलन चलाया। इसका उद्देश्य संपूर्ण भारत को राजनीतिक और धार्मिक रूप से एक सूत्र में पिरोना था। उन्होंने महिला शिक्षा और विधवा विवाह को भी प्रोत्साहन दिया। उनके द्वारा रचित सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' है। इसमें उन्होंने अपने विचारों की व्याख्या की। प्रारंभ में दयानंद ने ब्रह्म समाज से तालमेल रखना चाहा। इसके लिए सन् 1869 में कलकत्ता में एक सम्मेलन भी हुआ। पर कोई नतीजा नहीं निकला। हालांकि पंजाब में आर्य समाज ने ब्रह्म समाज को समाहित कर लिया, क्योंकि लाहौर में सन् 1863 में ही आर्य समाज का प्रवेश हो चुका था। लाला हंसराज, पंडित गुरूदत्त, लाला लाजपत राय और स्वामी श्रद्धानंद उनके परम अनुयायी थे।

52. दादा भाई नौरोजी (1825-1917) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1885) के संस्थापकों में से एक थे और तीन बार (1886, 1893 और 1906) इसके अध्यक्ष रहे। उन्होंने *ईस्ट इंडिया ऐसोसिएशन*, लंदन (1867) की स्थापना की। सन् 1892 में उन्हें ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स के सदस्य के रूप में चुना गया। उनके द्वारा लिखी प्रमुख पुस्तकें इस प्रकार है: *पावर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया*, *इंग्लैंड्स ड्यूटी टु इंडिया* और *फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ इंडिया*।

53. फीरोजशाह एम. मेहता (1845-1915) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1885) के संस्थापक सदस्य थे। सन् 1890 में वह इसके अध्यक्ष

बने। सन् 1910 में वह बंबई विश्वविद्यालय के कुलपति बन गये।

* स्रोत

1. *स्पीचेस एंड राइटिंग्स ऑफ गोपाल कृष्ण गोखले*, खंड III (एजुकेशनल), डी. जी. कर्वे और डी. वी. अंबेडकर (संपादक), बंबई-एशिया पब्लिशिंग हाउस

2. *'ए सेंचुरी : इंडियन ऐसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस*, कलकत्ता, 1976

3. *गांधी : हिज़ लाइफ एंड थॉट*, जे. बी. कृपलानी, प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1970

4. *ऐन एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया* (तीसरा संस्करण), आर. सी. मजूमदार, एच. सी. राय चौधरी और कालीकींकर दत्ता, लंदन: मैकमिलन, 1970

5. *द मैकमिलन एनसाइक्लोपीडिया*, ऐलन साक्स (संपादक), लंदन, 1981

6. *ऐन आटोबायोग्राफी*, जवाहर लाल नेहरू, नई दिल्ली : ऐलाइड पब्लिशर्स, 1962

7. *एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका* (15 वां संस्करण) शिकागो: एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिया, इनकार्पोरेटेड, 1981

8. *द इंडियन स्ट्रगल्स* (1920-1942), सुभाष चंद्र बोस, बंबई : एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1967

9. *डिक्शनरी ऑफ फिलासफी*, आई. फ्रोलाव (संपादक), मास्को : प्रोग्रेस पब्लिशर्स, 1948

10. *इंडिया विन्स फ्रीडम* (आत्मकथात्मक विवरण) , मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, बंबई : ओरियेंट लांगमैन, 1960

11. *डिक्शनरी ऑफ नेशनल बायोग्राफी* (खंड I-IV), एस. पी. सेन (संपादक), कलकत्ता : इंस्टीट्यूट ऑफ हिस्टॉरिकल स्टडीस, 1974

इंडेक्स

अहमद, सर सैयद, 3, 135
अल्ला बख्श, (जालंधर का)28
अल्ला बख़्श, (हेड मिस्त्री), 108. 111, 112
अमीर अयूब खान,142
अली मोहम्मद भीम, 147
अयोध्या नाथ, पंडित, 149
अब्बास तैयब जी, 150, 161
अमृतसर, 155
अभ्यंकर, जनाब, 161
अली बंधुओं, 161- 162
असहयोग आंदोलन, 162
अखबर-ए-अम ,187
अंजुमन-ए-पंजाब ,187
अनारकली बाज़ार ,189
अफ्रीका, 191

आनंद मोहन बोस, 3, 149
आंर. बी. शादीलाल, 60
आफताबे पंजाब, 136
आर.बी. बिशन दास, 140
ऑकलैंड सेल्विन, सर, 145
ओरियेंटल कॉलेज, 53, 186

इलेक्ट्रोप्लेटिंग,101
इंडियन एजुकेशनल सर्विस, 47, 59, 70
इंडियन नेशनल कांग्रेस, 47, 131, 135, 144, 146, 149, 169, 185, 205
इंडियन एसोसिएशन ऑफ कलकत्ता, 48, 135, 163, 169
इंडियन सिविल सर्विस, 138
इंडियन ऐसोसिएशन, 144
इंडिया, 166

उपेंद्र किशोर राय चौधरी, 10, 11

ए. एस. हिल, 4, 25
ए सेंचुरी ऑफ कल्चरल फरमेंट, 44
एल. सागर चंद, , 45
एरिक राबर्टसन, 50
ए. सी. हरम्यूरी, 58
एस.पी.एस.के., 106
एडिसन का फोनोग्राफ, 102
ए. ओ. ह्यूम, 144, 185

एक्स-रे, 102
ऐलेक्जेंडर पेडलर, 5
ऐंग्लो-इंडियन सिविल एंड मिलीटरी

गजट, 146
ऐंड्रयू यूल, सर, 145
ऐनी बेसेंट, श्रीमती, 149, 185

कन्जर्वेशन ऑफ एनर्जी (इंटरनेशनल साइंटिफिक सीरीज), 53
कर्नल स्टीफेंसन, 72
कासिमिर फैजन्स, डॉ., 76, 79, 81-84
कांग्रेस कमेटी, 156
कुदम-ए-कहवा, 161
कोहिनूर, 136

खराद, 115
खान बहादुर अल्ला बख्श, 142
खिलाफत आंदोलन, 161, 162

डा. गगन चंद्र होम, 11
गिलबर्ट वाकर, 204
गिरधर राय, पंडित, 170, 171
गुजरांवाला कांड, 154
गुरु गोविंद सिंह, 7
गोल्डशमिट, प्रोफेसर, 80
ग्रांट, डॉ., 92
ग्लैडस्टोन, 191
घघ्घर, 192, 200, 203

चार्ल्स एचिसन, सर, 69
चार्ल्स ब्रेडलॉ, 185
चिमनलाल सेतालवद, जनाब, 157, 158

जनरल डायर 157
जगन नारायण, पंडित, 158
जगदीश चंद्र बोस, सर, 2, 3, 13, 47, 131
जी. एन. चटर्जी, 45
जी.ए.वाथेन, प्रोफेसर, 71
जे. सी. ओमन, प्रोफेसर, 4, 50, 51, 55, 56, 91, 97, 107, 138, 213
जॉन इलियट, 31

परमाणु भार, 76
पहला विश्व युद्ध, 77
पब्लिक रोस्ट्रम 178
पायोनियर, 25
पंजाब शिक्षा विभाग, 1
पंजाब साइंस इंस्टीट्यूट, 91, 97, 98, 100
पंजाब और दिल्ली रेलवे, 140
पंजाब पैट्रियट, 146, 147
पंज ग्रंथी, 168
पूना, 126
पेचवान हुक्का, 156
पैंथीज्म, 149

पेडलर, प्रोफेसर, 9, 10
पैट्रियाटिक ऐसोसिएशन, 145
प्रफुल्ल चंद्र राय, सर, 2, 11, 47
प्रताप चंद्र मजूमदार, 143, 149
प्रार्थना समाज, 80
प्रेसिडेंसी कॉलेज, 6, 7, 13, 97
प्रेयर, 175
प्रोविंशियल सर्विस, 47

फजल-उल-हक, 161
फादर ई. लैफोंट, 12
फिरोजशाह मेहता, 203
फुलर एक्सिबिश्नर, 5

बनफ्शा, 209
बाबू शशि भूषण मुकर्जी, 45
बिस्मथ, 76
बिपिन चन्द्र पाल, 164
बी.जे. साहनी, डॉ., 211
बुक रिवीलेशन, 175,-177
बेथ्यून कॉलेज, 8
बेतार का टेलीग्राफ, 102
ब्रह्म मंदिर, 11
ब्रह्म समाज, 12
ब्रह्म समाज 167, 168, 169, 172, 174, 186
ब्रेडिग, डॉ., 84
ब्रेडलॉ अधिवेशन, 148
ब्लैनफोड एच.एफ, 1, 4, 17, 18, 22, 25, 33

भाई छतर सिंह, 170
भाई राम सिंह, 42
भाई सुंदर सिंह, 170
भाई हरभगवान, 170

महेन्द्र लाल सरकार, 12, 97
महादेव गोविंद रानाड, 126, 143, 149, 203
मदन मोहन मालवीय जी, 150, 155, 159
महात्मा गांधी, 151, 155, 158, 159, 164, 160, 166,
माज्जिनी, 54, 185
मास्टर प्यारे लाल, 124
माधवराव नामजोशी, 126
मिस्टीसिज्म इन इंग्लिश पोयेट्री, 175
मेयो स्कूल ऑफ आर्ट, 42
मेला राम आनंद 155
मेल टांगे, 199
मोतीलाल नेहरू, 79, 150, 153, 155, 159, 161
मोची गेट क्वार्टर्स, 119
मोहम्मद अली, 164
मोउत जोन्स, प्रोफेसर, 61-66

मौसम विभाग, 4, 17

ताला और तिजोरी विभाग, 113
तूती-ए-हिंद, 142

द फाल्स प्वाइंट साइक्लोन, 27
द हिंदू फैमिली म्यूचुअल रिलीफ फंड, 138, 139
द हिमालयन यूनियन क्लब, 141-142, 143, 155, 159
द ऑब्जर्वर, 146
द पंजाब इनक्वायरी कमेटी, 150
द एक्सिसटेन्स ऑफ गॉड, 175
द एक्सिसटेन्स ऑफ ईविल, 175
दादा भाई नौरोजी, 48, 203
देशबंधु सी. आर. दास, 136, 150,
देवी चंद गुप्ता (श्रद्धे प्रकाश देवा), 170, 182

नवाब मौला बख्श, 141, 142, 143
नवाब सुल्तान अहमद, 157, 158
नवीन चंद्र राय, 169, 187, 188
नागपुर अधिवेशन, 165
नेशनल असेंबली, 145

ट्रिब्यून, 11
टेनीसन एंड साइंस, 175

टेम्परेंस मूवमेंट, 145

डब्लू. डब्लू. हंटर, सर, 3
डब्ल्यू.एल.डलास, 93
डी. एन. मलिक, डॉ., 2, 47
डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर, 35
डेंजिल इब्बेतसन, 2, 3
डेरा इस्माइल खां, 168, 181
यंग मेन्स रिलिजियस ऐसोसिएशन, 174

युनाइटेड सर्विस क्लब, 142
रवीन्द्र नाथ टैगोर, 12
रंजीत सिंह, 7
रंजीत सिंह पंडित, 79, 87
राजा राम मोहन राय, 12
राजा रामपाल सिंह, 147
रैमसे मैकडोनाल्ड, 166
रेडियो धर्मिता, 76
रोहोड़ा' और 'सुखमणि, 167

लताफत हॉल, 176, 178
लाहौर के गवर्नमेन्ट कॉलेज, 1, 5, 34, 35, 38, 48, 95, 138, 212
लालटेन स्लाइड, 94
लाला हरकिशन लाल, 139, 150

लाला लाजपत राय , 163
लॉकवुड किपलिंग , 42
लॉर्ड डफरिन, 145
लॉयलिस्ट ऐसोसिएशन , 145, 146
लॉर्ड रिपन , 135
लीड्स युनिवर्सिटी , 79
लोक सेवा आयोग , 69
लोकप्रिय व्याख्यान, 98
लोकल सेल्फ -गवर्नमेंट , 135
लियोनार्ड , प्रोफेसर , 80

वजीर खान की मसजिद , 48
वाल्टर स्कॉट , सर , 175
विश्वासी विनय , 172
विलियम वेडरबर्न , सर , 185

शंकर पांडुरंग पंडित, 143
शिव नारायण अग्निहोत्री, पंडित , 168, 169, 170, 171, 178, 179, 182
शिमला , 6
शेक्सपियर ऐज़ ए मोरालिस्ट, 175
शेर मुहम्मद , 42

सरला देवी चौधरानी , 161
सलेम विजयाराघवाचेरियार , 165
सरोजिनी नायडू, श्रीमती , 149
सरकार की संस्था , डॉ . , 13, 14
साइंस कांग्रेस , 1917 में, 204
सिविल एंड मिलीटरी गजट , 136
सी . सी . कैलब , डॉ . , 92, 106
सी . फ. ऐंड्रूज, 150
सी . एंड . एम . गजट , 187
सुरेद्र नाथ बनर्जी , 135, 137, 138, 148
सेकुलर सोसाइटी, 185
सोसाइटी फॉर द प्रमोशन ऑफ साइंटिफिक नॉलेज (एस . पी . एस . के.), 106
स्थानीय स्वराज्य, 135
स्वामी विवेकानंद, 149
स्मिथेल्स , प्रोफेसर , 79

हरि सिंह नलवा , 8
हंटर इन्क्वायरी कमेटी , 150, 157
हिल सेंट्रल म्यूर कॉलेज , इलाहाबाद ,25
हीडेलबर्ग , 79, 87, 89
हीरा लाल , 120
हुडलीकर , डॉ . , 89
हैलफोर्ड 166
होशंगाबाद, 121